 ੴ सतिगुर प्रसादि ॥ 

गुर गिआन अंजन सचु नेत्री पाइआ ॥
अंतरि चानणु अगिआनु अंधेरु गवाइआ ॥

गुरमति ज्ञान

(धर्म प्रचार कमेटी का मासिक पत्र)

कार्तिक-मार्गशीष, संवत् नानकशाही ५४१
नवंबर 2009 वर्ष ३ अंक ३

संपादक — सिमरजीत सिंह, *एम. ए, एम. एस. सी.*
सहायक संपादक — सुरिंदर सिंह निमाणा, *एम. ए (हिंदी, पंजाबी), बी. एड.*

चंदा

सालाना (देश)	१० रुपये
आजीवन (देश)	१०० रुपये
सालाना (विदेश)	२५० रुपये
प्रति कापी	३ रुपये

चंदा भेजने का पता
सचिव
धर्म प्रचार कमेटी
(शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी)
श्री अमृतसर-१४३००६

फोन : 0183-2553956-57-58-59



एक्सटेंशन नंबर
वितरण विभाग 303
संपादन विभाग 304

फैक्स : 0183-2553919
e-mail : gyan_gurmat@yahoo.com
website : www.sgpc.net

पत्रिका प्राप्त न होने पर तथा चंदे आदि सम्बंधी जानकारी प्राप्त करने के लिए मोबाइल नं. 98886-38618 पर सम्पर्क किया जा सकता है।

विषय-सूची

गुरबाणी विचार

मंघिरि माहि सोहंदीआ हरि पिर संगि बैठड़ीआह ॥
तिन की सोभा किआ गणी जि साहिबि मेलड़ीआह ॥
तनु मनु मउलिआ राम सिउ संगि साध सहेलड़ीआह ॥
साध जना ते बाहरी से रहनि इकेलड़ीआह ॥
तिन दुखु न कबहू उतरै से जम कै वसि पड़ीआह ॥
जिनी राविआ प्रभु आपणा से दिसनि नित खड़ीआह ॥
रतन जवेहर लाल हरि कंठि तिना जड़ीआह ॥
नानक बांछै धूड़ि तिन प्रभ सरणी दरि पड़ीआह ॥
मंघिरि प्रभु आराधणा बहुड़ि न जनमड़ीआह ॥१०॥ *(पन्ना १३५)*

पंचम गुरु श्री गुरु अरजन देव जी महाराज बारह माहा माझ की इस पावन पउड़ी में मार्गशीष महीने में ऋतु और वातावरण के विशेष प्रसंग में जीव-स्त्री को पति-परमात्मा के नाम के साथ जुड़ कर मानव-जीवन का यह पड़ाव सफल करने के लिए मार्ग दर्शाते हैं।

सतिगुरु जी फरमान करते हैं कि मार्गशीष महीने की ठंडी-मीठी ऋतु में जो जीव-स्त्रियां प्रिय पति-परमात्मा के संग बैठी होती हैं, जिनको स्वामी मालिक ने अपने साथ मिला लिया है, उनकी प्रशांसा मैं क्या बयान करूं अथवा उनकी प्रशंसा वर्णन करने से बाहरी है। उनका शरीर और मन अथवा उनका समूचा अस्तित्व ही परमात्मा के साथ, अच्छे सतसंगियों के साथ सुगम हो जाता है, लेकिन जो अच्छे जनों की संगत से बाहर रहती हैं वे जीव-स्त्रियां अकेली पड़ जाती हैं भाव मालिक के प्यार से वंचित ही रह जाती हैं। उनके सांसारिक दुख कभी निवृत्त नहीं होते, बल्कि वे तो यमों के वश पड़ जाती हैं।

गुरु जी पुनः नेक जीव-स्त्रियों का उल्लेख करते हुए फरमान करते हैं कि जिन जीव-स्त्रियों ने मार्गशीष महीने की ठंडी-मीठी ऋतु में अपने पति-परमात्मा को स्मरण किया वे सदैव सुचेत होती हैं भाव सांसारिक दुख-कष्ट भारी नहीं होने देतीं। उन जीव-स्त्रियों के गले गुणों रूपी रत्नों, जवाहरों, लालों के साथ शोभा दे रहे होते हैं।

सतिगुरु जी कथन करते हैं कि मैं तो ऐसे नेक जनों की धूलि चाहता हूं जो प्रभु के द्वार, उसकी शरण में आ गए हैं। मार्गशीष महीने में यदि मालिक की सच्ची आराधना हो तो जीव को बार-बार जन्म नहीं लेना पड़ता।





बुजुर्गी तथा बुजुर्गों के प्रति नज़रिया और व्यवहार बदलने की जरूरत

बचपन, जवानी और बुढ़ापा ये तीन अवस्थाएं परमात्मा अथवा उसकी कुदरत द्वारा निश्चित विधान द्वारा वैसे तो समस्त जीव-जंतुओं पर, यहां तक कि वनस्पति पर भी आती हैं लेकिन यहां हमारा विषय-क्षेत्र मनुष्य-मात्र है। ये जीवन के तीन रंग हैं। हरेक रंग का अपना अलग रूप तथा दिखावा है। हम मनुष्य-मात्र बचपन और जवानी की तो उपमा करते हुए नहीं थकते परंतु साधारणत: बुजुर्ग अवस्था को एक विवशता, मजबूरी, बोझ तथा अवांच्छित चीज के रूप में लेते हैं। यह अवधारणा बदलने की जरूरत है।

एक लोक कहावत है कि अन्य सभी फल पक कर मीठे हो जाते हैं परंतु मनुष्य एक ऐसा फल है जो पक कर कड़वा भी हो जाता है। ऐसा अमल व व्यवहार में भी पाया जा सकता है। यह अनचाहा अमल व व्यवहार हमारी गुरमति विचारधारा, सिक्खी सिद्धांत और पावन निर्मल गुरबाणी की धारा से दूर रहने के कारण घटित हो रहा है।

बुजुर्ग अवस्था जीवन यात्रा का अंतिम चरण है। यह जीवन के विकास-विगास का शिखर है। हम अपनी अज्ञानता तथा रूहानी अनुभव के अभाव में इस अमूल्य जीवन के शिखर पड़ाव के आने से खौफ खाते और आ जाने पर रुदन करते एवं आंसू बहाते हैं।

बुजुर्ग अवस्था में अक्सर बीत चुके जवानी के समय को याद करके दुख मनाया जाता है। जवानी से कुछ कम मगर बचपन को भी काफी याद किया जाता है। यह हमारी अतीत उन्मुख पहुंच-दृष्टि का भी परिणाम कहा जा सकता है। अतीत उन्मुख पहुंच हमारे लिए कदापि लाभदायक नहीं है। अतीत को याद करते हुए हम अपने वर्तमान को गंवा देते हैं। वर्तमान का हरेक पल अपने आप में ताजा व नवीन है और यह पूर्णत: आनंद में सफल करना चाहिए। बुजुर्ग अवस्था का वर्तमान भी आनंदपूर्ण हो सकता है।

हम बुजुर्ग अवस्था में प्राय: अपने आप में सिमटे हुए उदास तथा निराश रहते हैं। हम दुखी तथा त्रासदिक रहने का ढंग अपनाते हैं। ऐसा करके हम जहां अपना बहुत बड़ा व्यक्तिगत नुकसान करते हैं वहां समाज को भी अपनी संभव-संभावी अमूल्य सेवाएं देने की उम्मीदों-आशाओं को मिटा देते हैं। अत: सारे जीवन में आशावादी जीवन-ढंग ही अपनाना योग्य है और यह आशावादी जीवन-ढंग हमारी बुजुर्ग अवस्था में अपने उच्चतम विकास-विगास पर होना चाहिए।

गुरु नानक साहिब ने हमें कितना उत्साह, कितना उद्यम, कितना हर्षोल्लास बख्शिश किया। इसका एक उज्जवल उदाहरण उनके विस्मादी आदर्श जीवन का अंतिम चरण है। दो दशक से अधिक समय लोकाई को सिक्खी उसूल बताने के बाद गुरु जी ने रावी के किनारे करतारपुर नामक नगर आबाद किया और वहां कृषि की किरत को अपनाया। इस किरत को गुरु जी ने बुजुर्गी की अवस्था में लगभग दो दशक तक निभाया और इसी से प्राप्त कमाई से आये-गये सिक्खों के लंगर की भी व्यवस्था की। यह जीवन-चरण सदैव हमारे सामने एक आदर्श उदाहरण के रूप में रहना चाहिए।

समाज को सही दिशा देने में हमारे बुजुर्ग सदियों से अपना भरपूर योगदान डालते आ रहे हैं। समाज की ऊंची सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक कीमतों को कायम रखने की हमारे बुजुर्गों को सबसे अधिक फिक्र रही है। परंतु आज के समय में उनके इस समर्पण, इस चेतनता में काफी कमी पायी जा रही है। इसमें हमारे बुजुर्गों का मूल दोष नहीं। दरअसल आज समाज उनसे दिशा लेने के लिए उत्सुक ही नहीं। इसके भी अनेक कारण हैं, जिनमें एक यह है कि समाज की मूल इकाई परिवार में उनकी घोर अनदेखी हो रही है। उन्होंने मजबूरीवश अपनी बुद्धिमता, अपने ज्ञान, अपने तजुर्बे को मन मसोस कर समेट लिया है। परिवार और समाज उनका सम्मान बहाल करके आज भी उनसे सही दिशा लेने का रुका हुआ अच्छा कार्य फिर से शुरू कर सकते हैं। आज बुजुर्गों को भीतर ही भीतर खाए जाने वाला एक रोग अर्थात् तन्हाई जिसका वे बुरी तरह शिकार हुए पड़े हैं, से बचाने की बहुत आवश्यकता है। उनकी आर्थिक समस्याएं वर्तमान कमरतोड़ महंगाई, हमारी बेरुखी, स्वार्थप्रस्ती, हमारे लालच और निज परिवार की तरफ अधिक झुक जाने से बहुत गंभीर हो चुकी हैं। आर्थिक साधनों के अभाव में हमारे बुजुर्ग जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तरस रहे हैं और हमने उनकी ओर अपना मुख नहीं किया हुआ बल्कि पीठ की हुई है। यदि हम यह सोचते हैं कि हमने भी एक दिन बूढ़े होना है और हमारा अपने परिवार में अंत तक मान-सम्मान बना रहे, हमारी पूछताछ होती रहे और हमारे बच्चे हमसे उचित अगुवाई आवश्यकतानुसार लेते रहें तो दूसरी ओर हमें उक्त सब सुविधाएं आदि अपने बुजुर्गों को देने की ओर भी प्राथमिकता से प्रयत्नशील एवं कार्यरत होना चाहिए, ताकि समाज में लुप्त जा रहे बुजुर्गों के मान-सम्मान को यथावत् कायम-दायम रखा जा सके।



श्री गुरु नानक देव जी

*-स. सुरजीत सिंघ**

श्री गुरु नानक देव जी का जन्म एक ऐसे समय में हुआ जब देश विषम परिस्थितियों से गुजर रहा था। एक ओर राजनीतिक स्थिति बड़ी विकराल थी तो दूसरी ओर समाज में पाखंड एवं रूढ़िवादिता का बोलबाला था। इतिहास के पन्नों में भक्ति-काल का आगमन एक ठंडी बयार के रूप में हुआ। श्री गुरु नानक देव जी भक्ति-काल के एक अनमोल रत्न थे। श्री गुरु नानक देव जी का जन्म रावी नदी के तटवर्ती गांव तलवंडी में सन् १४६९ में हुआ था। बाद में यह पावन स्थान 'ननकाणा साहिब' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। श्री गुरु नानक देव जी की बड़ी बहन नानकी के नाम का अनुकरण करते हुए आप जी का नाम 'नानक' रखा गया। श्री गुरु नानक देव जी का ध्यान बचपन से ही प्रभु में लीन रहता था। प्रतिदिन का उनका नियम था कि संध्या के समय मित्रों के साथ बैठकर सतसंग किया करते थे। ऐसे ही मित्रों में भाई मनमुख का नाम विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि आप ने ही सबसे पहले श्री गुरु नानक देव जी की बाणी का संकलन किया था।

श्री गुरु नानक देव जी के संदर्भ में यह कहा जाता है कि जब वे वेईं नदी में उतरे तो तीन दिन बाद बाहर निकल कर आप जी ने सर्वप्रथम उच्चारण किया : *"ना हम हिंदू न मुसलमान॥"*

श्री गुरु नानक देव जी की शिक्षाएं वर्तमान के संदर्भों में उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी उस समय थीं। श्री गुरु नानक देव जी का मत था कि प्रभु के विभिन्न रूपों में मतभेद के आधार पर विवाद नहीं खड़े करने चाहिए, क्योंकि सभी धर्मों का आधार एक ही है। हम लोग राह भटके हुए हैं इसलिए हम मंजिल की तरफ न जाकर मील के पत्थरों को ही मंजिल समझकर आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं। श्री गुरु नानक देव जी हमें समझाते हुए कहते हैं कि हम वास्तव में धार्मिक नहीं हैं, क्योंकि हम अपने अंतःकरण में झांक कर नहीं देखते और बाहरी स्वरूप जो चाहे सिद्धांतों के रूप में हो, तीर्थों या प्रतीकों के रूप में हो, को लेकर निरंतर आपस में उलझते रहते हैं। संदेश, प्रेम, एकता, समानता, भाईचारा और आध्यात्मिक ज्योति से जग को आलोकित करने के लिए श्री गुरु नानक देव जी ने अपने जीवन-काल में चार बड़ी यात्राएं कीं जो 'चार उदासियों' के नाम से प्रसिद्ध हैं। विश्व-बन्धुत्व को भरपूर बढ़ावा देने के लिए गुरु जी ने पूरे भारत सहित तिब्बत, लंका, अरब, मिस्र, इराक, फ्रांस, चीन, रूस आदि देशों की यात्रा की। इन यात्राओं में उनके शिष्य अथवा साथी भाई मरदाना जी भी साथ थे। श्री गुरु नानक देव जी का कंठ बहुत सुरीला था। श्री गुरु नानक देव जी स्वयं बाणी का गायन करते थे और भाई मरदाना जी रबाब बजाते थे। श्री गुरु नानक देव जी ने गृहस्थ-जीवन को अपनाकर समाज को यह संदेश दिया कि प्रभु की प्राप्ति केवल पहाड़ों या कंदराओं में तप करने से ही प्राप्त नहीं होती बल्कि गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी आध्यात्मिक जीवन को पाया जा सकता है। श्री गुरु नानक देव जी का मत था कि वे सभी उपाय, जिनसे हम प्रभु का साक्षात्कार कर सकते हैं, अपनाएं तो जीवन में

**६१६/१, सैनिक कालोनी, रुड़की (हरिद्वार, उत्तराखंड)-२४७६६७*

सात्विकता आती है, जिससे हमारा मन हमेशा प्रकाश, आनंद, प्रेम और दया-भाव से परिपूर्ण रहेगा।

श्री गुरु नानक देव जी एक आध्यात्मिक व्यक्ति ही नहीं थे बल्कि समाज-सुधारक भी थे। श्री गुरु नानक देव जी ने किसी धर्म विशेष के आधारभूत नियमों का खंडन न करके कई सदियों से धर्म में घुस आई कुरीतियों का खंडन किया। श्री गुरु नानक देव जी ने स्वार्थ, शोषण, युद्ध, जात-पात, अस्पर्शता, धार्मिक मतभेदों आदि का विरोध किया। कर्मवादी श्री गुरु नानक देव जी का मत था कि इन दुष्प्रवृत्तियों से समाज की सुंदरता नष्ट होती है और जीवन सामाजिक जीवन के बिना अधूरा है। श्री गुरु नानक देव जी की समस्त बाणी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित है। अपनी बाणी के माध्यम से श्री गुरु नानक देव जी ने पाखंड, राजसी क्रूरता, नारी-गुणों, प्रकृति-चित्रण, अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों का सजीवन चित्रण किया है। श्री गुरु नानक देव जी का मत था कि अपने आप को मिटा दो ताकि तुम्हें ईश्वर मिल सके। जब पूर्ण विश्वास के साथ हम सब कुछ प्रभु पर छोड़ देते हैं तो प्रभु स्वयं हमारी देख-रेख करता है।

श्री गुरु नानक देव जी किसी व्यक्ति, समाज, संप्रदाय या देश के नहीं थे बल्कि वे सबके थे और सब उनके। श्री गुरु नानक देव जी के अनुसार न कोई हिंदू है और न ही मुसलमान। सारा संसार प्रभु का घर है और संसार में रहने वाले सभी लोग उसका परिवार हैं। आज अधिकांश लोग सांसारिक मोह-माया और तृष्णा में लिप्त हैं। हम सतही जीवन जी रहे हैं और जीवन की वास्तविकता से दूर होते जा रहे हैं, जिससे जीवन में नीरसता, कुंठा और निराशा बढ़ती जा रही है। परिणामस्वरूप हम हर छोटी-बड़ी बात पर लड़ने-मरने को तैयार रहते हैं। हमारा अंतःकरण हमसे छूटता जाता है और हम अधिक तनाव में रहने लगते हैं। ऐसे में श्री गुरु नानक देव जी की बाणी तपते मन पे पड़ने वाली ठंडी फुहारों के सामन है। एक स्वस्थ समाज में निर्माण हेतु श्री गुरु नानक देव जी के इस पावन जन्म-दिन पर हमें एक प्रण लेना होगा कि हम अपनी निम्न स्तरीय मानव प्रवृत्तियों के विरुद्ध जंग लड़ेंगे और सम्पूर्ण मानवता के लिए सद्भावना को स्थापित करेंगे। 

कविता

जगत गुरु नानक

गुरु नानक बाणी शबद युगांतर।
मिला न कोई जिसके समानांतर।
दीन-दुनी और ये धरती अंबर,
सभी कहते, प्रभु अपरंपर।
मानस की नैया डोलती फिरती,
बहुत उफनते समाजों के भवसागर।
ऊंच-नीच, जात-पात जीने न देती,
सांस-सांस मानस हुए थे आतुर।
नारी के न कभी सूखते आंसू,
जीवन बन जाता कठिन कठिनतर।
हर दिन ज़ालिम राजे जुल्म कमाते,
पैला घोर अंधियारा देसों-देशांतर।
फिर आदि गुरदेव जगत गुरु नानक,
लाखों सूर्य उदय हुए उदयागर।
मानस नैया के पतवार संभले,
जप जाप विचार दिये, लहर बनाकर।
दिया नया जीवन-प्रवाह विश्व मानव को,
किरत कर्म चरित्र अराधन रोशनागर। 

-डॉ. सुरिंदरपाल सिंघ, पत्तन वाली सड़क, शाला पुराना, गुरदासपुर। मो: ९४१७१-७५८४६

वृद्धावस्था : गुरमति परिपेक्ष

*-डॉ. जसविंदर कौर**

आदि काल से ही मनुष्य की यह अभिलाषा रही है कि वह लंबी आयु भोगे। उसकी इस अभिलाषा को पूरा करने में सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक प्रगति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पिछले ५० सालों से ६० साल से ऊपर की आयु वालों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। अनुमान यह है कि विश्व में ४१,६०,००,००० वृद्ध, जो ६० साल या उससे ऊपर के हैं तथा इसमें २०२० ई तक ११.९ प्रतिशत वृद्धि की संभावना है। भारत में ही वृद्ध कुल जनता का ७.५ प्रतिशत हैं। वृद्धों (६० साल से ऊपर की आयु वाले) की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। विकसित देशों में वृद्धों की संख्या ११.७ प्रतिशत से १९.४ प्रतिशत हो गई तथा २००० ई से २०५० ई तक यह संख्या ३३.५ प्रतिशत बढ़ने की संभावना है। विकासशील देशों में भी वृद्धों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है जो प्रसन्नता का विषय होने के साथ-साथ कई समस्याओं को भी जन्म दे रही है।

वृद्धावस्था में मनुष्य ने जहां काफी अनुभव ग्रहण कर लिया होता है वहीं शरीर में शिथिलता, रोगों, आर्थिक स्थिति में (सेवामुक्त हो जाने के कारण) कमी, प्रभावशाली अहुदों से उतर जाने से मनुष्य निराश होने लगता है। अब प्रश्न उठता है कि वृद्धावस्था को सुखमय बनाने के लिये क्या किया जाना चाहिये? इस लेख में यह बताने का यत्न किया जायेगा कि गुरमति का वृद्धावस्था के बारे में क्या निर्देश है।

गुरमति में मनुष्य योनि को सर्वोत्तम बताया गया है और उसे व्यर्थ न गंवाने का संदेश देते हुए यह भी कहा गया है कि इस योनि की प्राप्ति अति दुर्लभ है और यह बार-बार प्राप्त नहीं होती। इसीलिये मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह इसका सदुपयोग करे।

मानव जीवन को श्री गुरु नानक देव जी ने सिरीरागु में रचित अपनी बाणी में जीव की उम्र रूपी रात को चार पहरों (प्रहरों) में बांटा है। श्री गुरु रामदास जी और श्री गुरु अरजन देव जी ने भी श्री गुरु नानक देव जी का अनुसरण करते हुए जीवन-रात्रि के चार प्रहरों की ही चर्चा की है। गुरु साहिबान के अनुसार सर्वप्रथम गर्भावस्था तथा बाल्यावस्था आती है, फिर यौवन, पुनः प्रौढ़ावस्था तथा अंत में वृद्धावस्था का आगमन होता है। जीवन के इन प्रहरों का चित्रण करते हुए गुरु नानक साहिब कहते हैं कि गर्भावस्था में जीव प्रभु के आदेशानुसार जीवन व्यतीत करता है, पर बाल्यावस्था में जीव उस प्रभु को भूल जाता है जिसने उसकी सृजना की है। वह खेल-कूद में लगा रहता है:

पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा बालक बुधि अचेतु ॥
खीरु पीऐ खेलाईऐ वणजारिआ मित्रा मात पिता सुत हेतु ॥ *(पन्ना ७५)*

जीवन-रात्रि के दूसरे प्रहर में भाव जवानी में जीव की मति उसी तरह मारी जाती

**१४७, कबीर पार्क, श्री अमृतसर।*

है जैसे शराब के नशे में डूबे प्राणी की। इस अवस्था में जीव रात-दिन काम-वासना में दबा रहता है। वह मीठे-कड़वे अनेक रसों के स्वाद चखता है। वह अपना मन, धन और समय जवानी के मद में व्यतीत करता है। मनुष्य का मन घर के मोह में लगा रहता है, दुनिया के धंधों में मोह बनाये रखता है। वह धन-प्राप्ति की लालसा में व्यस्त रहता है, धन एकत्र करता है। इस अवस्था में जीव लोभी बना रहता है, वह हउमै में मस्त रहता है और अच्छे-बुरे में भेद नहीं करता :

दूजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा भरि जोबनि मै मति ॥
अहिनिसि कामि विआपिआ वणजारिआ मित्रा अंधुले नामु न चिति ॥ . . . (पन्ना ७५)

जिंदगी के तीसरे प्रहर में सिर पर सफेद बाल आ जाते हैं, जवानी घटती है और बुढ़ापा आ जाता है, पर फिर भी लोभ की लहरें उसके अंदर उठती रहती हैं। वह पुत्र-स्त्री के मोह में डूबा रहता है। ऐसा ज्ञानहीन मनुष्य आध्यात्मिक मौत लाने वाला जहर ही एकत्र करता है :

तीजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा सरि हंस उलथड़े आइ ॥
जोबनु घटै जरूआ जिणै वणजारिआ मित्रा आव घटै दिनु जाइ ॥ . . . (पन्ना ७५-७६)

श्री गुरु नानक देव जी का कथन है कि जीवन के चौथे प्रहर में जीव बुजुर्ग हो जाता है, शरीर कमजोर हो जाता है, आंखों के आगे अंधकार आने लगता है, ठीक से दिखाई नहीं देता, कानों से बोल सुनाई नहीं पड़ते, जीभ में स्वाद नहीं रहता, शक्ति क्षीण होने लगती है, जैसे पकी हुई फसल का नाड़ कड़क कर टूट जाता है तैसे ही शरीर नष्ट हो जाता है और अंत में जीव यहां से चला जाता है। श्री गुरु अरजन देव जी कहते हैं कि जीवन-रात्रि के चौथे प्रहर में वह दिन नजदीक आ जाता है जब जीव ने संसार से कूच करना होता है :

चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा बिरधि भइआ तनु खीणु ॥
अखी अंधु न दीसई वणजारिआ मित्रा कंनी सुणै न वैण ॥
अखी अंधु जीभ रसु नाही रहे पराकउ ताणा ॥
गुण अंतरि नाही किउ सुखु पावै मनमुख आवण जाणा ॥
खड़ु पकी कुड़ि भजै बिनसै आइ चलै किया माणु ॥
कहु नानक प्राणी चउथै पहरै गुरमुखि सबदु पछाणु ॥ (पन्ना ७६)

वार माझ में श्री गुरु नानक देव जी ने मनुष्य के समस्त जीवन को दस अवस्थाओं में बांटा है। पहली अवस्था में जीव अपनी मां से आसक्त रहता है, दूसरी में मां-बाप दोनों से प्रीति होती है, तीसरी अवस्था में रिश्तेदारों की समझ आती है और चौथी में जीव के मन में खेल खेलने का चाव उपजता है। पांचवीं में खाने-पीने की लालसा बढ़ती है, छठी में काम की प्रधानता होती है, सातवीं में जीव अपने पदार्थ इकट्ठे करके अपना घर बनाता है, आठवीं अवस्था में जीव के अंदर क्रोध पैदा होता है जो उसके शरीर को नष्ट करने का कारण बनता है। नौवीं अवस्था में जीव का दम फूलने लगता है और दसवीं अवस्था में जीव जल कर राख़ हो जाता है :

पहिलै पिआरि लगा थण दुधि ॥
दूजै माइ बाप की सुधि ॥
तीजै भया भाभी बेब ॥
चउथै पिआरि उपंनी खेड ॥
पंजवै खाण पीअण की धातु ॥
छिवै कामु न पुछै जाति ॥

सतवै संजि कीआ घर वासु ॥
अठवै क्रोध होआ तन नासु ॥
नावै धउले उभे साह ॥
दसवै दधा होआ सुआह ॥
गए सिगीत पुकारी धाह ॥
उडिआ हंसु दसाए राह ॥
आइआ गइआ मुइआ नाउ ॥
पिछै पतलि सदिहु काव ॥
नानक मनमुखि अंधु पिआरु ॥
बाझु गुरू डुबा संसारु ॥ (पन्ना १३७-१३८)

दस वर्ष का जीव बाल्यावस्था में होता है, बीस का कामावस्था में, तीस का सुंदर, चालीस का भर जवान और पचास में जवानी खिसकने लगती है तथा साठ साल में बुढ़ापा आ जाता है। सत्तर साल की आयु में मनुष्य मतिविहीन हो जाता है और अस्सी साल का तो काम-काज करने लायक भी नहीं रहता। नब्बे साल का सिर्फ चारपाई पर पड़ा रहता है, हिलजुल भी नहीं सकता, अपने कार्य-व्यवहार करने की क्षमता भी खो बैठता है। जीव को यह ध्यान रखना चाहिये कि यह जगत धुएं का घर है, जिसने सदा नहीं रहना है :

दस बालतणि बीस रवणि तीसा का सुंदरु कहावै ॥
चालीसी पुरु होइ पचासी पगु खिसै सठी के बोढेपा आवै ॥
सतरि का मतिहीणु असीहां का विउहारु न पावै ॥
नवै का सिहजासणी मूलि न जाणै अप बलु ॥
ढंढोलिमु ढूढिमु डिठु मै नानक जगु धूए का धवलहरु ॥ (पन्ना १३८)

श्री गुरु तेग बहादर जी ने अपने श्लोकों में जीवन को बाल, जवानी और वृद्धावस्था में विभाजित करते हुए वर्णन किया है कि वृद्धावस्था में मनुष्य का शरीर कांपने लगता है, सिर डगमगाने लगता है और नेत्र ज्योति-विहीन हो जाते हैं :

सिरु कंपिओ पग डगमगे नैन जोति ते हीन ॥
कहु नानक इह बिधि भई तऊ न हरि रसि लीना॥
(पन्ना १४२८)

चाहे मनुष्य की आयु १०० वर्ष की हो जाए पर अंत तो मनुष्य ने राख़ में ही मिलना है।

श्री गुरु नानक देव जी की मान्यता है कि जीव अपनी आयु रूपी रात्रि को असुरक्षित स्थान पर व्यतीत करता है तथा अपने जीवन-रूपी धन की रक्षा के लिये उचित व्यवस्था नहीं करता।

अब प्रश्न यह उठता है कि जीवन को असुरक्षित ढंग से जीने का क्या तात्पर्य। यहां हमें यह भी जानना होगा कि बुढ़ापे की समस्याएं क्या हैं? हम सभी जानते हैं कि वृद्धावस्था से जुड़ी समस्याएं सभी कालों, देशों, जातियों, नस्लों, वर्गों, लिंगों के लोगों को भयभीत करती हैं। सभी तरह के लोगों को वृद्धावस्था संबंधी कुछ सामान्य चिंताएं सताती हैं। आम तौर पर सभी वृद्ध मनोवैज्ञानिक तौर पर असुरक्षित महसूस करते हैं। संयुक्त परिवारों के विघटन ने बुजुर्गों की समस्याओं को और भी बढ़ा दिया है। किसी भी बुजुर्ग की, जो भी संतान उसकी देखभाल करती है, वे अपने व्यस्त जीवन में से जितना भी समय उसके लिये निकाल पाते हैं, वह उससे संतुष्ट नहीं हो पाता। बुजुर्ग अपने आप में बहुत अकेला अनुभव करते हैं। बुजुर्ग सेवानिवृत्त हो चुके होते हैं। वे अपनी नौकरी के समय की शानो-शौकत, पद की गौरवता तथा अपने उच्च पद के लाभों (जिनसे अब वे वंचित हो चुके होते हैं) को याद करके परेशान होते हैं। अब उनके पास समय तो बहुत होता है मगर काम करने की क्षमता क्षीण हो गई होती है। कोई उनके

पास बैठ कर समय व्यतीत नहीं करता, उन्हें मन बहलावे के लिये कहीं बाहर घूमने-फिरने ले जाने के लिये न कोई समय निकाल सकता है। उनमें अब इतनी सामर्थ्य भी नहीं होती कि वे अकेले कहीं जा सकें। ऊपर से काल का भय उन्हें सताता है। उन्हें यह चिंता लगी रहती है कि पता नहीं काल कब उन्हें पकड़ कर ले जायेगा। यह भावना उनमें उदासी तथा निराशा पैदा करती है।

मानव जीवन की सभी समस्याओं और उनके समाधानों का गुरमति का अपना दृष्टिकोण है। बुजुर्ग अवस्था और इससे जुड़ी समस्याओं के प्रति भी गुरमति की अपनी विचारधारा है। गुरमति की मान्यता है कि जीव असुरक्षित, अनियमित ढंग से जीवन व्यतीत करता है इसलिए दुख पाता है। श्री गुरु नानक देव जी इस संबंधी समझाते हुए कहते हैं कि जीव को चाहिये कि वह तृष्णाओं को वश में करके जीते-जी ही मर जाए भाव जीवन-मुक्त हो जाए, ताकि उसे फिर पछताना न पड़े। किसी-किसी को ही यह समझ आती है कि यह संसार सदीवी नहीं है। ज्यादातर लोग तो तृष्णा में भटकते हैं और सच्चे प्रभु से प्रेम नहीं करते। वे यह भी ध्यान नहीं रखते कि बुरा काल, नाश करने वाला काल दुनिया के सिर पर हर समय सवार है। यह काल प्रभु के हुक्म के अनुसार किसी भी समय मौका ताड़कर जीव को मार देता है। जब श्वास पूरे हो जाते हैं तो पलक भर भी देर नहीं लगाई जाती और घर के जीव ही उसे घर से निकालने की जल्दी में होते हैं। यह बात जीव को प्रभु-कृपा से ही समझ आती है।

श्री गुरु अमरदास जी के अनुसार बुजुर्ग अवस्था के दुखों से बचने के लिये उचित जीवन-जाच यह है कि मनुष्य गुरु के दर्शाये मार्ग पर चलते हुए सहज में रहे। ऐसा करने वालों पर काल अपना प्रभाव डालने में असमर्थ रहता है। उन्हें प्रभु की चेतना रहती है और वे प्रभु-गुणों का स्मरण करते हैं। वे सदा आनंदावस्था में रहते हैं, सुख-दुख उनके लिए समान रूप होते हैं।

श्री गुरु अरजन देव जी के अनुसार मनुष्य को सदा यह याद रखना चाहिये कि यह जगत बालू पर बने घर के समान है। एक क्षण में ही यह वैसे नष्ट हो जायेगा जैसे कागज पानी से गीला होने पर। जो पूर्ण गुरु के आदेशानुसार चलते हैं वे प्रभु के चरणों में निवास प्राप्त करते हैं। उन्हें न बुजुर्ग अवस्था और न ही मृत्यु का भय रहता है और न ही वे दुख भोगते हैं। जो प्रभु का नाम-अमृत पीते हैं वे अमर हो जाते हैं :

म्रित मंडल जगु साजिआ जिउ बालू घर बार ॥
बिनसत बार न लागई जिउ कागद बूंदार ॥१॥
सुनि मेरी मनसा मनै माहि सति देखु बीचारि ॥
सिध साधिक गिरही जोगी तजि गए घर बार ॥१॥रहाउ॥
जैसा सुपना रैनि का तैसा संसार ॥
द्रिसटिमान सभु बिनसीऐ किआ लगहि गवार॥२॥
कहा सु भाई मीत है देखु नैन पसारि ॥
इकि चाले इकि चालसहि सभि अपनी वार ॥३॥
जिन पूरा सतिगुरु सेविआ से असथिरु हरि दुआरि॥
जनु नानकु हरि का दासु है राखु पैज मुरारि ॥
(पन्ना ८०८)

गुरबाणी के अनुसार जो शबद द्वारा मरते हैं उनकी हउमै समाप्त हो जाती है। वे सिर्फ सांसारिक लोगों की दृष्टि में ही मरते हैं। सतिगुरु की कृपा से ऐसे जीव आनंद से ओत-प्रोत रहते हैं। शबद के मार्गदर्शन द्वारा वे अमृत प्राप्त करते हैं। गुरबाणी मनुष्य को बुजुर्ग

अवस्था के लिये युवावस्था से ही सतर्क रहने का संदेश देती है, जिसके अनुसार जीव को आरंभ से ही नाम-सिमरन करना चाहिये :

बाल जुआनी अरु बिरधि फुनि तीनि अवसथा जानि ॥
कहु नानक हरि भजन बिनु बिरथा सभ ही मानु॥ (पन्ना १४२८)

शेख फरीद जी, जो यह मानते हैं कि किसी पर आश्रित होना बहुत बड़ा संताप है, वे कहते हैं कि हे प्रभु! मुझे किसी के अधीन मत करना। अधीनगी से पहले ही मेरे शरीर में से प्राणों को निकाल लेना। यह अधीनगी की भावना, दूसरों पर आश्रित होने की चिंता मृत्यु की चिंता से भी विकराल है। पराधीन होना सबसे भयावह दुख है। इससे बचने के लिये प्रभु-स्मरण करना चाहिये। जो व्यक्ति काले बालों के रहते भाव युवावस्था में प्रभु-सिमरन नहीं करते वे बाल-सफेद होने पर भाव बुजुर्ग अवस्था में इस ओर कम ही चित्त लगाते हैं। इसलिए युवावस्था में ही प्रभु में चित्त लगाना चाहिये :

फरीदा जां तउ खटण वेल तां तू रता दुनी सिउ ॥ . . .
देखु फरीदा जु थीआ दाड़ी होई भूर ॥
अगहु नेड़ा आइआ पिछा रहिआ दूरि ॥ . . .
फरीदा कांली जिनी न राविआ धउली रावै कोइ ॥
करि सांई सिउ पिरहड़ी रंगु नवेला होइ ॥
(पन्ना १३७८)

सिरीरागु में भक्त बेणी जी कहते हैं कि जो जीव प्रभु की याद को भुला देता है वह सारी उम्र विकारों में गुजारता है। बुजुर्ग अवस्था में बाल सफेद हो जाते हैं, आवाज मध्यम पड़ जाती है, आंखों से जल बहता है, चतुराई वाली बुद्धि कमजोर पड़ जाती है, तब भी काम-वासना जोरों पर रहती है। वासना के कारण बुद्धि में विषयों की बहुलता बनी रहती है और कमल रूपी शरीर मुरझा जाता है, मगर फिर भी जीव जीने की लालसा नहीं छोड़ता। शरीर का बल समाप्त हो जाता है और शरीर में से जीव-पक्षी उड़ जाता है। घर के आंगन में पड़ी मृतक देह किसी को भी अच्छी नहीं लगती। इसीलिए वे मनुष्य को सचेत करते हैं कि तू पीछे पछताएगा। अगर तू जीते-जी विकारों से मुक्त नहीं हुआ तो मृत्यु उपरांत मुक्ति क्या पायेगा?

रे नर गरभ कुंडल जब आछत उरध धिआन लिव लागा ॥
मिरतक पिंडि पद मद ना अहिनिसि एकु अगिआन सु नागा ॥
ते दिन संमलु कसट महा दुख अब चितु अधिक पसारिआ ॥
गरभ छोडि म्रित मंडल आइआ तउ नरहरि मनहु बिसारिआ ॥
फिरि पछुतावहिगा मूड़िआ तूं कवन कुमति भ्रमि लागा ॥
चेति रामु नाही जम पुरि जाहिगा जनु बिचरै अनराधा ॥ (पन्ना ९३)

श्री गुरु नानक देव जी मारू राग में कहते हैं कि बुजुर्ग की सुरति चली जाती है, कोई भी उसे घर में नहीं रखना चाहता और उसका यह हाल इस कारण हुआ, क्योंकि उसने नाम को बिसार दिया :

सुरति गई काली हू धउलै किसै न भावै रखिओ घरे ॥
बिसरत नाम ऐसे दोख लागहि जमु मारि समारे नरकि खरे ॥ (पन्ना १०१४)

बुजुर्ग अवस्था के प्रति मनुष्य की दो तरह की मनोदशा हो सकती है--नकारात्मक और सकारात्मक। गुरबाणी में सकारात्मक मनोदशा को ही बुजुर्ग अवस्था की उचित मनोदशा बताते

हुए कहा है कि गुरमुख कभी बूढ़े नहीं होते। सकारात्मक सोच वाला व्यक्ति जीवन में अर्जित शुभकर्म, सतसंग, नाम-सिमरन, अपने अनुभव, अपने शुभ कर्मों, अपने सामाजिक संबंधों, अपनी हक-हलाल की कमाई से अर्जित सुख-साधनों को भी भोगता है तथा ज्ञान का लाभ खुद भी उठाता है और दूसरों को भी उससे लाभान्वित करता है। वह परिवार और समाज को जो भी योगदान दे सकता है उसमें संकोच नहीं करता। वह प्रेम, नम्रता, संतोष, परोपकार, क्षमा, संयम, धैर्य आदि गुणों का धारणी बना रहता है, जबकि नकारात्मक सोच वाला व्यक्ति इसी सोच में लगा रहता है कि कब दुनिया से चले जाना है। वह यह भूल जाता है कि दुनिया में प्रभु के सिवाय कुछ भी स्थिर नहीं है। फिर चिंता क्यों? वह अपनी घटी हुई क्षमताओं के बारे में चिंतित होता है, पर यह तो प्रकृति का नियम है, चिंता किस बात की?

वृद्धावस्था में जब मनुष्य अपने कार्य-व्यवहार स्वयं करने की क्षमता नहीं रखता तब वह अपने बच्चों और रिश्तेदारों पर आश्रित हो जाता है। वह घर के काम-काज में सहायता करने योग्य नहीं रह जाता और न ही आर्थिक तौर पर परिवार की विशेष मदद करने में योगदान दे सकता है। जीवन की पहली अवस्थाओं में जो धन उसने एकत्रित करके रखा होता है या पेंशन वगैरह वह अपने लिये संचित करके रखना चाहता है, बच्चों तथा रिश्तेदारों की नजर इस ओर होती है कि कैसे उसके धन में से और लिया जा सकता है! बुजुर्ग को अपने भविष्य की चिंता होती है। उसे यह भी भय सता रहा होता है कि यदि घर वाले उसे बोझ समझने लग गये तब क्या होगा? श्री गुरु तेग बहादर जी इस अवस्था का चित्रण करते हुए कहते हैं कि पत्नी, मित्र, बच्चे, रिश्तेदार सिर्फ धन के लिये ही मनुष्य से बंधे होते हैं। श्री गुरु नानक देव जी धनासरी राग में कहते हैं कि धन और जवानी धतूरे की तरह हैं जो बुजुर्ग अवस्था में आते ही समाप्त हो जाते हैं।

बुजुर्ग अवस्था में बच्चों का भी यह कर्त्तव्य होता है कि वे अपने मां-बाप की देखभाल करें। भाई गुरदास जी अपनी वारों में स्पष्ट तौर पर कहते हैं कि जो जीव अपने माता-पिता की सेवा नहीं करते, पर शास्त्रों को समझने का यत्न करते हैं, वे शास्त्रों को नहीं समझ सकते, उनके लिये शास्त्रों को समझना मात्र कहानियां है। जो अपने मां-बाप की सेवा करने की अपेक्षा जंगलों में आध्यात्मिक रहस्यों को जानने के लिये तप करते हैं वे अपने पथ से विचलित हुए रहते हैं। वे लोग जो अपनी ओर से अध्यात्म के लिये पूजा-पाठ करते हैं पर अपने माता-पिता को भुला देते हैं वे देवताओं को प्रसन्न करने में असमर्थ रहते हैं। वे लोग जो माता-पिता को भुलाकर तीर्थ-स्नान करने जाते हैं, वे गहरे पानी में गोते खाने के सामान हैं। जो जीव माता-पिता की सेवा न कर दूसरों को दान देते फिरते हैं वे अधर्मी और अज्ञानी हैं। मां-बाप को छोड़कर व्रत आदि रख वाला भ्रम में भूला फिरता है। कहने का भाव यह है कि जो मनुष्य अपने मां-बाप के उपकार को भुलाकर, अपने प्रियजनों के प्रति समर्पित नहीं होते वे जो भी कार्य करते हैं वे बंधन में डालने वाले होते हैं, निष्फल होते हैं। इसका कारण यह है कि जो अपने मां-बाप को प्रसन्न नहीं करते वे प्रभु की प्रसन्नता कैसे प्राप्त कर पायेंगे:

मां पिउ परहरि सुणै वेदु भेदु न जाणै कहाणी।
मां पिउ परहरि करै तपु वणखंडि भुला फिरै बिबाणी।

मां पिउ परहरि करै पूजु देवी देव न सेव कमाणी।
मां पिउ परहरि न्हावणा अठसठि तीरथ घुंमण वाणी।
मां पिउ परहरि करै दान बेईमान अगिआन पराणी।
मां पिउ परहरि वरत करि मरि मरि जंमै भरमि भुलाणी।
गुरु परमेसरु सारु न जाणी ॥ (वार ३७:१३)

गुरमति के अनुसार बच्चों का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने मां-बाप की सेवा करें। गुरमति तो सेवा पर इतना बल देती है, और फिर मां-बाप की सेवा तो उत्तम सेवा है। बाणी के अनुसार हर जीव में प्रभु बसता है, इसलिए जीवों की सेवा के द्वारा ही प्रभु को भी प्राप्त किया जा सकता है।

अब महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि मनुष्य को युवावस्था में ही बुढ़ापे के दुखों से बचने के लिये क्या करना चाहिए? श्री गुरु नानक देव जी वार माझ में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि जो मनुष्य बुढ़ापे, मृत्यु और आवागमन के डर से बचना चाहता है उसे गुरु के दर्शाये मार्ग पर चलना चाहिये। गुरु के मार्गदर्शन के बिना न भक्ति और न ही मुक्ति मिलती है :

नानक गुर बिनु नाहि पति पति विणु पारि न पाइ ॥ (पन्ना १३८)

भक्त कबीर जी स्पष्ट निर्देश देते हैं कि प्रभु की प्रभु-भक्ति के लिये जीव को बुढ़ापे का इंतजार नहीं करना चाहिये। उनका तर्क यह है कि अगर भवन में आग का प्रकोप फैल चुका हो तो बचाव मुश्किल अवस्था है। इसलिये आरंभ से आध्यात्मिक और नैतिक गुणों का संकलन ही बुजुर्ग अवस्था के दुखों से बचने का उपाय है:

कबीरा रामु न चेतिओ जरा पहूंचिओ आइ ॥
लागी मंदिर दुआर ते अब किआ काढिआ जाइ ॥
(पन्ना १३७१)

इस प्रकार गुरमति के दृष्टिकोण के अनुसार बुजुर्ग अवस्था के लिये मनुष्य को युवावस्था से ही तैयारी करनी चाहिये, जीवन की हर अवस्था में प्रभु के नाम का स्मरण करना चाहिये। गुरु के निर्देश में चलने, हउमै पर विजय पाने से प्रभु-कृपा प्राप्त होती है। गुरबाणी निराशावादी दृष्टिकोण को छोड़ आशावादी दृष्टिकोण अपनाने का समर्थन करती है। वह यह भी संदेश देती है कि जैसे कर्म जीव करेगा वैसे ही फल प्राप्त करेगा :

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु ॥
(पन्ना १३४)

कर्मों के अनुसार ही प्रभु-कृपा प्राप्त होती है :

चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि ॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ॥
(पन्ना ८)

गुरमति के अनुसार जीव को जीवन के प्रति संतुलित और आशावादी दृष्टिकोण ही अपनाना चाहिये। जीव को प्रवृत्ति और निवृत्ति के मध्य आदर्श को अपनाना चाहिये, जीवन-मुक्ति को प्राप्त कर समाज-कल्याण का ध्येय रखना चाहिये, सांसारिक दुखों-सुखों, आशाओं से ऊपर उठकर निर्लेप जीवन व्यतीत करना चाहिये, प्रभु की रजा में रहने को सर्वोत्तम मानना चाहिये, तभी मनुष्य बुजुर्ग अवस्था में संतुष्ट रह सकता है। वह न बुजुर्ग अवस्था से घबराता है और न मृत्यु से। आवश्यकता सिर्फ जीवन की हर अवस्था के प्रति उचित और संतुलित दृष्टिकोण अपनाने की है।



गुरमुखि बुढे कदे नाही

*-स. चमकौर सिंघ**

मनुष्य जीवन दुर्लभ तथा अनमोल है, क्योंकि यह अनगिनत शक्तियों और सामर्थ्य का मुजस्समा है। इन शक्तियों तथा सामर्थ्य को जान-समझ कर इनका उचित इस्तेमाल करने वाला मनुष्य खुद अपने आप को तथा अपना इर्द-गिर्द संवारने के लिए हमेशा तत्पर रहता है। उसकी संवरी हुई शख्सियत नई-निरोई, तरोताजा तथा दीन-दुखियों की सेवा के लिए सरगर्म रहती है। उसकी जवान तथा बलवान मानसिकता शारीरिक क्षीणता को कभी भी अपने पर भारी नहीं होने देती।

"जो उपजिओ सो बिनसि है" के गुरबाणी प्रवचन के अनुसार पैदा हुए हर जीव का नाश होना एक अटल प्राकृतिक नियम है। बुढ़ापा इस नाशवानता के सफर का अंतिम पड़ाव है। यदि शारीरिक बुढ़ापा हर मनुष्य पर आना है तो *"गुरमुखि बुढे कदे नाही"* का भावार्थ क्या हुआ? सम्बंधित शबद तथा इससे अगले शबदों को पढ़ने-सुनने से स्पष्ट होता है कि श्री गुरु अमरदास जी इन शबदों के द्वारा गुरमुख तथा मनमुख के गुण, स्वभाव, कर्म में भेद करके मनुष्य को अपने मूल, गुणों-शक्तियों के स्रोत, गुणी-निधान करता पुरख के साथ जुड़ने की प्रेरणा देते हैं। दुर्लभ जीवन को सफल करने का यह रूहानी फार्मूला ही गुरमुख की जिंदादिली का रहस्य है जो उसकी सुरति को बुढ़ापे में भी चढ़दी कला बख्शता है :

गुरमुखि बुढे कदे नाही जिन्हा अंतरि सुरति गिआनु ॥
सदा सदा हरि गुण रवहि अंतरि सहज धिआनु ॥
ओइ सदा अनंदि बिबेक रहहि दुखि सुखि एक समानि ॥
तिना नदरी इको आइआ सभु आतम रामु पछानु॥
(पन्ना १४१८)

दूसरी तरफ मनमुख की सुरति प्रभु-गुण-शक्तियों के स्रोत से टूटी-बिछुड़ी होती है। उसकी सोच अवगुणों-विकारों के कारण इतनी कमजोर होती है समझो जैसे किसी मनुष्य को बचपन-जवानी में ही बुढ़ापे ने घेर लिया हो :

मनमुखु बालकु बिरधि समानि है जिन्हा अंतरि हरि सुरति नाही ॥ (पन्ना १४१८)

बुजुर्ग अवस्था में मनुष्य की दशा शारीरिक पक्ष से बहुत कमजोर हो जाती है, हाथ कांपने लगते हैं, पैर लड़खड़ाते हैं, जीभ तुतलाती है, देखने सुनने की शक्ति जवाब दे जाती है :

--चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा बिरधि भइआ तनु खीणु ॥
अखी अंधु न दीसई वणजारिआ मित्रा कंनी सुणै न वैण ॥ (पन्ना ७६)
--नैनहु नीरु बहै तन खीना भए केस दुध वानी ॥
रूधा कंठु सबदु नही उचरै अब किआ करहि परानी ॥ (पन्ना ६५९)
--बुढा होआ सेख फरीदु कंबणि लगी देह ॥
(पन्ना १३८०)

दस गुरु साहिबान में से सबसे बड़ी आयु के मालिक श्री गुरु अमरदास जी ने *"गुरमुखि बुढे कदे नाही"* वाले शबद के द्वारा एक ऐसे बलवान जीवन-सच की तरफ इशारा किया है जिसे

**सिक्ख स्रोत ऐतिहासिक ग्रंथ संपादना प्रोजेक्ट, ६, कलगीधर निवास, सेक्टर २७-बी, चंडीगढ़।*

समझना निर्बल मानसिकता के लिए बहुत मुश्किल है। गुरु जी का यह प्रवचन मनुष्य की सुरति-सोच को जहां बुढ़ापे में भी चढ़दी कला वाला जीवन व्यतीत करने के लिए हिलाता है वहां जवानी की आयु भोग-विलासों में यूं ही गंवा रहे नौजवान वर्ग को गुणों-शक्तियों के स्रोत के साथ जुड़ने तथा लोक-सेवा हेतु बुराइयों, कुरीतियों के साथ जूझने के लिए हिलोरा भी देता है।

गुरबाणी का प्रवचन प्रभु-शक्तियों के स्रोत को मनुष्य-मन की परतों में से ढूंढने का ढंग बताता है। मनुष्य-मन अनगिनत शक्तियों की खान है क्योंकि यह ज्योति-स्वरूप हरि-परमात्मा की अंश है। मन पांच तत्वों के शरीर का आंतरिक चेतन-तत्व है, जिसे गुरबाणी में सर्वशक्तिमान परमात्मा का ज्योति-स्वरूप अंश कहा गया है। इस मन के गुणों-शक्तियों की खोज, पहचान कोई गुरमुख-सेवक ही कर सकता है:

--*मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु ॥* *(पन्ना ४४१)*

--*इहु मनु सकती इहु मनु सीउ ॥*
इहु मनु पंच तत को जीउ ॥
इहु मनु ले जउ उनमनि रहै ॥
तउ तीनि लोक की बातै कहै ॥ (पन्ना ३४२)

--*इहु सरीरु सभु धरमु है जिसु अंदरि सचे की विचि जोति ॥*
गुहज रतन विचि लुकि रहे कोई गुरमुखि सेवकु कढै खोति ॥ *(पन्ना ३०९)*

"हरि का सेवकु सो हरि जेहा" की साकार मूरत गुरमुख अपने ज्योति-स्वरूप को पहचान कर मन की प्रभु-शक्तियों को ग्रहण कर लेता है। फिर वह जहां 'सरबत्त के भले' हेतु जिंदगी भर सरगर्म रहता है वहां बचपन-बुढ़ापे के काल-चक्र से भी मुक्त हो जाता है। उसे यह अहसास हमेशा रहता है कि मेरा मूल स्वरूप 'अकाल' है। यह विश्वास उसकी कर्मशीलता को गति प्रदान करता है और बुढ़ापे की अलामतों को नजदीक नहीं फटकने देता :

--*ना इहु बूढा ना इहु बाला ॥ (पन्ना ८६८)*

--*ओहु न बाला बूढा भाई ॥ (पन्ना ३७८)*

--*बालकु बिरधि न जाणीऐ निहचलु तिसु दरवारु ॥* *(पन्ना ४७)*

गुरबाणी-प्रवचन में प्रभु-शक्तियों के मालिक जिस 'अकाल पुरख' का बार-बार सिमरन करने पर जोर दिया गया है वह हमेशा तरो-ताजा तथा जवान रहने वाला है। अत: *"जैसा सेवै तैसो होइ"* के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार उसका सिमरन करने वाला गुरमुख अपने आप में *"नीत नवा"* होने का अहसास जगा कर हमेशा तरो-ताजा रहता है :

--*नवल नवतन नाहु बाला कवन रसना गुन भणा ॥* *(पन्ना ८४७)*

--*नवल नवतन चतुर सुंदर मनु नानक तिसु संगि बीधि ॥* *(पन्ना १००६)*

"गुरमुखि बुढे कदे नाही" का भाव बुढ़ापे की अवस्था को निरर्थक सिद्ध करना कदापि नहीं बल्कि आयु के हर पड़ाव पर मनुष्य-जीवन को सार्थक बनाए रखने के लिए सही दिशा देना है। जीवन की तीनों अवस्थाओं (बचपन, जवानी, बुढ़ापा) में मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा को सफल तब बना सकता है यदि वह अपनी मानसिक चढ़दी कला को कायम रख कर सरबत्त जगत की सेवा हेतु कर्मशील रहे, दीन-दुखियों, अनाथों, बीमारों, लाचारों की सेवा को उत्तम कर्म तथा धार्मिक कर्त्तव्य समझे:

--*जन की सेवा ऊतम कामा ॥ (पन्ना १६४)*

--विचि दुनीआ सेव कमाईऐ ॥
ता दरगह बैसणु पाईऐ ॥ (पन्ना २६)

विषय-विकारों तथा अवगुणों में ग्रस्त होकर अपने अनमोल जीवन को यूं ही गंवा लेना मनमुखों का दस्तूर है। प्रभु-शक्तियों के सदुपयोग के लिए आंखें बंद कर ऐशो-आराम में खाकर-सोकर स्वार्थ भरी जिंदगी व्यतीत करने को गुरबाणी ने व्यर्थ बताया है :

--रैणि गवाई सोइ कै दिवसु गवाइआ खाइ ॥
हीरे जैसा जनमु है कउडी बदले जाइ ॥
(पन्ना १५६)

--बाल जुआनी अरु बिरधि फुनि तीनि अवसथा जानि ॥
कहु नानक हरि भजन बिनु बिरथा सभ ही मानु॥
(पन्ना १४२८)

मौजूदा प्रसंग में *"गुरमुखि बुढे कदे नाही"* के गुरबाणी-प्रवचन के द्वारा जगत को बेशकीमती दिशा मिलती है। आज की बुजुर्ग पीढ़ी अनेकों समस्याओं से जूझ रही है। उसे शिकायत है कि नई पीढ़ी गिरावट की तरफ जा रही 'सभ्याचारक' कीमतों की बदौलत सेवा-भावना से महरूम हो रही है। नि:संदेह यह घटनाक्रम हर तरफ से निंदनीय है। दूसरा पहलू यह है कि पुत्र-पुत्रियों की शादी करने के बाद खाली होने की इच्छा के तहत अधिकतर मनुष्य पचास-पचपन वर्ष की आयु में ही अपने आप को 'बूढ़ा' घोषित करके खुद को निकम्मा बना बैठता है। नौकरीपेशा लोग रिटायरमेंट के बाद कोई समाजसेवी काम करने की बजाय चारपाइयां तोड़ने तथा पारिवारिक नोक-झोंक में ग्रस्त रहने को 'प्राथमिकता' देते हैं। विशेष प्रतिभा के मालिक अपने जिंदगी भर के अनुभव का सुयोग्य ढंग से इस्तेमाल करके समाज का भला कर सकते हैं। लेकिन अफसोस! अधिकतर का ज्यादा समय हउमै-भावना के तहत खाली बैठकर मृत्यु के इंतजार में व्यतीत हो जाता है। बेशक कुछ शख्सियतें ऐसी हैं जिन्होंने अस्सी-नब्बे वर्ष की आयु में भी खुद को बूढ़े नहीं समझा। उन्होंने अपनी शारीरिक क्षीणता की परवाह किए बिना अपनी मानसिकता को बलवान बनाकर अच्छे कार्यों के लिए समर्पित किया हुआ है। ऐसी मानसिक जवानी को कायम रखने के लिए *"गुरमुखि बुढे कदे नाही"* का गुरबाणी-प्रवचन बुजुर्ग पीढ़ी का मार्गदर्शक बनता है।



कविता

ग़ज़ल

इस मौसम दी समझ ना आए।
पल पल आपणा रूप वटाए।
कुझ रुक्ख झक्खड़ां तोड़ मरोड़े,
पर कुझ लोकां आप वढाए।
माली दी मत्त नूं की होइआ,
फुल्लां दी थां खार उगाए!
लोड़ां खातर वाहण खा लिआ,
किंझ हाड़ी-साउणी घर आए?
इक पुत्त अफसर, इक वपारी,
पर बुड्ढा पिओ करके खाए।
गैर गागरां भर-भर खड़दे,
नगर निवासी खड़े तिहाए।
हक्क दी डौंडी पिट्टण वाला,
मित्थ के खांदा हक्क पराए।
फूकां मार उडाउणा चाहे,
'कमल' जुलम दे काले साये।

-स. अजीत सिंघ 'कमल', बी-२-३५१, चंदर नगर, बटाला-१४३५०५ (गुरदासपुर)

गुरमुखि जनमु सवारि दरगह चलिआ

-डॉ. परमजीत सिंघ 'मानसा'*

गुरमति का फलसफा एक ऐसा फलसफा है जो कि गुरमति जीवन में कभी भी आलस्य को स्वीकार नहीं करता। हम इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि गुरमुख अपने जीवन में आलस्य को अपने पास फटकने भी नहीं देता। उपरोक्त शीर्षक की पंक्ति चाहे बुजुर्ग अवस्था को व्यक्त करती है, परन्तु इस पंक्ति में गुरमति का बहुत बड़ा फलसफा छिपा हुआ है। यह फलसफा है 'चढ़दी कला'। उपरोक्त पंक्ति बढ़ रही आयु के लिए एक शक्तिशाली टॉनिक का काम करती है, क्योंकि जीवन की तीन अवस्थाओं में से पहली बचपन, दूसरी जवानी और तीसरी बुढ़ापा है और बुढ़ापे के बाद मौत है। मौत से वही लोग घबराते हैं जिनके जीवन में धर्म की लौ नहीं होती। गुरमुख-जन न तो मौत से डरते हैं और न ही घबराते हैं, बल्कि वे तो मौत को हंस कर स्वीकार करते हैं। भाई गुरदास जी लिखते हैं:

गुरमुखि जनमु सवारि दरगह चलिआ।
सची दरगह जाइ सचा पिडु मलिआ।
गुरमुखि भोजनु भाउ चाउ अललिआ।
गुरमुखि निहचलु चितु न हलै हलिआ।
गुरमुखि सचु अलाउ भली हूं भलिआ।
गुरमुखि सदे जानि आवनि घलिआ ॥

(वार १९:१४)

श्री गुरु नानक देव जी ने जब उदासियां आरंभ कीं तब गुरु जी ने अपनी जिंदगी का बहुत लंबा समय इन उदासियों में व्यतीत किया। फिर अंतिम पड़ाव में भी गुरु जी ने आराम नहीं किया बल्कि गुरमति सिद्धांत 'नाम जपो, किरत करो और वंड छको' पर पहरा देते हुए खेती की, हल का मुट्ठा पकड़ कर खेतों में हल चलाया, मेहनत की और इसके साथ नाम की कमाई भी की तथा बांट कर सबको खिलाते भी थे। हां, इतना जरूर था कि गुरु जी की धर्मशाल में किन्हीं भी निकम्मों और निठल्लों के लिए कोई जगह नहीं थी। जो साधु-पहरावे की ओट में निठल्ले गुरु जी की धर्मशाल में आकर बैठ गए थे, श्री गुरु नानक देव जी ने उन सब को अपने खेतों में किरत (कार्य) करने के लिए प्रेरित किया। परन्तु जिनको निठल्ला रहकर खाने की आदत पड़ जाए वो भला किरत कैसे कर सकते थे? इसलिए वे सब धीरे-धीरे गुरु जी की धर्मशाल से खिसकने लगे। अत: एक बात तो स्पष्ट है कि गुरु-घर में मांगने वालों और निठल्लों के लिए कोई जगह नहीं है। जीवन के अपने अंतिम समय तक श्री गुरु नानक देव जी अपने हाथों से किरत करते रहे। दरअसल गुरु नानक साहिब जी अपनी बढ़ती हुई उम्र का प्रभाव अपने मन पर नहीं पड़ने देते थे और दूसरी

*****५६३-सी, टाईप-२, रेल कोच फैक्टरी, कपूरथला-१४४६०२ (पंजाब)

बात कि गुरु जी का ध्यान तो परमात्मा में था। जिनका ध्यान परमात्मा की ओर हो वे भौतिक रूप से तो बूढ़े दिखाई देते हैं किन्तु मन से सदा बलवान होते हैं एक नौजवान की तरह।

जब हम श्री गुरु नानक देव जी की बात करते हैं तो भाई मरदाना जी को कैसे भूल सकते हैं? भाई मरदाना जी अपनी वृद्ध आयु में भी श्री गुरु नानक देव जी के साथ कदम-दर-कदम चलते रहे। भाई मरदाना जी का जीवन आज हमारे जीवन के लिए प्रेरणा-स्रोत है, जबकि हम भाई मरदाना जी के उत्साही और उद्यम भरे जीवन से शिक्षा प्राप्त करने से संकोच करते हैं।

श्री गुरु नानक देव जी के साथ अपने साथ को भाई मरदाना जी इस प्रकार कथन करते हैं : "अगर मैं गुरु जी के साथ न होऊं तो वे किसी जंगल के एकांत में, नदी के किनारे बैठे-बैठे ध्यान-मग्न हो जाएं! धरती की लोकाई को सुधारने के लिए, संसार के लोगों का उद्धार करने तथा इंसानी जगत की आत्मिक भूख के निवारण का परमात्मा की ओर से मिला हुआ कार्य तो बीच में ही रह जाता!" भाई मरदाना जी के सगे-सम्बंधी उनकी राह देखते रहते, परन्तु उन्होंने कभी भी गुरु जी का साथ नहीं छोड़ा। इसीलिए भाई मरदाना जी के संबंध में कहा जाता है--"वाह मरदानिआ! धन्न तेरी कमाई।"

श्री गुरु नानक देव जी के जीवन में दूसरे महान व्यक्ति बाबा बुड्ढा जी आते हैं। बाबा बुड्ढा जी का पहला नाम 'बूड़ा' था। उन्होंने गुरसिक्खी का उपदेश श्री गुरु नानक देव जी से लिया और छठे गुरु जी तक बुजुर्ग अवस्था के शिखर यानि सवा सौ साल तक गुरसिक्खी का नमूना बन कर जीवन व्यतीत किया। श्री गुरु नानक देव जी के वचन के अनुसार उनका नाम 'बाबा बुड्ढा जी' पड़ गया। आप बचपन से ही बूढ़ों जैसी बातें करते थे। जैसे कि आप ने गुरु जी से प्रश्न किया--"महाराज! मौत का क्या भरोसा, क्या पता कब आ जाए? शायद मैं बड़ा ही न होऊं!" गुरु जी ने उत्तर दिया, "तुझे इतनी छोटी उम्र में ये सारी बातें कैसे मालूम हुईं, बच्चा बूड़ा?" बाल बूड़ा जी बोले, "महाराज! वो ऐसे हुआ कि हमारे गांव के पास से पठान गुजरे थे। वो जबरदस्ती हमारी कच्ची-पक्की फसलें काट कर ले गए। उसी समय से मुझे बार-बार यही ख्याल आ रहा है कि जैसे पठान कच्ची-पक्की फसलें काट कर ले गए वैसे ही मौत भी बच्चे, जवान तथा बूढ़ों को ले जाएगी। क्या पता मेरी बारी कब आ जाए! इसलिए मैं मौत से डरता हूं। आप मेरा यह डर दूर कीजिए।"

गुरु जी बूड़े की बातें सुनकर हंस पड़े और कहने लगे, "है तो तू बच्चा पर बातें बूढ़ों जैसी करता है। तू बच्चा नहीं, तू तो बूढ़ा है।" गुरु जी से उपदेश ग्रहण करके बाबा बुड्ढा जी ने सिक्खी धारण की। नाम जपते रहे, किरत करते हुए और बांट कर खाते रहे। नाम के साथ इतनी सुरति जुड़ गई कि जब भी कोई बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण कार्य होता उसमें बाबा बुड्ढा जी सर्वोपरि होते।

श्री गुरु नानक देव जी बाबा बुड्ढा जी

पर इतने प्रसन्न थे कि जब उन्होंने गुरगद्दी श्री गुरु अंगद देव जी को दी तो गुरियाई का तिलक बाबा बुड्ढा जी से लगवाया। इसके बाद तीसरे, चौथे, पांचवें तथा छठे गुरु जी को गुरुता-गद्दी का तिलक आप ने ही लगाया। निरंतर सिमरन के कारण आपको आत्मिक उच्चता प्राप्त हुई और सिक्ख संगत में आपको विशेष आदरणीय स्थान मिला।

जब श्री गुरु अरजन देव जी ने श्री हरिमंदर साहिब और अमृत सरोवर की तैयारी आरंभ की तो बाबा जी को इस सेवा का प्रमुख प्रबंधक बनाया। बाबा बुड्ढा जी के नाम की बेरी (बिर का पेड़) आज भी श्री हरिमंदर साहिब में उनकी याद ताजा करवाती है। इस बेरी के नीचे बैठ कर बाबा बुड्ढा जी संगत का मार्गदर्शन कर उनसे सेवा करवाते थे। जब श्री गुरु अरजन देव जी ने श्री गुरु ग्रंथ साहिब का श्री हरिमंदर साहिब में प्रकाश किया तब उन्होंने बाबा बुड्ढा जी को ही वहां का पहला ग्रंथी स्थापित किया। गुरु-घर की तन, मन और धन से सेवा करते हुए बाबा बुड्ढा जी ने एक सौ पच्चीस साल से भी अधिक आयु भोगकर सचखंड पियाना किया।

श्री गुरु अमरदास जी के जीवन-वृत्तांत से गुरु जी के वृद्ध शरीर के दर्शन होते हैं, परन्तु उनके अंदर का जो मनुष्य है वह बहुत बलवान और शक्तिशाली है। बड़ी आयु होने के बावजूद श्री गुरु अमरदास जी के दिल में गुरु की सेवा की उमंग तथा लगाव था। इसलिए आप नौजवानों की तरह सेवा में जुट गए। दिन-रात इसी लग्न में लगे रहते थे। उस समय ब्यास दरिया खडूर साहिब से तीन-चार मील दूरी पर बहता था। गुरु जी आधी रात को उठकर ब्यास पर जाते। पहले खुद स्नान करते और पवित्र होकर श्री गुरु अंगद देव जी के स्नान के लिए पानी की गागर भर कर वापिस खडूर साहिब आकर प्रातः काल (अमृत वेले) उन्हें स्नान करवाते। यह उनका हर रोज का कार्य था। गर्मी की ऋतु में हाथ में पंखा लेकर पंखे की सेवा करते। चाहे आप आयु से बुढ़ापे के दौर में थे किन्तु आपने अपने चेहरे पर कभी भी बुढ़ापे के चिन्ह प्रकट नहीं होने दिये। आलस्य और सुस्ती उनसे कोसों दूर थी। आप हर समय चढ़दी कला में रहते थे। जो भी गुरु-प्रेमी आता, उसकी सेवा में तत्पर रहते थे। इसके साथ-साथ जब आपको खाली समय मिलता, आप गुरबाणी पढ़ते और श्रवण करते। आप गुरबाणी का अभ्यास प्रतिदिन करते थे। गुरु जी आप पर प्रसन्न हुए और आप चौहत्तर (७४) साल की आयु में गुरगद्दी पर बैठे। श्री गुरु अमरदास जी के जीवन की और भी बहुत-सी घटनाएं हमें प्राप्त होती हैं जिनसे हमें उनकी लग्न और दृढ़ता प्रति जानकारी प्राप्त होती है।

श्री गुरु नानक देव जी ने सात्विक भक्ति का उपदेश दिया। भक्ति के साथ-साथ मनुष्य को स्वाभिमानी जीवन दिया और धर्म के मार्ग पर चलते हुए उच्च कोटि पर पहुंचाया। इस मार्ग पर चलते हुए श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब ने भक्ति और शक्ति का सुमेल किया और श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने खालसे को अमृत की दीक्षा (दात) दी। भाई

सतीदास जी को रुई में बांधकर जलाया गया। भाई दयाला जी को देग में उबाला गया। भाई मतीदास जी को चांदनी चौंक में आरे के साथ दो-फाड़ किया गया। भाई मनी सिंघ जी का बंद-बंद काटा गया, परन्तु किसी भी गुरमुख ने उफ तक नहीं की और हंस कर बलिदान दिया। बाबा दीप सिंघ जी अस्सी (८०) साल की आयु में खंडा (एक शस्त्र) उठाते हैं, मुगलों से श्री हरिमंदर साहिब की बेअदबी का बदला लेते हुए शहीद होते हैं, क्योंकि मरना शूरवीरों का ईमान और हक होता है। शहादत शूरवीरों का ईनाम होती है। गुरु जी का फरमान है :

मुरणु मुणसा सूरिआ हकु है जो होइ मरनि परवाणो ॥ *(पन्ना ५७९)*

जिनके अंदर परमात्मा के नाम की लौ (लग्न) लग जाती है उस पर नाम का लाल रंग चढ़ जाता है। जिसके चेहरे पर लाली चढ़ जाती है वही असली शूरवीर होता है। बाबा दीप सिंघ जी, बाबा अकाली फूला सिंघ जी, सरदार हरी सिंघ नलुआ और स. शाम सिंघ अटारी जैसे बूढ़े जरनैल लड़ाई के मैदान में दुश्मनों से लोहा लेने के लिए सदा तैयार रहते थे, वे उल्लास से भर जाते थे।

जब गगन दमामा (लड़ाई का बिगुल) बजता है तो बालक, जवान और बुजुर्ग सबका ही खून खौल उठता है। उनके मन में एक ही चाव होता है कि चाहे पुर्जा-पुर्जा कट जाए पर दीन (धर्म) के लिए हर संघर्ष में आगे होकर लड़ना है, चाहे कितनी भी बड़ी कुर्बानी क्यों न देनी पड़े। गुरु-वाक है :

गगन दमामा बाजिओ परिओ नीसानै घाउ ॥
खेतु जु मांडिओ सूरमा अब जूझन को दाउ ॥
सूरा सो पहिचानीऐ जु लरै दीन के हेत ॥
पुरजा पुरजा कटि मरै कबहू न छाडै खेतु ॥
(पन्ना ११०५)

गुरबाणी शूरवीरों को ललकारती भी है:

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ ॥
सिरु धरि तली गली मेरी आउ ॥
इतु मारगि पैरु धरीजै ॥
सिरु दीजै काणि न कीजै ॥ *(पन्ना १४१२)*

श्री गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी शूरवीरों पर शर्त लागू करती है कि :

पहिला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस ॥
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमार पासि ॥
(पन्ना ११०२)

उपरोक्त किये गए विश्लेषण से यही स्पष्ट होता है कि जिनके हृदय में गुरबाणी की ज्योति का प्रकाश हो जाता है वे चाहे बालक हैं, जवान हैं या वृद्ध हैं, वे गुरबाणी और अमृत की शक्ति से संत और सिपाही बन जाते हैं। बूढ़ा भी अपने आप को बूढ़ा नहीं समझता, क्योंकि गुरमुख कभी बूढ़ा नहीं होता। उसके अंदर गुरु-ज्ञान के प्रकाश की ज्योति जग जाती है। यह ज्ञान ही गुरसिक्ख को बुलंदियों पर ले जाता है। तभी तो हरेक गुरसिक्ख बुजुर्ग, चाहे वह अंतिम श्वास ले रहा हो, से जब पूछा जाता है कि आपका क्या हाल है तो वह यही कहता है कि 'चढ़दी कला' है। चढ़दी कला ही गुरमुखों का जीवन है। यह चढ़दी कला की मनोस्थिति गुरबाणी से प्राप्त है। इसीलिए गुरमुख कभी बूढ़े नहीं होते :

गुरमुखि बुढे कदे नाही
जिन्हा अंतरि सुरति गिआनु ॥ *(पन्ना १४१८)*



वृद्धावस्था के परिप्रेक्ष्य में श्री गुरु अमरदास जी का संदेश

-डॉ. सुनीता शर्मा*

विज्ञान और प्रोद्यौगिकी की इस आधुनिकतावादी दौड़ में व्यक्ति बचपन से लेकर बुढ़ापे तक केवल देह-सुख एकत्र करने में लगा रहता है तथा इच्छित सुविधाएं पाकर भी वास्तविक आनंद से वंचित रहता है और मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। पांच तत्वों का पुतला यह शरीर वयक्रम के अनुसार प्राचीन भारतीय सभ्यता में चार अवस्थाओं से गुजरता है-- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास। इनमें से सन्यास में व्यक्ति अति वृद्ध हो जाता था अर्थात् पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन से दूरी बना लेता था।

वृद्धावस्था मानवता के लिए प्रकृति का अनोखा वरदान है। यह प्रकृति का नियम है। यूनानी चिंतक सिसरो के अनुसार-"जीवन में बड़े कार्य शारीरिक शक्ति से नहीं अपितु चिंतन-शक्ति एवं नैतिक-शक्ति की सहायता से किए जाते हैं, जो वृद्धों में पर्याप्त मात्रा में रहती है।" बूढ़े तथा वृद्ध में अंतर है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा सांस्कृतिक शक्तियों का उम्र के साथ क्षीण होना बुढ़ापा है। सफेद बालों वाला व्यक्ति वृद्ध नहीं बूढ़ा है। जो युवा होते हुए भी ज्ञान-ग्रंथों का अध्येता है, ज्ञानी है, उसे 'वृद्ध' कहते हैं। वृद्धावस्था के लिए ज्ञानी होना आवश्यक है जो उचित शिक्षा दे सकता है। एक कहावत के अनुसार 'एक वृद्ध एक पुस्तकालय के समान होता है।' प्राचीन ग्रंथ कहते हैं कि जो उसने रचा है वह सब आनंद है, अत: वृद्धावस्था भी आनन्दमय है। हमारे ऋषियों-मुनियों, पीरों-पैगंबरों एवं संतों-गुरुओं का यही ध्येय रहा है कि किस प्रकार इस वृद्धावस्था में मानव का साक्षात्कार अंत:-आनंद से करवाया जाए। इस संदर्भ में श्री गुरु ग्रंथ साहिब का संदेश स्मरणीय है। मानव यदि गुरु साहिबान के इस संदेश को आत्मसात कर ले तो वह इस चराचर जगत में ही 'साहिब का दीदार' कर अंत:आनंद में लीन हो जाएगा। इसी संदर्भ में श्री गुरु अमरदास जी की बाणी बुजुर्गों के लिए एक ऐसी लौ के समान है जिसके प्रकाश से बुजुर्ग-जीवन आलोकित हो उठता है।

श्री गुरु अमरदास जी गुरु-परंपरा की तीसरी ज्योति हैं जिन्हें वृद्धावस्था में गुरगद्दी प्राप्त हुई। ज्ञान में वयोवृद्ध गुरु जी की बाणी अट्ठारह रागों में है। इसमें गुरु जी ने सांसारिक एवं आध्यात्मिक भावों का प्रकटीकरण किया है। 'अनंदु', 'अलाहणीआ' एवं 'वार सद' नामक बाणी मानव को अनेक रूढ़ियों एवं भ्रामक धारणाओं से निकाल कर उसे संस्कारित करती है, जबकि 'छंत', 'वार सत' एवं 'पउड़ी' नामक बाणी में आत्मा उत्तरोत्तर यात्रा करती हुई ईश्वर-सुख को पाना चाहती है। उनकी बाणी का केन्द्र वह मानव है जो माया में भ्रमित ग्रहस्थी है। उस ग्रहस्थी की सुखद वृद्धावस्था हेतु वह उसे ईश्वर के अस्तित्व का भाव करवाते हैं, काया-रचना का उद्देश्य बताते हैं तथा सांसारिक माया-मोह में उलझे उस मानव को सद्गुरु की प्राप्ति का उपदेश देते हैं और सुखद एवं

(शेष पृष्ठ ४८ पर)

*प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, श्री अमृतसर।

लंबी तथा प्रसन्नचित्त आयु व्यतीत करने वाले : बाबा बुड्ढा जी

*-डॉ. मनजीत कौर**

भारत भूमि रत्न-गर्भा है। समय-समय पर इसने अनेक संत, पीर, फकीर, शूरवीर, जती, सती, संतोखी, तपस्वी, साधक एवं महान रहबरी पुरुषों को जन्म दिया है। ऐसे ही महान साधकों में सिक्ख जगत की महान शख्सियत, विनम्रता के धारणी, लंबी एवं प्रसन्नचित्त आयु व्यतीत करने वाले 'बाबा बुड्ढा जी' गुरु-घर के अनन्य सेवक हुए हैं, जो अकाल पुरख वाहिगुरु से विलक्षण तकदीर लिखवा कर इस दुनिया में आये और १२५ वर्ष इस धरती पर विचरण किया, सतिगुरु की अपार कृपा से सिमरन तथा सेवा ही जिनके जीवन का मिशन बन गया।

दुनिया के इतिहास में शायद ही कोई ऐसा पुरुष हुआ हो जिसने ८ गुरु साहिबान के साक्षात दीदार किये हों। यही नहीं ५ गुरु साहिबान का गुरुआई का तिलक अपने कर-कमलों से किया, जिनके वचनों से श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब का अवतार हुआ और गुरु साहिब के दीदार करते हुए उन्हीं की पावन गोद में अंतिम श्वास लिया, गुरु साहिब के कर-कमलों से ही जिनका अंतिम संस्कार हुआ। ऐसा सौभाग्य केवल और केवल बाबा बुड्ढा जी को ही प्राप्त हुआ। अत: उनकी समूची शख्सियत को शब्दों द्वारा बयान नहीं किया जा सकता।

जन्म बाबा बुड्ढा जी

महान चिंतक, प्रखर बुद्धि के मालिक, परोपकारी, सेवा एवं सिमरन की प्रतिमूर्ति बाबा बुड्ढा जी का जन्म ७ कार्तिक सं. १५६३ तदनुसार २२ अक्तूबर, १५०६ को माता गौरां जी की पावन कोख से पिता भाई सुग्घा जी के गृह में, ग्राम कत्थूनंगल, जिला श्री अमृतसर में हुआ। माता-पिता ने आप जी का नाम 'बूड़ा' रखा। बचपन में ही आप जी में बुजुर्गों जैसा चिन्तन देख कर श्री गुरु नानक देव जी ने आपका नाम 'बाबा बुड्ढा' रखा। एक शायर ने बाबा बुड्ढा जी की बहुमुखी प्रतिभा का वर्णन अपने ही ढंग से एक कविता के रूप में इस प्रकार किया है:

उसतत बुढे की करहु, सुन लीजै मन लाइ।
बकते सुनते दुहन का, होवैगा राम सहाइ।
एक समे बन मै फिरते तह, बुढे को आइ मिले गुरु नानक।
बालक रूप मै केल करे तब, दरस दीआ गुर आइ अचानक।
पाइ छुहै हित सो गुरु के तिन, सेव करी बन को अधिआनक।
बालक मत नही इस पे तब, बूडे कै 'बुड्ढा' कहि गुरु नानक।
गुरु नानक ऐसो कहा, सुण बुड्ढा इह बात।
मोहि तोहि महि भेद नहि, जान लीजीअहु सात।
इतना कारज हमरा कीजहु।
दुहि जग महि परम जस लीजहु।
हमरे जो सिंघासन बहे।
तुमरे घर ते टीका लहे।

**२/१०४, जवाहर नगर, जयपुर (राजस्थान)-३०२००४, फोन ०१४१-२६५०३७०*

जो जानहु लाइक गुरिआई।
बाज असव ता देउ पठाई।
तुमरे सम को नही दूजा।
तीन लोक महि तुमरी पूजा।

श्री गुरु नानक देव जी के दर्शन एवं आशीर्वाद : श्री गुरु नानक देव जी अपनी चौथी उदासी के उपरांत करतारपुर आ बिराजे तो अमृत वेला में कीर्तन करते बालक बूड़ा जी उनके कीर्तन में मग्न हो जाते। एक दिन श्री गुरु नानक देव जी ने सहज स्वभाव कहा, "हे बालक! अभी तो तुम्हारी उम्र खाने, खेलने की है, तुम यहां क्या करने आते हो?" बूड़ा जी का जवाब था, "साहिब जी! एक दिन मेरी मां ने मुझे आग जलाने को कहा। जब मैंने लकड़ियों को आग लगाई तो मैंने देखा कि छोटी लकड़ियां बड़ी लकड़ियों से पहले जलीं। उस दिन से मेरे अंदर एक डर बैठ गया कि पता नहीं मैं बड़ी उम्र तक जीऊंगा भी या नहीं? इसलिए मैं आपकी पवित्र बाणी सुनने यहां चला आता हूं।" १२ वर्ष के बालक के मुख से इतनी सूझबूझ एवं चिन्तनशील बात को सुनकर श्री गुरु नानक देव जी ने कहा, "हे बालक! तू उम्र से चाहे छोटा है पर तेरी बातें ज्ञान से भरपूर बड़े बुजुर्गों एवं सियानों वाली हैं। अत: आज से तुम बूड़े नहीं बल्कि 'बाबा बुड्ढा जी' हो।" गुरु साहिब ने केवल यह नाम ही नहीं दिया बल्कि बाबा जी के सिर पर मेहर भरा हाथ रखकर आशीष भी बख्शी कि ईश्वर का नाम जपना तथा कादर और कुदरत में एक रूप होकर विचरण करना। सेवा-सिमरन तथा गृहस्थ धर्म में रहते हुए भी निर्लेप भाव से जीवन व्यतीत करना।

"सिक्खां दी भगतमाल" के अनुसार जब श्री गुरु नानक देव जी के पास एक दिन बाबा जी दूध लेकर आये तो बाबा जी ने पूछा कि "दूध अपने पिता से पूछ कर लाये हो या ऐसे ही? अगर बिना पूछे लाये हो तो पिता मारेगा।" बूड़ा जी का जवाब था, "वह पिता तो जब मारेगा तब मारेगा, आप तो पूरे जगत के पिता हो। साक्षात परमेश्वर होकर पहले मेरा हाथ पकड़ा और अब छोड़ रहे हो?" जब गुरु जी ने पूछा, "तुम्हें यह बुद्धि कहां से प्राप्त हुई है?" तब बूड़ा जी का जवाब था, "हमारे गांव में मुगल आन उतरे थे। उन्होंने पक्की फसलें काट लीं और कच्ची भी। जिनमें अभी दाने भी नहीं पड़े थे उन कोपलों को भी काट फेंका। तो मेरे जी में आई कि जब इन जालिमों का हाथ पकड़कर किसी ने नहीं रोका तो यमदूत तो इनसे भी प्रबल हैं उनका हाथ कौन पकड़ेगा?" ऐसी प्रबुध-जनों वाली बात सुनकर श्री गुरु नानक देव जी ने बाबा जी पर प्रसन्न होकर उन पर बख्शिश की और गुरसिक्खी का प्रसार करने तथा सेवा-सिमरन की दात बख्शी। अत: वार्ता जो भी रही हो भाव दोनों का एक ही है और गुरु नानक पातशाह का आशीर्वाद पाकर बाबा बुड्ढा जी सिक्ख इतिहास में देदीप्यमान सितारे की तरह प्रकाशवान हुए।

विवाह एवं संतान : बाबा बुड्ढा जी हर पल श्री गुरु नानक देव जी की सेवा में व्यतीत करना चाहते थे, गृहस्थी नहीं बनना चाहते थे लेकिन गुरु-घर की मर्यादा को निभाने एवं श्री गुरु नानक देव जी की आज्ञा को शिरोधार्य कर उन्होंने गृहस्थ धर्म में प्रवेश किया। आप जी का विवाह बीबी मिरोआ जी के साथ अचल गांव में सन् १५३८ ई. में हुआ। बाबा जी के गृह में बीबी मिरोआ जी

की कोख से चार सुपत्र हुए--भाई सुधारी जी, भाई भिखारी जी, भाई महिमू जी और भाई भाना जी। पारिवारिक जिम्मेदारियों को पूरी तरह निभाते हुए भी बाबा जी गुरु-सेवा में निरन्तर लगे रहते। गुरबाणी का पावन फरमान अक्षराक्षर उनके जीवन का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है, यथा :

ब्रहम गिआनी सदा निरलेप ॥
जैसे जल महि कमल अलेप ॥
ब्रहम गिआनी सदा निरदोख ॥
जैसे सूरु सरब कउ सोख ॥ *(पन्ना २७२)*

वस्तुत: श्री गुरु नानक देव जी के उपदेशों को केवल बाबा जी ने सुना नहीं अपितु पूर्णतया उन्हें अपने जीवन में उतारा। श्री गुरु नानक देव जी "धुर की बाणी" को आप गाते तथा इस पावन बाणी को सत्कार देते थे। इस पावन बाणी को बाबा जी ने गुरु पातशाह के पावन सिद्धांत--"नाम जपो, किरत करो तथा वंड छको" पर जीवन-पर्यन्त पहरा दिया।

श्री गुरु अंगद देव जी की सेवा में बाबा बुड्ढा जी : श्री गुरु नानक देव जी ने परम ज्योति में विलीन होने से पूर्व भाई लहणा जी, जो कि श्री गुरु नानक देव जी की कसौटी पर अनेक कठिन परीक्षाएं देकर खरे उत्तरे थे, को गुरगद्दी का असली वारिस मान कर 'लहणा' से 'अंगद' नाम रख कर उनके समक्ष माथा टेका, पांच पैसे तथा नारियल रखकर परिक्रमा की तथा सबसे सर्वोच्च सेवा बाबा बुड्ढा जी को बख्शी कि उनके कर-कमलों से श्री गुरु अंगद देव जी के माथे पर गुरुता का तिलक (अभिषेक) करवाया। इसके पश्चात बाबा बुड्ढा जी ने अपना जीवन दूसरे पातशाह की सेवा में समर्पित कर दिया। करतारपुर से जब श्री गुरु अंगद देव जी खडूर साहिब आये तब भी आप उनकी सेवा में उनके साथ रहे। उनके द्वारा चलाई गई गुरमुखी प्रचार-प्रसार की सेवा में आप दिन-रात लीन रहते, यही नहीं लंगर की सेवा में भी बढ़-चढ़ कर योगदान देते।

जब श्री गुरु अंगद देव जी ने गुरगद्दी श्री गुरु अमरदास जी को सौंपी तभी भी गुरिआई का तिलक तीसरे पातशाह श्री गुरु अमरदास जी को बाबा बुड्ढा जी के ही कर-कमलों द्वारा लगाया गया।

श्री गुरु अमरदास जी की सेवा में समर्पित बाबा बुड्ढा जी : तीसरे पातशाह जब गुरगद्दी पर विराजमान हुए तो श्री गुरु अंगद देव जी के सुपुत्र भाई दातू जी ने इनका विरोध किया और स्वयं को गुरगद्दी का हकदार बताया। विनम्रता एवं स्नेह की मूरत श्री गुरु अमरदास जी गांव बासरके आ गये और स्वयं को एक कोठे (कमरे) में बंद कर ईश्वर-चिन्तन में लीन हो गये तथा बाहर लिखवा दिया कि इस दरवाजे को खोलने या खुलवाने का प्रयत्न करने वाला गुरु-द्रोही माना जायेगा। समय के ऐसे नाजुक दौर एवं गुरु साहिब के सख्त आदेश पर गुरु जी के दर्शनों से वंचित संगत भाव-विह्वल हो उठी तथा बेसब्री से गुरु-दर्शनों को आतुर संगत का दुख बाबा बुड्ढा जी से देखा नहीं गया।

बाबा बुड्ढा जी की दूरदर्शिता से इस समस्या का हल ढूंढ लिया गया। बाबा बुड्ढा जी ने स्वयं तथा संगतों को गुरु साहिब के दीदार करवाने हेतु कोठे की पिछली दीवार में सेंध लगा दी जिससे संगतों के मन की मुराद भी पूरी हो गई तथा गुरु साहिब के आदेश की अवहेलना भी नहीं हुई। जब गुरु साहिब

ने बाबा बुड्ढा जी की ओर देखकर वचन किया कि :

'किमि तैं टारयो हुकम हमारा?' ॥२५॥

बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़ कर बाबा जी इस प्रश्न का जवाब दे रहे थे :

श्री गुरु! हम नहिं आइसु टारी।
ताजि दर, फोरयो द्वार पिछारी।

(गुर प्रताप सूरज, पन्ना १४६९)

इस तरह के बाबा जी के वचन सुनकर श्री गुरु अमरदास जी के मुखारबिंद से ये पावन वचन निकले :

सुनति भए श्री अमर प्रसंन।
कहयो ब्रिद्ध को 'तुम बहु धंन' ॥

(गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पन्ना १४७०)

श्री गुरु अमरदास जी ने बाहर आकर संगतों को दर्शन देकर निहाल किया। आजकल यहां "गुरुद्वारा संन साहिब" सुशोभित है।

यही नहीं जब गोइंदवाल साहिब में पहली बार गुरु-दर्शनों हेतु बादशाह अकबर आया तो बाबा बुड्ढा जी ने ही उन्हें गुरु-घर की मर्यादा *"पहले पंगत पाछै संगत"* बताई। अकबर बादशाह ने भी पहले पंगत में बैठ कर लंगर छका और तब ही उसे श्री गुरु अमरदास जी के दीदार हुए। अकबर बादशाह ने प्रसन्न होकर प्रेम तथा श्रद्धापूर्वक १२ गांवों की जागीर गुरु-घर को भेंट की, जिसकी सेवा-सम्भाल भी बाबा जी को बख्शी गई। इस स्थान पर एक बीड़ (छोटा वन) है। बाबा जी ज्यादा समय तक यहीं रहे इसलिए इस स्थान का नाम "बाबे दी बीड़" प्रसिद्ध हुआ। यहां पर आजकल "गुरुद्वारा बीड़ साहिब" सुशोभित है।

जब गुरु साहिब ने छुआ-छूत, ऊंच-नीच की दीवारें गिराने के मकसद से 'बाउली साहिब' का निर्माण करवाया तो उसका टक्क भी बाबा बुड्ढा जी के कर-कमलों से लगवाया गया। यही नहीं तीसरे पातशाह जी ने धर्म प्रचार हेतु २२ मंजियां तथा ५२ पीहड़ों की स्थापना की। इस महान कार्य में भी मुख्य प्रबंधक की सेवा बाबा जी की झोली में पड़ी। श्री गुरु अमरदास जी ने परम ज्योति में विलीन होने से पूर्व गुरगद्दी अपने छोटे दामाद (गुरु) रामदास जी को सौंपी तो गुरुआई का तिलक बाबा बुड्ढा जी से ही लगवाया गया।

श्री गुरु रामदास जी की सेवा में बाबा बुड्ढा जी : चौथे पातशाह द्वारा अमृत-सरोवर की खुदाई प्रारंभ हुई जिसका टक्क बाबा जी से ही लगवाया गया। साथ निर्माण-कार्य की सेवा भी बाबा जी द्वारा सम्पूर्ण हुई। श्री अमृतसर नगर बसाने की जिम्मेदारी भी आपने बड़ी कुशलता से निभाई। परिक्रमा में जहां आप विराजमान होकर कार-सेवा अपनी निगरानी में करवाते और जिस 'बेरी' के नीचे बैठ कर यह सेवा सम्पन्न हुई वह बेरी आज भी सचखंड श्री हरिमंदर साहिब के अमृत सरोवर के किनारे सुशोभित है तथा "बेर बाबा बुड्ढा जी" के नाम से विख्यात है तथा आपकी अनन्य सेवा का पुख्ता प्रमाण है।

श्री गुरु रामदास जी ने ज्योति जोत समाने से पूर्व अपने सबसे छोटे सुपुत्र (गुरु) अरजन देव जी (जो गुरु नानक के घर की गुरगद्दी के मर्यादानुसार पूर्णतया योग्य थे) को गुरगद्दी सौंप कर पांच पैसे और नारियल रखकर माथा टेका, परिक्रमा की तथा गुरुता का तिलक बाबा बुड्ढा जी से लगवाया।

पंचम पातशाह द्वारा बाबा बुड्ढा जी को सौंपी गई महान सेवा : पंचम पातशाह श्री

गुरु अरजन देव जी के गुरगद्दी पर विराजमान होते ही बड़े भाई प्रिथी चंद का विरोध प्रारंभ हो गया। साथ ही स्वयं को गुरगद्दी का वारिस बता कर संगत को गुरु-घर से तोड़ कर अपने से जोड़ने की कोशिशें शुरू कर दीं। गुरु-घर में आने वाली माया, रसद आदि पर अपना हक बताकर गुरु-घर का विरोधी बन गया। समय की नजाकत को देखते हुए बाबा बुड्ढा जी तथा भाई गुरदास जी ने संगत के सामने प्रिथी चंद के झूठ का पर्दाफाश किया। सत्य, प्रेम तथा विनम्रता के पुंज श्री गुरु अरजन देव जी से संगत को पुन: जोड़कर गुरु पातशाह की आशीषें प्राप्त कीं। गुरु पातशाह ने गुरु-घर के विशेष प्रबंधकों की सेवा भी बाबा जी को सौंप दी।

श्री गुरु अरजन देव जी के विलक्षण कार्यों में एक अद्वितीय कार्य था श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की संपादना करना। समूची मानवता के उद्धार हित सर्वधर्म समन्वय के प्रतीक श्री गुरु ग्रंथ साहिब का पहला प्रकाश श्री हरिमंदर साहिब में १७ भादों सं. १६६३ को करवाया। गहन चिन्तन के उपरांत मुख्य ग्रंथी की सेवा बाबा बुड्ढा जी को सौंपने का निश्चय किया। इस सन्दर्भ में 'गुर बिलास पातशाही छेवीं' में कितना सार्थक वर्णन है :

करत बिचार ऐस ठहराई।
बुड्ढा जी सेवा निपुनाई।
गुर नानक इन दरस कराए।
करि है इहु मनि अनंदु पाए ॥१५॥

(अध्याय पांचवां)

विचारणीय तथ्य है कि उस समय बाबा बुड्ढा जी की आयु ९८ वर्ष की थी। उम्र के इस पड़ाव पर पहुंच कर भी बाबा जी की सेवा में किसी तरह की कोई कमी नहीं आई। अरदास करके जब बाबा जी ने संगत को हुकमनामा (मुखवाक) श्रवण करवाया तो मानों वाहिगुरु की रहमतें प्रत्यक्ष बरस रही थीं। पहला हुकमनामा था :

संता के कारजि आपि खलोइआ हरि कंमु करावणि आइआ राम ॥
धरति सुहावी तालु सुहावा विचि अंम्रित जलु छाइआ राम ॥ . . . *(पन्ना ७८३)*

बाबा जी के आशीर्वाद से श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी का प्रकाश : गुरु-घर की मर्यादानुसार गुरसिक्खों की उपमा तथा विनम्रता-भाव को दृढ़ करवाने हेतु समर्थ गुरु होते हुए भी श्री गुरु अरजन देव जी ने माता गंगा जी को पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद लेने के लिए बाबा जी के पास भेजा। माता गंगा जी मिस्से प्रशादे तैयार कर प्याज, लस्सी आदि लेकर बाबा जी की सेवा में हाजिर हुए। बाबा जी ने प्याज को तोड़ा और बड़े प्रेम से प्रशादा छका तथा वाहिगुरु के चरणों में अरदास की--"माता गंगा जी की कोख से ऐसा पराक्रमी पुत्र पैदा हो जो वैरियों के सिर ठीक ऐसे ही तोड़े जैसे हमने यह प्याज तोड़ा है।" सच्चे हृदय से की गई प्रभु से एकरूप हुई आत्मा की अरदास प्रवान हो जाती है। यहां तो श्वास-श्वास सिमरन करने वाले बाबा जी थे जिनकी रसना पर वाहिगुरु तथा जिनके रोम-रोम में वाहिगुरु समाया हुआ था। उनकी अरदास व्यर्थ कैसे जा सकती थी? अत: कुछ समय उपरांत श्री गुरु अरजन देव जी के गृह में वाहिगुरु की रहमत से पराक्रमी योद्धा बालक ने जन्म लिया जिनका नाम हरिगोबिंद साहिब रखा गया।

छठे गुरु जी द्वारा मीरी-पीरी की दो तलवारें धारण करना : श्री गुरु अरजन देव जी ने

बालक (गुरु) हरिगोबिंद साहिब की शिक्षा-दीक्षा की जिम्मेदारी बाबा जी को ही सौंपी। बाबा जी ने समय की नजाकत को पहचानते हुए परंपरागत शिक्षा के साथ-साथ श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी को शस्त्र-विद्या, घुड़सवारी, युद्ध-कला आदि में भी निपुण कर दिया। बाबा जी ने गुरु जी को मीरी तथा पीरी की दो तलवारें भी धारण करवाईं। साथ ही श्री गुरु अरजन देव जी के बड़े भाई प्रिथी चंद द्वारा बाल श्री (गुरु) हरिगोबिंद साहिब पर करवाये गये प्राणघातक हमलों से बचाने के लिए स्वयं ढाल बन कर प्रिथीचंद के दुष्प्रयासों को विफल कर दिया।

श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब को गुरुता का तिलक लगाना : शहीदों के सिरताज पंचम पातशाह जब शहीदी पाने हेतु लाहौर जाने लगे तब श्री (गुरु) हरिगोबिंद साहिब जी की आयु ११ वर्ष थी। पिता श्री गुरु अरजन देव जी के आदेशानुसार बाबा बुड्ढा जी ने गुरगद्दी का तिलक श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब को लगाया तथा मीरी-पीरी (भक्ति तथा शक्ति) की दो तलवारें पहनाईं। इसके पश्चात मसंदों एवं सिक्ख संगत को गुरु-घर में बढ़िया नस्ल के घोड़े, शस्त्र आदि लाने का आदेश हुआ। इन समस्त गतिविधियों में बाबा जी की सलाह तथा योगदान सदैव बना रहा।

श्री अकाल तख्त साहिब की स्थापना में हिस्सा : छठे पातशाह श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी ने सच्चे तख्त श्री अकाल तख्त साहिब की स्थापना की। श्री हरिमंदर साहिब के बिलकुल सामने पक्की ईंटों का तख्त बनाया गया जिसकी सेवा में किसी मिस्त्री को नहीं लगाया बल्कि भाई गुरदास जी तथा बाबा बुड्ढा जी ने सम्पूर्ण सेवा को निभाया। वस्तुत: यह पावन तख्त सिक्ख पंथ की धर्मनीति तथा राजनीति को जोड़ने का सक्षम माध्यम है।

इस समय तक बाबा जी की आयु १०० वर्ष से भी ऊपर हो चुकी थी लेकिन बाबा जी की सेवा-भावना एवं दृढ़ संकल्प में रत्ती भर भी कमी नहीं आई।

श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी के ग्वालियर के किले में कैद के दौरान : गुरु-घर की बढ़ती हुई शोभा एवं चढ़दी कला को जहांगीर बर्दाश्त न कर सका। अत: सच्चे पातशाह श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी को जहांगीर ने ग्वालियर के किले में कैद करवा दिया। इस दौरान छठे पातशाह ने गुरु-घर की समस्त जिम्मेवारी बाबा बुड्ढा जी को सौंप दी तथा बाबा जी द्वारा ही संगत की अगुआई होती रही। शाम को दीवान सजता शबद-कीर्तन का प्रवाह चलता। शबद गाते-गाते संगत बाबा जी के साथ श्री हरिमंदर साहिब की परिक्रमा करती। 'शबद-चौंकी' की परम्परा पहले-पहल बाबा जी द्वारा ही प्रारंभ की गई।

बहुत समय व्यतीत हो गया तब माता गंगा जी के आदेशानुसार बाबा जी ग्वालियर गुरु साहिब के दर्शनार्थ पहुंचे, लेकिन बाबा जी को गुरु साहिब के दर्शनों की आज्ञा नहीं मिली। तब बाबा जी संगत सहित किले की परिक्रमा करने लगे। जब गुरु साहिब ५२ राजाओं को वहां से मुक्त करवा कर ग्वालियर से श्री अमृतसर आये तब बाबा बुड्ढा जी की अगुवाई में सिख संगत ने गुरु साहिब का स्वागत सत्कार सहित किया। उनके आने की खुशी में बाबा जी ने श्री हरिमंदर साहिब में दीपमाला करवाई। बाबा जी द्वारा चलाई गई इस परम्परा के अनुसार आज तक दीवाली

वाले दिन को "बंदी छोड़ दिवस" के रूप में दीपमाला कर बड़े हर्षोल्लास से मनाया जाता है।

बाबा बुड्ढा जी का परम ज्योति में विलीन होना : गुरु साहिब से आज्ञा लेकर बाबा जी अपने अन्तिम समय गांव रमदास आ बिराजे। बाबा जी की अवस्था इस समय १२५ वर्ष की हो चुकी थी, शरीर बहुत वृद्ध हो चुका था। अपना अंतिम समय निकट जान अपने पुत्र भाना जी से श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब के दर्शनों हेतु तीव्र इच्छा जाहिर की। जब बाबा जी का प्रेम-संदेश गुरु साहिब तक पहुंचा, गुरु जी अविलम्ब घोड़े पर सवार होकर बाबा जी के पास पहुंच गये। गुरु जी के दर्शन कर बाबा जी निहाल हो गये तथा अपने सुपुत्र भाना जी को गुरु साहिब की सेवा में समर्पित कर दिया।

गुरु साहिब जी ने बाबा जी का शीश अपनी झोली में रखा, उनके नेत्र मुंदे, बाबा जी की ज्योति परम ज्योति में विलीन हो गई।

कितने भाग्यशाली थे बाबा बुड्ढा जी जिनका अंतिम श्वास गुरु साहिब की पवित्र झोली में निकला और जिनका अंतिम संस्कार गुरु साहिब के कर-कमलों द्वारा हुआ! गुरु साहिब के नेत्र भी सजल थे। बाबा जी की पार्थिव देह को अपने हाथों के सहारे चिता पर रखा।

ऐसी महान शख्सियत, ऐसा अनूठा सौभाग्य, जिन्हें १२ वर्ष की अल्पायु में जगत-गुरु, बाबा नानक जी के दीदार, संगत तथा आशीर्वाद नसीब हुआ, गुरु साहिब का सानिध्य एवं हर पल गुरु-घर की सेवा करने की बख्शिश, पांच गुरु साहिबान को गुरुता का तिलक लगाने का सौभाग्य, गुरु साहिब के कर-कमलों से ही अंतिम संस्कार। अकाल पुरख की दरगाह से दुनिया में शायद ही कोई व्यक्ति बाबा बुड्ढा जैसी महान तकदीर लिखवा कर आया हो।

श्वास-श्वास सिमरन गुरु-घर के अनन्य सेवक ब्रह्मज्ञानी बाबा बुड्ढा जी इतनी महान शख्सियत होते हुए भी सहज एवं सरल जीवन व्यतीत करने वाले, सिक्ख-जगत की हर परिस्थिति में अगुआई करने वाले प्रेरणा-स्तंभ, १२५ वर्ष की लंबी एवं प्रसन्नचित आयु व्यतीत करने वाले बाबा बुड्ढा जी के गुणों को शब्दों द्वारा बयान नहीं किया जा सकता और न ही कोई लेखनी उनकी समूची शख्सियत को बयान कर सकती है, जैसा कि "जपु जी साहिब" में गुरु नानक पातशाह का पावन फरमान है :

मंने की गति कही न जाइ ॥
जे को कहै पिछै पछुताइ ॥
कागदि कलम न लिखणहारु ॥
मंने का बहि करनि वीचारु ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ ॥
जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥ (पन्ना ३)

भाई गुरदास जी द्वारा ब्रह्मज्ञानी बाबा बुड्ढा जी जैसे महापुरुषों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहे गये पावन वचन कितने सार्थक प्रतीत होते हैं :

गुरमुखि जनमु सवारि दरगह चलिआ।
सची दरगह जाइ सचा पिडु मलिआ।
(वार १९, पउड़ी १४)

वस्तुत: सिक्ख पंथ की उज्जवल हस्ती, महान कर्मयोगी, परोपकारी बाबा बुड्ढा जी का विलक्षण जीवन रहती दुनिया तक सिक्ख पंथ की अगुवाई करता रहेगा। ऐसे महापुरुष को शत्-शत् नमन!



माता गुजरी जी—आदर्श दादी मां

-डॉ. परमजीत कौर*

दया, धर्म, सत्य, त्याग, संयम, उदारता, सहिष्णुता, परोपकार आदि गुण व्यक्ति को विशिष्ट बनाते हैं। ये गुण मनुष्य के व्यक्तित्व को संवारते तथा निखारते हैं। इन गुणों से युक्त व्यक्ति ही सुसंस्कृत कहा जाता है। बाल्यावस्था में ही जीवन-मूल्यों तथा नैतिकता की नींव रखी जाती है। घर-परिवार का इसमें सबसे अधिक योगदान होता है। घर में जीवन के अनुभवों से परिपूर्ण दादा या दादी अपने पौत्रों-पौत्रियों को निःस्वार्थ प्रेम का पाठ पढ़ाते हुये सत्य, त्याग, वीरता, परोपकार तथा बलिदान की गाथायें सुनाकर उनके जीवन-पथ का नेतृत्व करते हैं। श्री रविंद्रनाथ टैगोर का कथन कितना सत्य है कि "बाहर की अनुभूति जितनी प्रबल होती है अन्तरात्मा से सत्ता-बोध को भी उतना ही बल मिलता है।"

प्रेम, ममता, धैर्य, त्याग, संयम, उदारता तथा सहनशीलता की साकार प्रतिमा तपस्विनी माता गुजरी जी एक ऐसी ही आदर्श दादी-मां थीं जिन्होंने अपने पौत्रों को ऐसे संस्कारों से सुसंस्कृत किया कि वे कांटों से भरे दुर्गम पथ पर चलते हुये भी विचलित नहीं हुये, वरन् वीरता, साहस तथा धर्म का उदाहरण बन गये तथा बाल्यावस्था में ही सिक्ख इतिहास को गौरवान्वित करते हुये अमर हो गये।

विलक्षण तथा अद्वितीय व्यक्तित्व की स्वामिनी माता गुजरी जी का जन्म करतारपुर (जालंधर) निवासी भाई लालचंद जी के गृह में माता बिशन कौर जी के उदर से सन् १६२७ में हुआ था। आपका विवाह (गुरु) तेग बहादर जी के साथ हो गया। (गुरु) तेग बहादर जी श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी के सबसे छोटे सपुत्र थे। विवाह के बाद माता गुजरी जी को विदा करते समय माता बिशन कौर जी ने उन्हें कहा कि "बेटा! अपने प्रत्येक कर्त्तव्य का पालन करना तथा अपने नाम को सार्थक करना। गुजरी का अर्थ ही सुख देना है। माता गुजरी जी ने बहू, पत्नी, माता, सास तथा दादी के रूप में सदैव अपने कर्त्तव्यों का पालन किया, नवीन आदर्श स्थापित किये तथा कुल के गौरव को बढ़ाया।

माता गुजरी जी एक ऐसी आदर्श दादी मां थीं जो बाबा बकाला में पति (गुरु) तेग बहादर जी की तप-साधना के साथ करीब २१ वर्ष तक सेवा तथा संयम रूपी तप-अग्नि से दीप्त होते हुये धैर्य तथा संतोष की उदाहरण बनीं, जिन्होंने अपने पति को शरण में आये हुये कश्मीरी पंडितों के धर्म की रक्षा के लिये बलिदान हेतु भेजते समय पतिव्रत धर्म का पालन किया तथा पति श्री गुरु तेग बहादर जी के शहीद हो जाने पर उनके पावन शीश के समक्ष मस्तक झुकाकर "जैसे आपकी निभ आयी वैसी मेरी भी निभ जाये" प्रार्थना की और देश-देशांतरों में हुक्मनामे भेज कर दृढ़ता का परिचय दिया। पुत्र बाल (गुरु) गोबिंद राय का सुचारू रूप से पालन-पोषण करते हुये उन्हें भक्ति तथा शक्ति की प्रतिमा, वीर, महान योद्धा तथा इंकलाबी बनाया। वास्तव में जो आत्मा संयमी होती है वही सर्वशक्तिमान होती है। बहू माता जीतो जी

*अध्यक्ष संस्कृत विभाग, गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज, संतपुरा, यमुनानगर-१३५००१ (हरियाणा)।

के स्वर्ग सिधार जाने पर मासूम पौत्रों को हर पल पलकों की छांव में रखकर ममतामयी लोरियां देकर मां के वियोग का अहसास नहीं होने दिया। परमात्मा में असीम विश्वास, साहस तथा धैर्य को दृढ़ करवाने वाली गाथायें सुना-सुनाकर कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य से विचलित न होने का पाठ पढ़ाया।

दादी का पौत्रों के साथ प्रेम प्रसिद्ध है, पर माता गुजरी जी प्यार में भी सिक्खी को दृढ़ करवाना नहीं भूलती थीं। अमृत-संचार वाले दिन दादी जी की प्रेरणा से ही साहिबजादों ने अमृत-पान किया। बाबा जोरावर सिंघ जी की आयु उस समय केवल चार वर्ष की थी। "गुरू पद प्रेम प्रकाश" में लिखा है कि माता सुंदरी जी ने कहा कि "साहिबजादा अभी छोटा है।" माता गुजरी जी ने कहा, "छोटे-बड़े की कोई बात न करो। शेरों के बच्चे शेर ही होते हैं।" जब साहिबजादा अजीत सिंघ जी युद्ध में विजयी होकर आये तो दादी-मां माता गुजरी जी ने सीने से लगाकर प्यार किया, आशीर्वाद दिया तथा शाबाशी देकर उनके उत्साह को बढ़ाया।

जब श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने अनंदपुर साहिब का किला छोड़ा तब युद्ध के उपरांत सरसा नदी को पार करते समय माता गुजरी जी के साथ पौत्र साहिबजादा जोरावर सिंघ जी तथा साहिबजादा फतह सिंघ जी काफिले से बिछुड़ गये। गुरु-घर का रसोइया गंगू दादी-मां माता गुजरी जी तथा छोटे साहिबजादों को अपने गांव सहेड़ी (मोरिंडा, पंजाब) ले गया, परंतु लोभवश उसने रात में माता जी के बहुमूल्य जेवर चुरा लिये। माता जी के विनम्रतापूर्वक कहने पर कि "चुराने की क्या आवश्यकता थी, मांग लेते", उसने क्रुद्ध होकर मोरिंडा थाने में शिकायत कर दी। वहां से जानी खां, मानी खां प्रातः काल सहेड़ी आ पहुंचे तथा माता गुजरी जी को उनके पौत्रों सहित पकड़कर बैलगाड़ी में बिठाकर सरहिंद पहुंचा दिया गया। वहां सरहिंद के नवाब वजीर खां की आज्ञा से ठंडे बुर्ज में कैद कर दिया गया। पौष मास की सर्द ठंडी रात में ठंडे बुर्ज के फर्श पर बैठी हुयी माता गुजरी जी प्रभु के चरणों में बार-बार अरदास कर रही थीं तथा अपने नन्हें पौत्रों को गोद में बिठाकर दुलारती हुई बहादुर वीरों की गौरवमयी गाथायें सुना-सुना कर उनमें वीरता, निर्भयता तथा साहस की भावना भरती रहीं ताकि वे विचलित न हों। दादी मां बार-बार प्यार से समझा रही थीं कि जब तुम्हें किसी हाकिम के समक्ष पेश किया जाये तब गर्ज कर फतह बुलाना, लोभ में न आना तथा मौत से भी मत डरना। दादी-मां बार-बार दृढ़ करवा रही थीं *"सिरु दीजै काणि न कीजै ॥"* जब साहिबजादों को कचहरी ले जाने के लिये सिपाही माता गुजरी जी के पास आये तो उन्होंने बड़ी ही हिम्मत तथा धैर्यपूर्वक साहिबजादों को तैयार किया, उनके शीश पर दस्तार सजायी तथा गले से लगाकर प्यार से समझाया, "बेटा! स्मरण रहे, आप उन दुष्ट-दमन, वीर, स्वाभिमानी गुरु गोबिंद सिंघ जी के सुपुत्र हो जिन्होंने नौ वर्ष की आयु में अपने पिता श्री गुरु तेग बहादर जी को धर्म की रक्षा हेतु बलिदान देने के लिये प्रेरित किया। आप हिंद की चादर, महान तपस्वी, धर्म के लिये शीश कुर्बान करने वाले वीर शहीद गुरु तेग बहादर जी के साहसी पौत्र हो। आपका सिर परमात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य के सामने नहीं झुकना चाहिये। *"भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आन ॥"* भयभीत नहीं होना, दृढ़ तथा स्थिर रहकर गुरु साहिबान के आदर्शों के अनुकूल उत्तर देना है।

जब साहिबजादों को कचहरी में पेश किया गया तो वे निर्भय होकर वजीर खां के समक्ष

खड़े हो गये। जब उन्हें वजीर खां को झुककर सलाम करने को कहा गया तो साहिबजादा जोरावर सिंघ ने साहस तथा स्वाभिमान से उत्तर दिया कि वे गुरु-परमेश्वर के बिना किसी के समक्ष नहीं झुकते। नवाब ने बच्चों को इस्लाम स्वीकार करने की पेशकश की, स्वीकार करने पर ऐशो-आराम की जिंदगी का लोभ दिया तथा ऐसा न करने पर मौत का डर दिखाया, पर धैर्य तथा साहस की मूरत स्नेहमयी दादी मां द्वारा पाले गये, शिक्षित किये गये साहिबजादों ने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया, "हम गुरु अरजन देव जी के वंशज हैं, धर्म के लिये शहीद होना जानते हैं, धर्म को छोड़ना नहीं!" साहिबजादों को 'इस्लाम या मौत', इस पर विचार करने के लिये एक दिन की मोहलत दी गयी।

वह रात एक विशेष तथा अनोखी रात थी। पौत्रों के साथ यह उनकी अंतिम रात्रि है यह जानते हुये सारी रात माता गुजरी जी साहिबजादों को प्यार करती रही, दुलारती रही तथा प्रभु से प्रार्थना करती रही कि उनके शेरदिल साहिबजादे धर्म के मार्ग पर दृढ़ रहें। आदर्श दादी-मां की साकार मूरत माता गुजरी जी तथा साहिबजादों के इस पाक रिश्ते को आधुनिक दादी-पोतों-पोतियों को भी पूरा न सही किनका मात्र बनाए रखने की अति आवश्यकता है। प्रातः काल वजीर खां के आदमियों के आने पर दादी मां ने अपने पौत्रों को दूल्हों की तरह सजाया तथा दादा गुरु जी, पिता गुरु जी के पथ पर चलने का आशीर्वाद देते हुये शौर्य, धैर्य, साहस, निर्भयता रूप बारातियों के साथ मौत रूपी दुल्हन को वरने के लिये भेज दिया। वजीर खां के समक्ष खड़े हुये साहिबजादों के मुख आलौकिक तेज से चमक रहे थे, भय उनसे कोसों दूर था, मुख पर दैवी मुस्कान थी। चकित नवाब वजीर खां के पूछने पर 'इस्लाम या मौत', साहिबजादों ने दृढ़ता से कहा, "हम धर्म की खातिर जान कुर्बान करने को तैयार हैं।" वजीर खां ने माता गुजरी जी के पौत्रों को जीवित नीवों में चिनवाकर शहीद कर दिया। पौत्रों के शहीद होने का समाचार सुनकर माता गुजरी जी ने अकाल पुरख के चरणों में शुक्राने एवं भाणा मानने की प्रार्थना की तथा अपने प्राण त्याग दिये।

धन्य हैं दादी मां माता गुजरी जी! जिन्होंने अपने छोटे पौत्रों को अन्याय, अधर्म तथा अत्याचार के समक्ष न झुकने की शिक्षा देकर आत्म-बलिदान के लिये प्रेरित किया। दादी मां माता गुजरी जी की हिम्मत, साहस तथा धैर्य ही साहिबजादों को शहादत के शिखर पर ले गया। वास्तव में इसी घटना ने मुगल हकूमत की जड़ों को कमजोर करके खालसा हकूमत की नींव रखी। भाई साहिब भाई वीर सिंघ ने "कलगीधर चमत्कार" में इस ओर संकेत किया है। आप लिखते हैं, "आह प्यारी माता! तुमने हम पापियों के लिये क्या-क्या नहीं सहा? सारे बलिदान देश के छुटकारे के लिये हैं।"

दादी-मां माता गुजरी जी प्रत्येक स्त्री के लिये आदर्श हैं, प्रेरणा-स्रोत हैं। आज यदि प्रत्येक मां तथा दादी-मां उनके आदर्शों का किनका मात्र भी अनुकरण कर अपने बच्चों को प्यार-दुलार के साथ-साथ गुरु साहिबान तथा वीर सिंघों की गाथायें सुनाकर उनमें सिक्खी संस्कार, कर्त्तव्य-पालन, स्वाभिमान तथा गौरव की भावनायें भर दे तथा संकट के समय परमात्मा को स्मरण करने का मंत्र सिखा दे तो कोई भी बच्चा पथ-भ्रष्ट न हो, पतित न हो, नशों का सेवन न करे, बल्कि गुरु साहिबान द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलता हुआ अपने जीवन को गौरवान्वित करे।



भाई गुरदास जी की रचना में बुजुर्गों का सत्कार

*-स. बलविंदर सिंघ जौड़ासिंघा**

सिक्ख धर्म में भाई गुरदास जी का नाम बड़े सत्कार के साथ लिया जाता है। आपको आदि श्री ग्रंथ साहिब के पावन स्वरूप के प्रथम लिखारी होने का सम्मान प्राप्त हुआ। आप जी द्वारा रचित ४० वारों को गुरबाणी की कुंजी के रूप में स्वीकार किया जाता है। आप गुरु-परिवार से संबंधित थे और श्री गुरु अमरदास जी के भतीजे थे। आपने चौथे पातशाह श्री गुरु रामदास जी के समय सिक्खी धारण की और सारा जीवन गुरु-घर की सेवा को समर्पित कर दिया। गुरबाणी की सैद्धांतिक सूझ आप ने पंचम पातशाह श्री गुरु अरजन देव जी से प्राप्त की। आप छठे पातशाह तक सिक्ख धर्म के प्रसार में बहुपक्षीय योगदान डालते रहे। आपकी वारें अनुभव एवं तजुर्बे का भंडार हैं तथा कबित्त सवैये भी अपना उदाहरण आप हैं। यहां हमारी विचार-चर्चा वारों और कबित्त सवैयों में बुजुर्ग माता-पिता के सत्कार तक सीमित है। माता-पिता के सत्कार संबंधी भाई साहिब ने विशेषत: अपनी ३७वीं वार में जिक्र किया है।

भाई साहिब ने माता-पिता के प्रति पुत्रों के कर्त्तव्यों का वर्णन किया है। साथ ही पुत्रियों और पुत्रों में माता-पिता के प्रति जो बेरुखी पैदा हो जाती है उसके बारे में भी सुचेत किया है। भाई साहिब ने दर्शाया है कि कैसे माता-पिता, दोनों को संतान प्राप्त करने के कितनी तीव्र अभिलाषा होती है। आपने दर्शाया है कि जब माता को बच्चे की उम्मीद बंध जाती है तो वह कितनी सावधानी बरतती है। वह प्रसूति की पीड़ा भी सहन् करती है। फिर बच्चे को जन्म देकर बड़े कष्ट सहन करके उसको पालती है। यहां तक कि अपने खान-पान में भी बहुत संयम रखती है। बच्चों को घुट्टी देती है, उसे दूध पिलाती है, दुख-तकलीफ होने पर उसे दवाई देती है। उसे सुंदर वस्त्र पहनाती और अच्छा भोजन देती है। फिर माता-पिता बच्चों को पढ़ने के लिए भेजते हैं, अपनी की हुई कमाई बच्चे पर खर्च करते हैं, अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति करके संतुष्टि महसूस करते हैं :

मात पिता मिलि निंमिआ आसावंती उदरु मझारे। . . .
पेट विचि दस माह रखि पीड़ा खाइ जणै पुतु पिआरे।
जण कै पालै कसट करि खान पान विचि संजम सारे।
गुढ़ती देइ पिआलि दुधु घुटी वटी देइ निहारे।
छादनु भोजनु पोखिआ भदणि मंगणि पढ़नि चितारे।
पांधे पासि पढ़ाइआ खटि लुटाइ होइ सुचिआरे।
उरिणत होइ भारु उतारे ॥ (पउड़ी १०)

बड़े हुए बच्चों के लिए माता-पिता उनका कारज करके बहुत खुश होते हैं। पुत्र

**उप सचिव, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, श्री अमृतसर।*

की कुड़माई पर तो माता-पिता खुशी में झूमते फिरते हैं। इस खुशी में माता अपने आप में फूली नहीं समाती और सोहिले गाती हुई सुख की नींद लेती है, विवाह वाले दिन घोड़ियां (विवाह के खुशी भरे गीत) गाती है। पुत्र और बहू को मिलजुल कर रहते देखकर वह खीवी हुई मनोस्थिति में अपने बच्चों के लिए हरेक सुख की कामना करती है। परंतु जैसे ही बच्चे बड़े हो जाते हैं, उनको माता-पिता की जरूरत नहीं रहती। जब कभी माता-पिता बच्चों को कोई उचित सलाह भी देते हैं तो बच्चे उसको ग़ैर जरूरी समझते हैं। माता-पिता की हर बात को वे अपने व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप समझते हैं। इस प्रकार बच्चों की माता-पिता से तू-तू, मैं-मैं आरंभ हो जाती है। जब बहू नित्य-प्रतिदिन अपने पति को अपनी सास के बारे में झूठी-सच्ची बातें सिखाती अथवा उलटी पट्टी पढ़ाती है तो स्वाभाविक रूप में माता का हृदय दुखी होता है। अपनी पत्नी का सिखाया पुत्र अपनी माता के लाखों उपकार भुला देता है और माता से लड़ाई-झगड़ा करने लगता है। यह वास्तविक दृश्य भाई साहिब ने पूर्ण यथार्थ के रूप में चित्रित किया है :

माता पिता अनंद विचि पुतै दी कुड़माई होई।
रहसी अंग न मावई गावै सोहिलड़े सुख सोई।
विगसी पुत विआहिऐ घोड़ी लावां गाव भलोई।. . .
नुहु नित कंत कुमंतु देइ विहरे होवह ससु विगोई। *(पउड़ी ११)*

भाई साहिब संकेत देते हैं कि लाखों में कोई एक सरवन-सा नेक पुत्र होता है जो इस उपर्युक्त व्यवहार से दूर रहता हुआ माता-पिता की सच्ची सेवा कमाता और उनकी प्रसन्नता लेता है :

होवै सरवण विरला कोई ॥ *(वही)*

पत्नी पति पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लेती है। भाई साहिब कथन करते हैं, जैसे दुनिया में जन्म लेते ही मनुष्य मालिक प्रभु को भूल जाता है। जब वह ब्याहा जाता है तो माता-पिता को भी भुला देता है। वह नहीं सोचता कि उसके विवाह को निश्चित करते समय और विवाह के समय कितनी कामनाएं व आशाएं रखी गई थीं। पुत्र और बहू दोनों ही पूर्णतः भूल जाते हैं कि उनके बुजुर्ग माता-पिता अथवा सास-ससुर कैसे उनको देख-देख कर जीते हैं। विवाह होने के उपरांत बहू जल्दी ही पति के माता-पिता से अलग होने की रट लगाने लगती है। एक दिन पुत्र अपनी पत्नी को लेकर माता-पिता के उपकार भूलता हुआ उनसे अलग हो ही जाता है। यह कितनी बड़ी अनदेखी है:

कामणि कामणिआरीऐ कीतो कामणु कंत पिआरे।
जंमे सांईं विसारिआ वीवाहिआं मां पिअ विसारे।
सुखां सुखि विवाहिआ सउणु संजोगु विचारि विचारे।
पुत नूहैं दा मेलु वेखि अंग ना माथनि मां पिउ वारे।
नूंह नित मंत कुमंत देइ मां पिउ छडि वडे हतिआरे।
वख होवै पुतु रंनि लै मां पिउ दे उपकारु विसारे।
लोकाचारि होइ वडे कुचारे ॥ *(पउड़ी १२)*

भाई गुरदास जी के अनुसार माता-पिता को भूल कर अन्य सभी कर्म व्यर्थ हैं। बुजुर्ग माता-पिता के सत्कार की जगह मनुष्य जो अन्य कार्य करता है उनके बारे में वर्णन

करते हुए भाई गुरदास जी उल्लेख करते हैं कि जो मनुष्य माता-पिता को त्याग कर वेद, पाठ सुनता है वह रूहानी तत्व से, प्रभु के रहस्य से दूर है। जो पुत्र माता-पिता को भुला कर जंगलों-बेलों में जाकर तप करता है वह जंगलों में ही खो जाता है। जो बच्चा माता-पिता की सेवा करने की जगह देवी-देवताओं की पूजा करता है उस पूजा को देवी-देवते भी स्वीकार नहीं करते। जो व्यक्ति माता-पिता को बुजुर्ग अवस्था के दुखों में छोड़ अठसठ तीर्थों का स्नान करता फिरता है वह घूमन-घेरियों में ही गोते खाता रहता है, उसको कोई फल नहीं मिलता। घर में माता-पिता के लिए अच्छा कपड़ा नहीं, अच्छी खुराक नहीं। इसकी जगह अपनी झूठी प्रसिद्धि को बढ़ाने के लिए बड़े-बड़े दान करने वाला मनुष्य अज्ञानी है, बेईमान है। बुजर्गु माता-पिता की सेवा की जगह तप आदि कर्म करने वाला पुत्र चौरासी लाख योनियों के चक्र में भूला हुआ घूमता रहता है। भाई गुरदास जी बताते हैं कि उपर्युक्त लक्षणों वाले पुत्र, गुरु और परमात्मा की सांझ नहीं जान सकते। माता-पिता की सेवा अमूल्य है। जो इससे हीन है उस पर प्रभु-परमात्मा प्रसन्न नहीं होते :

मां पिउ परहरि सुणै वेदु भेदु न जाणै कहाणी।
मां पिउ परहरि करै तपु वणखंडि भुला फिरै बिबाणी।
मां पिउ परहरि करै पूजु देदी देव न सेव कमाणी।
मां पिउ परहरि न्हावणा अठसठि तीरथ घुंमण वाणी।
मां पिउ परहरि करै दान बेईमान अगिआन पराणी।
मां पिउ परहरि वरत करि मरि मरि जंमै भरमि भुलाणी।
गुरु परमेसरु सारु न जाणी ॥ (पउड़ी १३)

माता-पिता अपने बच्चों का बहुत ख्याल रखते हैं, आंख से ओझल होने पर बहुत तड़पते हैं, परंतु बच्चे इसका प्रतिउत्तर नहीं देते। उसका उदाहरण अथवा दृष्टांत देते हुए ही भाई साहिब गुरु का अपने सिक्खों के लिए तीव्र प्यार प्रकट करते हैं जो सिक्खों को मन-वचन-कर्म में दृढ़ करना चाहता है :

जैसे मात प्रतिपालित अनेक सुत,
अनिक सुतन पै न तैसो होय आवई।
जैसे माता पिता चित चाहत है सुतन कौ,
तैसे न सुतन चित चाह उपजावई ॥
जैसे माता पिता सुत सुख दुख सोगानंद,
सुख दुख मैं न तैसे सुत ठहिरावई।
जैसे मन बच कर्म सिक्खन लडावै गुरु,
तैसे गुरुसेवा गुरुसिक्ख न हितावई ॥६७॥१०१॥
(कबित्त सवैये)

उपर्युक्त सार से कहा जा सकता है कि भाई गुरदास जी ने अपने समय की युवा पीढ़ी को बुजुर्ग माता-पिता के सत्कार को कायम रखने के लिए बहुत अमूल्य शिक्षा दी है। हमें भाई गुरदास जी की निर्मल शिक्षाओं के अनुरूप अपने माता-पिता को बुजुर्गों को हृदय से सत्कार व प्यार देना चाहिए। इसके साथ यदि माता-पिता के उपकार का किनका मात्र भी ऋण उतर जाए तो यह हमारे जीवन में बहुत सार्थकता रखेगा!



सिक्ख इतिहास के बुजुर्ग शहीद

*-डॉ. राजेंद्र सिंघ साहिल**

शहादत का अर्थ

शब्द-कोशों में 'शहादत' शब्द के दो मुख्य अर्थ दिये गये हैं। एक है--'सच्ची गवाही' और दूसरा है--'धर्म हेतु युद्ध करते हुए मौत को गले लगाना'। धर्म-युद्ध में अपना जीवन अर्पित कर देने वाला और अपने मुर्शिद के हक में सच्ची गवाही भरने वाला 'शहीद' कहलाता है।

सिक्ख धर्म की शहीदी परंपरा

सिक्ख धर्म में शहादत का स्थान बहुत ऊंचा है। प्रथम पातशाह साहिब श्री गुरु नानक देव जी ने 'शहादत' के चाव को सिक्ख धर्म में प्रवेश की पहली और मूलभूत योग्यता स्वीकार किया था :

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ ॥
सिरु धरि तली गली मेरी आउ ॥
इतु मारगि पैरु धरीजै ॥
सिरु दीजै काणि न कीजै ॥ *(पन्ना १४१२)*

आम तौर पर शहादत देना जवानों का काम समझा जाता है। विचार किया जाता है कि शहीद होने के लिए जिस हिम्मत, ताकत, जुर्रत और जज्बे की जरूरत होती है वह युवाओं में ही पाया जाता है। वृद्ध लोग शांत एवं गंभीर प्रकृति के हो जाते हैं, इसलिए वे समझौते का मार्ग चुनते हैं।

यह बात आम लोगों के मामले में शायद सच हो परंतु गुरु के सिक्खों के लिए कोई मायने नहीं रखती। गुरु के लाडलों ने, भले ही वे जवान थे या वृद्ध . . . जरूरत पड़ने पर हंसते-हंसते अपने प्राण न्यौछावर किये। वैसे भी शहादत की भावना का उम्र से कोई ताल्लुक नहीं होता। 'शहीद', शहीद है, वह जवान या बूढ़ा नहीं होता। शहादत वही दे सकता है जिसमें जज़्बा हो, जिसमें जुर्रत हो . . .। जिसमें ये सब नहीं, वो भले ही जवान हो या बूढ़ा 'शहादत' नहीं दे सकता।

गुरु-प्यारे सिक्खों ने शहादतें दीं . . . जवानों ने भी और वृद्धों ने भी, क्योंकि वे महान सिक्ख शहीदी परंपरा के वारिस थे।

माता गुजरी जी का बलिदान

माता गुजरी जी को शहीद-गुरु की सुपत्नी, सरबंसदानी पुत्र की माता और शहीद पोतों की दादी होने का सम्मान तो हासिल है ही . . . साथ ही आप सिक्ख शहीदी परम्परा में शहीद होने वाली पहली स्त्री भी हैं।

'परिवार विछोड़े' के बाद कपटी गंगू ने गद्दारी करके माता जी एवं छोटे साहिबजादों को सूबा सरहिंद के पास गिरफ्तार करवा दिया। माता गुजरी जी ने ठंडे बुर्ज में कैद रहते हुए छोटे साहिबजादों को सब्र-सिदक और स्वाभिमान की ऐसी शिक्षा दी कि मात्र पांच और सात वर्ष के बच्चे सारी यातनाएं सह कर भी अडिग रहे और शहादत दे गये। शहादत के समय माता गुजरी जी की आयु लगभग ८० वर्ष की थी।

बंद-बंद कटवाकर शहीद होने वाले भाई मनी सिंघ जी

१७३३ ई में शरीर का बंद-बंद कटवा कर शहीद होने वाले भाई मनी सिंघ जी शायद बुजुर्ग शहीदों में सबसे बड़ी उम्र के थे। शहादत

**१/३३८, 'स्वप्नलोक', दशमेश नगर, मंडी मुल्लांपुर दाखा (लुधियाना)-१४११०१*

के समय भाई साहिब की आयु ८९ वर्ष की थी। मात्र १३ वर्ष की उम्र में बालक 'मनीया' के रूप में सप्तम पातशाह श्री गुरु हरिराय साहिब जी के दरबार में उपस्थित होने वाले भाई मनी सिंघ जी का सम्बंध लंबे समय से गुरु-घर की सेवा में लगे हुए परिवार से था। भाई साहिब के दादा भाई बलू राव छठम पातशाह श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी के सिपहसालार थे। सन् १६९९ ई की वैसाखी के दिन भाई मनीराम ने ५५ वर्ष की आयु में अमृत छका और भाई मनी सिंघ सज गये। दशमेश पिता भाई साहिब की तेग के साथ-साथ कलम से भी प्रभावित थे। इसीलिए गुरु साहिब ने सन् १७०४ ई में आप से श्री गुरु ग्रंथ साहिब का पुनर्संपादन करवाया। कुशल प्रबंधक के रूप में आप ने श्री हरिमंदर साहिब की 'मीणे-महंतों' से रक्षा की और 'बंदई खालसा' तथा 'तत्त खालसा' के विवाद को समाप्त कराया। सन् १७३३ ई में श्री हरिमंदर साहिब में वैसाखी मनाने के एवज में लाहौर दरबार से दस हजार रुपये 'जजिया' देने का समझौता हुआ। इतने में भाई मनी सिंघ जी को खबर मिली कि शत्रु की योजना है कि वैसाखी पर एकत्र सिक्खों को एक साथ घेर कर मार दिया जाये। भाई जी ने सिक्खों को न आने के संदेश भेजे। वैसाखी के दिन कोई सिक्ख न आया। नाराज होकर लाहौर के सूबेदार ज़करिया खान ने भाई साहिब को गिरफ्तार करके लाहौर मंगवाया और शरीर का बंद-बंद काट कर शहीद कर दिया।

बाबा दीप सिंघ जी शहीद

जब भी श्री हरिमंदर साहिब की चर्चा चलती है तब हमेशा महान् शहीद बाबा दीप सिंघ जी की याद अपने-आप ही आ जाती है। बाबा जी ने श्री हरिमंदर साहिब की पवित्रता की रक्षा के लिए बलिदान दिया।

दशमेश पिता से अमृत-पान करके 'सिंघ' सजे बाबा दीप सिंघ जी योद्धा होते हुए भी आध्यात्मिक रुचियों वाले थे। आप सदैव नाम-सिमरन और गुरबाणी-अध्ययन में रत रहते। दशमेश पिता के साथ सभी जंगों में भाग लेने वाले बाबा दीप सिंघ जी ने गुरु साहिब के नांदेड़ चले जाने के उपरांत तलवंडी साबो में गुरबाणी पठन-अध्ययन की एक टकसाल आरंभ की जो बाद में 'दमदमी टकसाल' कहलाई।

सन् १७५७ ई में अहमदशाह अब्दाली ने अमृतसर पर कब्जा कर लिया और श्री हरिमंदर साहिब को ढहा कर अमृत-सरोवर को मिट्टी से भर दिया। यह खबर मिलते ही बाबा जी का खून खौल उठा। ७५ वर्ष की वृद्ध अवस्था होने के बावजूद बाबा जी ने खंडा उठा लिया।

तलवंडी साबो से चलते वक्त बाबा जी के साथ सिर्फ आठ सिक्ख थे, परंतु रास्ते में और सिक्खों के आकर मिलते रहने से तरनतारन साहिब तक आते-आते सिक्खों की गिनती पांच हजार तक जा पहुंची। तरनतारन के निकट गोहलवड़ गांव के बाहर सिक्खों और अफगान सिपहसालार जहान खां के लश्कर में जबरदस्त जंग छिड़ गई। श्री हरिमंदर साहिब की बे-अदबी से गुस्साए सिंघों ने वैरी के छक्के छुड़ा दिये। अफगानों को गाजर-मूली की तरह काटते हुए बाबा दीप सिंघ जी आगे बढ़ रहे थे कि एक घातक वार से बाबा जी की गरदन कट गई और वे युद्ध-भूमि में गिर पड़े। यह देख कर एक सिक्ख ने बाबा जी को उनका प्रण स्मरण कराया तो बाबा दीप सिंघ जी फिर उठ खड़े हुए। दाहिने हाथ में खंडा लिया और बायें हाथ में शीश संभाला और युद्ध करते-करते गुरु की नगरी श्री अमृतसर पहुंचे। बाबा दीप सिंघ जी

शहीद हो गये परंतु श्री हरिमंदर साहिब की बे-अदबी का बदला ले लिया।

बाबा गुरबख्श सिंघ जी

श्री हरिमंदर साहिब की रक्षा के लिए अपनी जानें वार देने वाले सिक्खों की फेहरिस्त बहुत लंबी है। शहीदों की इसी परंपरा में एक नाम बुजुर्ग शहीद बाबा गुरबख्श सिंघ जी का है। सन् १७६४ ई के अब्दाली के हमले के दौरान साठ वर्ष से ऊपर के हो चुके बाबा गुरबख्श सिंघ जी ने अपने सिर्फ तीस साथियों के साथ अब्दाली की छत्तीस हजार फौज का मुकाबला किया और अनगिनत वैरियों को मौत के घाट उतारते हुए साथियों समेत शहीदी प्राप्त की।

सन् १७०५-१० ई के आस-पास जन्मे बाबा गुरबख्श सिंघ जी खेमकरण (अमृतसर) के एक नजदीकी गांव 'लील' के थे। आप ने भाई मनी सिंघ जी से अमृत छका था। आप पक्के 'रहतवान' और 'सूरमा' थे। पंथ में आपको सम्मानपूर्वक 'निहंग जी' कहकर पुकारा जाता था। आप जहां कहीं भी जंग होने की खबर सुनते, नगाड़े बजाते हुए वहां पहुंच जाते। बाद में आपने श्री अकाल तख्त साहिब के जत्थेदार के रूप में भी पंथ की सेवा की।

नवंबर-दिसंबर सन् १७६४ ई में अब्दाली ने भारत पर सातवां हमला किया। इस समय ज्यादातर सिक्ख जत्थेदार पंजाब से बाहर अलग-अलग मुहिमों पर गये हुए थे। अब्दाली ने आते ही श्री हरिमंदर साहिब को घेर लिया।

इस समय श्री हरिमंदर साहिब में बाबा गुरबख्श सिंघ जी समेत सिर्फ तीस सिक्ख थे। हमले की खबर सुनते ही दिलेर सिंघों ने 'अनंदु साहिब' की पांच पउड़ियों का पाठ किया, अरदासा सोधा, श्री दरबार साहिब में माथा टेका और शस्त्र सजा कर जंग के लिए तैयार हो गये।

अब्दाली के सैनिक दर्शनी ड्योढ़ी में पैर रखने की कोशिश करते तो सिंघों की श्री साहिब की भेंट चढ़ जाते। दुश्मन के पास तीर और बंदूक जैसे दूर से मार करने वाले हथियार थे और इधर सिर्फ चोले धारण किये, बिना कवच-ढाल के हाथ में तलवारें लिए लड़ते मुट्ठी-भर सिक्ख। फिर भी दर्शनी ड्योढ़ी पर हुए भयानक युद्ध में बाबा गुरबख्श सिंघ जी एवं अन्य सिंघों ने महज तलवारों और बरछों से अनगिनत वैरियों को मौत की नींद सुला दिया।

हजारों के लश्कर से मुकाबला करते सिर्फ तीस सिंघ और बाबा गुरबख्श सिंघ जी अनेक शत्रुओं को मार मुकाने के बाद अंततः २ दिसंबर, १७६४ ई को श्री हरिमंदर साहिब की रक्षा करते हुए शहीद हो गये।

बुड्ढा दल की सामूहिक दिलेरी

सन् १७३०-३५ ई में सिंघों ने दो दलों की रचना की। 'बुड्ढा दल' और 'तरना दल'। ४० बरस से बड़ी उम्र के सिंघ 'बुड्ढा दल' कहलाये और इससे कम उम्र वालों का दल 'तरना दल' बना। बुड्ढा दल में शामिल बहादुरों ने छोटे-बड़े घल्लूघारे समेत अनगिनत मुहिमों में अपनी वीरता के जौहर दिखाये। सरदार दरबारा सिंघ, सरदार करोड़ा सिंघ, सरदार (नवाब) कपूर सिंघ (१६९७-१७५३ ई), सरदार जस्सा सिंघ आहलूवालिया (१७१८-१८०१ ई), सरदार जस्सा सिंघ रामगढ़िया (१७२३-१८०३ ई), सरदार बघेल सिंघ (१७२५-१८०२ ई), सरदार हरी सिंघ नलूआ (१७९१-१८३७ ई) आदि खालसा फौज के अनेक सिपहसालार हुए जिन्होंने बुजुर्ग उम्र तक पंथ की अगवाई की। यह सही है कि इनमें से अधिकांश ने जंग-ए-मैदान में शहादत नहीं पाई परंतु इनकी दिलेरी के कारनामे अद्भुत थे। इन्होंने १७४० से १८०० ई तक के

समय में खालसा फौजों का नेतृत्व किया और अनगिनत जंगें लड़ीं।

सरदार शाम सिंघ अटारी

सिक्ख इतिहास की बुजुर्ग शहीद परंपरा में एक नाम महाराजा रणजीत सिंघ के बहादुर जरनैल सरदार शाम सिंघ अटारी का भी है। महाराजा के लिए अनेक जंगें जीतने वाले सरदार शाम सिंघ अटारी सभरावां की जंग में अंग्रेजों से लड़ते हुए १० फरवरी, १८४६ ई को ६१ वर्ष की आयु में शहीद हुए।

बुजुर्ग शहीदों की परम्परा अटूट है

इस लेख में बुजुर्ग शहीदों के नाम स्थानाभाव के कारण बहुत ही कम आ सके हैं। छठम पातशाह के काल से लेकर महाराजा रणजीत सिंघ के समय तक अनेक जंगें लड़ी गईं और निश्चित रूप से इनमें अनेक बुजुर्ग लड़े तथा शहीद हुए। यही नहीं बाद के समय में भी गुरुद्वारा सुधार लहर, पंजाबी सूबा मोर्चा और चौरासी के साकों के मोर्चों में भी अनगिनत कुर्बानियां हुईं जिनमें अनेक बुजुर्ग शामिल थे। आज हम उन सबके नाम भले न जानते हों पर उन्हें *'जिन्हा सिंघां सिंघनीआं धरम हेत सीस दित्ते'* कह कर नित्य याद करते हैं।



कविता

जैसी करनी वैसी भरनी

जैसी करनी वैसी भरनी, बात न यूं ही भुलाएं।
करके सत्कार बुजुर्गों का, अपना फर्ज़ निभाएं।
अंतिम समय गुजारने हेतु, बुजुर्गों ने घर बनाए हैं।
समय ने कैसी चाल है पकड़ी, बुजुर्ग 'आश्रमों' में पहुंचाए हैं।
वृद्ध आश्रमों में बुजुर्गों को, यूं तो न रुलाएं।
करके सत्कार . . .
बुजुर्ग तो एक दिन हमको भी, अंत में बनना पड़ना है।
जिंदगी के इस चक्र में से, सब ने गुजरते रहना है।
बुजुर्गों की की हुई सेवा से, फिर बैठ कर मेवे खाएं।
करके सत्कार . . .
जब भी पुत्र माता-पिता को, प्यार के साथ बुलाते हैं।
प्यार बिना माता-पिता न फिर, पुत्रों से कुछ चाहते हैं।
प्यार की यह श्रृंखला न टूटे, ऐसा कुछ कर पाएं।
करके सत्कार . . .
हो सत्कार बुजुर्गों का यदि, घर में बच्चे देखते हैं।
मुंह से चाहे कुछ न कहते, पर दिल में सब कुछ रखते हैं।
बच्चों का दिल शीशे जैसा, अच्छे बन कर आगे आएं।
करके सत्कार बुजुर्गों का, अपना फर्ज़ निभाएं।



-स. दरबारा सिंघ ऐडवोकेट, गांव जखवाली, डाक मुलेपुर, तहसील एवं जिला फतेहगढ़ साहिब (पंजाब)।

बुजुर्ग आयु में मानवता की सेवा कमाने वाले भक्त पूरन सिंघ जी

*-भाई जैदीप सिंघ**

गुरबाणी में मानवी जीवन की तीन अवस्थाओं का जिक्र 'बाल, जुआनी और विरध' करके आता है। मनुष्य को बचपन में खेलों और खाने से प्यार है तथा यौवन में मन अनेक तरंगों का शिकार होता है। फिर समय पाकर *'जरु वेस करेदी आईऐ'* बुढ़ापा आ जाता है। इस अवस्था में मनुष्य शारीरिक तौर पर दुर्बल हो जाता है। बाबा फरीद जी ने भी इसका जिक्र किया है :

फरीदा इनी निकी जंघीऐ थल डूंगर भविओम्हि ॥
अजु फरीदै कूजड़ा सै कोहां थीओमि ॥

(पन्ना १३७८)

भाव--इन छोटी-छोटी टांगों के साथ जवानी में मैंने कई मैदानों-पर्वतों का चक्र लगा लिया परंतु अब बुजुर्गी में चारपाई के पास ही पड़ा कुज्जा (छोटा मटका) भी सैंकड़ों कोस दूर लगता है।

श्री गुरु तेग बहादर जी ने *"सिरु कंपिओ पग डगमगे नैन जोति ते हीन"* का कथन किया है। सिर कांप रहा है, पांव डगमगा रहे हैं, आंखों की रोशनी रह गई है। इस दुर्बल स्थिति में साधारणत: इंसान के साथ ऐसा भी हो जाता है कि भोजन थाली में परोस कर आगे रखा हुआ है परंतु शरीर हाथों के साथ बुरकी तोड़ कर मुंह में डालने से असक्षम है।

सीधे शब्दों में ऐसी अवस्था में शरीर सहारे की तलाश करता है। इसकी नित्य की क्रियाएं भी दूसरों पर निर्भर हो जाती हैं। परंतु यदि कोई इस आयु में दूसरों पर निर्भर होने की बजाय किसी का सहारा बन जाए तो साधारण व्यक्ति के लिए यह एक आश्चर्य वाली बात होगी। गुरबाणी एवं गुरु-इतिहास के प्रकाश में यदि हम देखें तो हमें ज्ञात होता है कि सिक्ख धर्म में शरीर से सुरति की बात अधिक की गई है। यहां सुरति के टिकाव से प्राप्त आध्यात्मिक जीवन के कारण ५ वर्ष की आयु में गुरुता-पदवी भी प्राप्त हो जाती है। दूसरी ओर धर्म के रास्ते पर चलते हुए श्री गुरु अमरदास जी ने बुजुर्गी की अवस्था में ब्यास दरिया से गागर में जल भर कर लाने की सेवा कितने वर्ष की? बारह वर्ष तक। बाबा दीप सिंघ जी शहीद ने बुजुर्गी की आयु में १८ सेर का खंडा रण-क्षेत्र में अफगान आक्रमणकारियों पर चलाया और दुश्मनों का संहार करते हुए श्री हरिमंदर साहिब श्री अमृतसर की पवित्रता के लिए शहीदी प्राप्त की। भाई मनी सिंघ जी ने बुजुर्गी की आयु में ही अपना बंद-बंद कटवा कर शहादत प्राप्त की। इस तर्ज पर कुर्बानियां करने वाले अन्य भी अनेकों बुजुर्ग व्यक्तित्व सिक्ख इतिहास का गौरव हैं।

इस आलेख में एक ऐसे व्यक्तित्व का जिक्र करने जा रहा हूं जिसने बिना रंग, जाति एवं नस्ल के भेदभाव से सभी को *"एकस के बारिक"* समझ कर इंसानियत के नाते सेवा की। इस व्यक्तित्व को हम भक्त पूरन सिंघ जी, संस्थापक पिंगलवाड़ा, अमृतसर करके जानते हैं। आपका जन्म ३ जून, १९०४ ई को गांव राजेवाल, जिला लुधियाना में एक हिंदू परिवार

**भाई घनईया जी सेवा सिमरन केंद्र, फगवाड़ा (कपूरथला, पंजाब)। मो : ९८८८३-८६२३३*

में हुआ। आपका पहला नाम राम जी दास था। फिर आप अमृत छक कर, गुरसिक्खी धारण करके 'पूरन सिंघ' बन गए।

यौवन की जिस आयु में साधारणतः युवक भोग-विलासों, द्रव्यों की ओर रुचित होते हैं, भक्त पूरन सिंघ जी ने उस आयु में अपनी माता जी द्वारा दी गई अच्छी शिक्षाओं के कारण अपने जीवन का उद्देश्य जरूरतमंद दुखियों की सेवा-संभाल को मान लिया और गुरुद्वारा डेहरा साहिब लाहौर में गुरबाणी, सेवा-सिमरन के द्वारा संरचना को रूप-आकार देना आरंभ कर दिया। वहां के प्रबंधकों ने भी भक्त पूरन सिंघ जी को पूर्ण सहयोग दिया। १९३४ ई को लगभग चार वर्ष का एक पिंगला और गूंगा बच्चा इनको मिला जिसको ये 'प्यारा' कहा करते थे। वास्तव में यह 'पिंगलवाड़ा' संस्था की शुरुआत थी।

फिर १९४७ ई में देश के विभाजन के समय खालसा कॉलिज अमृतसर के शरणार्थी कैंप में सेवा की। कुछ समय रेलवे स्टेशन, कभी सड़कों के किनारे वृक्षों तले और कभी खुले आसमान के नीचे रहे। यह प्रारंभिक समय बहुत कठिनाइयों भरा था परंतु भक्त पूरन सिंघ जी परमेश्वर का सहारा लेकर इस ओझड़ पथ को सर करते गए।

भक्त पूरन सिंघ जी ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि "बचपन से ही मेरे माता जी मुझे पशुओं की सेवा करने, वृक्षों को लगाने और इनकी संभाल करने तथा बुजुर्गों, जरूरतमंदों की सेवा के लिए प्रेरित करते थे। वे स्वयं भी राहगीरों और पशुओं को सारी ग्रीष्म ऋतु में लघु कुएं से पानी निकाल कर पिलाती रही थीं। मुझे सेवा के क्षेत्र में लाने में मेरी मां का एक बड़ा रोल था।"

प्रसिद्ध विद्वान प्रिंसीपल जोध सिंघ ने लिखा है : "मैंने १९४९ ई को भक्त पूरन सिंघ जी का पिंगलवाड़ा जाकर देखा। खालसा कॉलेज के नजदीक एक छोटे से मकान में भक्त पूरन सिंघ जी ने डेरा लगाया हुआ था और जो शरीर अपनी क्रिया भी नहीं कर सकते थे उनके गंदे कपड़े साफ करने, उनका मुंह धोने जैसी नित्य क्रियाएं भक्त जी स्वयं प्रेम सहित करते थे। पैसे देना मैं आसान काम समझता हूं परंतु हाथों से सेवा करना बहुत कठिन काम है, वो भी उनकी जिनसे छूत का रोग लगने का भय हो परंतु भक्त जी गुरु-शिक्षाओं के अनुरूप इन बातों से बेपरवाह होकर बेसहारों का सहारा बने हुए थे।"

इसके अतिरिक्त भक्त जी प्रकृति के बचाव, सामाजिक मूल्यों, भाई-बंधुत्व, परमाणु, विनाशकारी युद्धों, द्रव्यों आदि पर हिंदी, पंजाबी, अंग्रेजी में आलेख मुद्रित करा कर जनता को जागरूक करते थे। कोई भी सम्मान भक्त जी के अद्वितीय कार्य के लिए छोटा है। फिर भी संतोष की बात है कि अनेकों संस्थाओं द्वारा उनका सम्मान किया गया। आपको 'पदम श्री' सम्मान भी मिला। लेकिन इतनी बात अवश्य कहूंगा कि भक्त जी इस सम्मान से बहुत ऊंचे थे। अंत में *"जीवत साहिबु सेविओ अपना चलते राखिओ चीति"* के अनुसार गुरु-हुक्मों को कमाते हुए इस नश्वर संसार को अलविदा कह हमारे लिए पद-चिन्ह छोड़ गए। दास खुद उनकी अंतिम यात्रा में अमृतसर में शामिल हुआ था। लोगों का एक बहुत बड़ा काफिला इस मानवता के दर्दी को सेजल आंखों के साथ विदायगी देने के लिए आया हुआ था। उनके द्वारा शुरू किया गया सेवा का महान कार्य आज एक बड़ी संस्था का रूप धारण करके डॉ. इंद्रजीत कौर की देख-रेख तले चल रहा है।



वृद्ध अवस्था : मौत के रूबरू

*-स. गुरबख्श सिंघ प्यासा**

न्यायसंगत तो यही होगा कि यदि हमें वृद्ध अवस्था के बारे में बात करनी है तो उसके मूल अर्थात् बाल अवस्था से बात आरंभ करनी होगी कि उसे बाल अवस्था में घुट्टी के रूप में कैसे संस्कार मिले? फिर उसके तेजस्वी पहर युवा अवस्था से आंख मिलानी होगी और अंत में उसकी उतरती बेला की लंबी होती परछाई को निहारना होगा, तब कहीं जाकर बात बनेगी।

दूसरी ओर एक अदृश्य, कल्पनातीत, अवश्यंभावी डरावने बिंब-रहित, कथित लुटेरे से सामना है। कैसी होगी उस निराकार की कल्पित छवि? शायद यह प्रत्येक मनुष्य की मानसिक अवस्था के अनुसार भिन्न-भिन्न होगी, परन्तु अधिकतर मेरी तरह, कबूतर की भांति आंखें बंद रखना ही श्रेस्कर समझते हैं। खैर . . . ! वृद्ध अवस्था एवं मृत्यु का जिससे संबंध जुड़ता है वह है जीवन और जीवन का स्वरूप उसी के अनुरूप होगा जैसा कि उसका प्रेरणा-स्रोत होगा। गुरबाणी में कथन है :

जै सिउ राता तैसो होवै ॥ (पन्ना ४११)

बातों में से बात निकलती है तो कहे बिना रहा नहीं जाता कि हमारी कई प्रचलित परिभाषाएं सतही प्रतीत होती हैं, जैसे कि जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई न हो उसे बिन्दु कहते हैं। वाह! आकार का आधार ही निराकार की श्रेणी में पहुंच गया। कुछ इसी तरह प्रकाश और अंधकार को नकारात्मक कोण से परिभाषित करना। यह इस प्रकार भी तो अभिव्यक्त किया जा सकता है कि जहां प्रकाश उपस्थित न हो वह अंधकार की अवस्था होती है, जहां जीवन न हो वह मृत है अर्थात् प्राणमय और प्राणहीन का मूल जोड़ने की प्रवृत्ति।

परन्तु गुरबाणी तो हमें प्रकृति के गूढ़ यथार्थ से अवगत करवाना चाहती है अर्थात् संपूर्ण ज्ञान द्वारा मनुष्य को पूर्णता प्रदान करने की जीवन-युक्ति सिखलाती है। हमारा मंद-भाग्य कि हमने जाने-अनजाने गुरबाणी के परम लक्ष्य अर्थात् विचार पक्ष अथवा वीचार पक्ष को अभी तक आवश्यकता के अनुरूप नहीं लिया है।

सराहनीय हैं वे गुरसिक्ख जो गुरबाणी के उपरोक्त मुख्य उद्देश्य अर्थात् 'वीचार पक्ष' के प्रचार के लिए भगीरथी प्रयास कर रहे हैं ताकि गुरमति के अनुरूप जीवन ढाल कर जीवन को सार्थकता प्रदान की जा सके और सही अर्थों में एक गुरसिक्ख कहलाने के योग्य बन सकें।

देखिए! गुरबाणी जिज्ञासु को कुदरत के गूढ़ भेदों से कैसे साख्यात करवाती है :

दिन महि रैणि रैणि महि दिनीअरु उसन सीत बिधि सोई ॥ (पन्ना ८७९)

एवं

भीतरि अगनि बनासपति मउली सागरु पंडै पाइआ॥
चंदु सूरजु दुइ घर ही भीतरि ऐसा गिआनु न

*२२, प्रभु पार्क सोसायटी, नज़दीक आसोपालव सोसायटी, ओल्ड छानी रोड, वडोदरा (गुजरात)-३९०००२

पाइआ ॥ *(पन्ना ११७१)*

हां, यही कुदरत का कानून है अर्थात् प्रकृति का नियम है जो हमारी जीवन-युक्ति का हिस्सा नहीं बन पाया अन्यथा हम जीवन और मृत्यु को दो स्वतंत्र इकाइयों का रूप न देते! तभी तो जीवन या जीवन की एक अवस्था (वृद्ध अवस्था) को मृत्यु के रूबरू ला खड़ा किया है।

हकीकत में यह जो जीवन है, जिस पर हम इतना अभिमान करते हैं, यही विश्वासयोग्य नहीं। तभी तो इसे 'क्षण-भंगुर' कहा गया है, क्योंकि इसकी नाजुक डोर पता नहीं कब टूट जाए! अर्थात् अगला सांस आएगा भी कि नहीं, यह निश्चित नहीं। श्री गुरु नानक देव जी ने अपने पावन शबद में इस तथ्य की इस प्रकार व्याख्या की है :

हम आदमी हां इक दमी मुहलति मुहतु न जाणा ॥ *(पन्ना ६६०)*

जीवन के कसीदे अपनी जगह हैं, परन्तु है यह छलिया ही, पता नहीं कब दगा दे जाए! एक उर्दू के कवि ने इस सारे परिपेक्ष को बड़े सुंदर ढंग से पेश किया है :

आगाह अपनी मौत से कोई बशर नहीं।
सामान सौ बरस का पल की खबर नहीं।

प्रतिदिन हम ऐसी दुर्घटनाएं पढ़ते/सुनते हैं कि कोई प्रसव के समय, कोई बाल, किशोर युवा अवस्था में इस संसार से विदा हो गया। ऐसे ही दृश्यों से द्रवित होकर कोई कवि कह उठा होगा :

फूल तो दो दिन बहारें, बाग में दिखला गए।
हसरत तो उन गुंचों से है, जो बिन खिले मुर्झा गए।

इसी प्रकार के अन्य प्रकोप, जैसे भूकंप, सुनामी (समुद्री तूफान) युद्ध, दुर्घटनाएं आदि मृत्यु का कारण बनती हैं, तो क्या वहां अवस्था-विशेष के लोग काल का ग्रास बनते होंगे? (हां, वृद्ध अवस्था को जीवन का '**Dead End**' कह सकते हैं।)

कुछ इसी प्रकार ही हमने ईश्वर से जुड़ने के लिए वृद्ध अवस्था को आरक्षित कर रखा है, जैसे इस अवस्था तक पहुंचने का पट्टा अपने साथ लिखा कर लाए हों। युवा अवस्था बेलगाम होकर, रंगरलियों में बिता दी अथवा कोल्हू का बैल बने रहे और अब इस टूटी-फूटी/थकी-हारी देह रूपी नाव से पार पहुंचने की कल्पना हास्यस्पद नहीं जबकि नावक पहले ही हिम्मत हार चुका हो?

यह तो हो नहीं सकता कि एक गुरसिक्ख होने के नाते श्री गुरु तेग बहादर जी, बाबा फरीद जी अथवा भक्त कबीर जी के शबद एवं श्लोक, कानों में न पड़े होंगे, परन्तु मात्र पढ़ने/सुनने से ही क्या होता है, जब मन अनुपस्थित रहे? वह तो मात्र शारीरिक क्रिया बन कर रह जाती है।

देखिए, भक्त भीखन जी ने वृद्ध अवस्था का कैसा सजीव शब्द-चित्रण किया है!

नैनहु नीरु बहै तनु खीना भए केस दुध वानी ॥
रूधा कंठु सबदु नही उचरै अब किआ करहि परानी ॥ *(पन्ना ६५९)*

और भक्त कबीर जी उपरोक्त अवस्था का नक्शा खींच कर मनुष्य से प्रश्न पूछते हैं:

चरन सीसु कर कंपन लागे नैनी नीरु असार बहै ॥
जिहवा बचनु सुधु नही निकसै तब रे धरम की आस करै ॥ *(पन्ना ४७९)*

सत्य तो यह है कि हमारी सोच ही पलायनवादी है अर्थात् हम सत्य से आंखें चुरा कर जीने के आदी हो गए हैं। "मरना सच और जीना झूठ" की साखी हमने पता नहीं

कितनी बार सुनी होगी, परन्तु चिकने घड़ों पर असर हो भी तो कैसे? जो हमारे रस-रंग भरे संसार के आड़े आएगा वह हमें कैसे सुहाएगा? उस शब्द को सुनना भी हमने अशुभ मान लिया है। यह और बात है कि हताशा/निराशा के पलों में हम स्वयं उसी कथित अशुभ की याचना करते हैं, जैसे सब दुखों-क्लेशों का एक-मात्र समाधान मृत्यु ही हो और यदि मर कर भी चैन न पाया तो किधर जाएंगे? या यूं कहें कि जो जीवित रहते प्राप्त नहीं कर पाए वह मरने के बाद पाने की आशा को, इसको क्या कहा जा सकता है? गुरमति तो मनुष्य को 'मुक्ति' भी जीवित रहते प्राप्त करने का मार्ग दर्शाती है और मरने का भी ऐसा रास्ता बताती है कि मनुष्य आवागमन के चक्र से छुटकारा पा जाए, परन्तु इसे कथनी से नहीं करनी से ही पाया जा सकता है :

जह करणी तह पूरी मति ॥
करणी बाझहु घटे घटि ॥ *(पन्ना २५)*

हम इस तथ्य से भी अनभिज्ञ नहीं हैं कि मृत्यु तो हामरे इस संसार में आने से पहले ही निश्चित हो जाती है। *"मरण लिखाइ मंडल महि आए ॥"* (पन्ना १०२२) इसके अतिरिक्त एक गुरसिक्ख के लिए अपने गुरु के सनमुख होने के लिए *"पहिला मरणु कबूलि . . ."* की शर्त रख दी गई है। फिर भी अपने गुरसिक्ख होने का भ्रम पाले हुए हैं।

सेना में भर्ती होने वाला प्रत्येक सैनिक अपना जीवन मृत्यु के दर्पण में ही देखता है। यही एक सच्चे शूरवीर का गुण है और आकांक्षा रहती है तो यही *"जब आव की अउध निदान बनै, अति ही रन मै तब जूझ मरों ॥"* *(चंडी चरित्र पा १०)* जबकि कायर तो मृत्यु के आने से पहले भी पता नहीं कितनी बार मरता है!

हो सकता है कि मनुष्य का खमीर ही ऐसा हो। हकीकत भी यही है कि हम मात्र देह के धरातल पर ही जीने के आदी हो गए हैं। कहने को तो हम मानव ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति हैं, परन्तु कुछ क्षेत्रों में तो हमारा क्रिया-कलाप पशुओं से भी गया-बीता है। यदि निष्पक्ष होकर सोचें तो हमें यह स्पष्ट हो जायेगा कि ये पशु हमसे कई गुना अच्छे हैं। श्री गुरु नानक देव जी का फरमान है :

पसू मिलहि चंगिआईआ खड़ु खावहि अंम्रितु देहि ॥
नाम विहूणे आदमी ध्रिगु जीवण करम करेहि ॥
(पन्ना ४८९)

हम मानव होने के नाम को भी लजाते हैं। बस, हमारे लिए देह ही सर्वोपरि है। हमारी पहचान, हमारे प्रतिमान, हमारी उपलब्धियां अर्थात् हमारे सारे सरोकार देह के इर्द-गिर्द ही चक्र काटते हैं। अमर होने की लालसा भी तो उचित नहीं ठहराई जा सकती क्योंकि विधि के विधान के अनुसार, *"जो उपजिओ सो बिनसि है . . . ॥"* अटल है। परन्तु देह-पाश, नाग-पाश से कम नहीं।

देखिए, एक उर्दू के शायर ने इस भाव को कैसी मार्मिक अभिव्यक्ति दी है :

क्या पता था कि वो निकलेंगे बराबर के शरीक,
दिल की हर धड़कन को अपनी दास्तां समझा था मैं।
किस कदर ज़ंज़ीर-पा साबत हुए, चन्द तिनके जिनको अपना आशियां समझा था मैं।

जब देह होगी तो नाम भी होगा। नाम की भूख सबसे प्रबल भूख गिनी गई है। चाहे अंग्रेजी के प्रख्यात साहित्यकार शेक्सपियर कह गए हों कि 'नाम में क्या (रखा) है', परन्तु 'नाम' के लिए तो मनुष्य क्या कुछ नहीं कर

गुजरता? प्रत्यक्ष प्रमाण है, संसार के सात अजूबे और 'गिनीज़ बुक ऑफ वर्ल्ड', के रीकार्ड्स की आवृत्तियां। ये रीकार्ड भी तो आज बनते हैं और कल टूट जाते हैं। काल के प्रवाह में कुछ भी शाश्वत नहीं है, यदि है तो केवल सत्य। यह सत्य ही कालातीत है अर्थात् काल से परे है। यह भी सत्य है कि मनुष्य का थोथा अहम ही सब दुखों की जड़ है, परन्तु विडम्बना यह है कि हमारा युग दिन-प्रतिदिन स्वार्थपरता की सीमाएं पार करता जा रहा है। 'मैं', 'मेरी' पत्नी', 'मेरे बच्चे', 'मेरी संपत्ति', 'मेरे विचार', 'मेरा मजहब', 'मेरा देश' रटते नहीं थकता। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए सब कुछ दांव पर लगा देता है। आज रिश्ते-नाते, मित्र आदि मात्र सीढ़ियां बन कर रह गए हैं।

जहां युग-धारा का इष्ट पैसा बन गया हो और हरेक वस्तु बिकाऊ मान ली गयी हो वहां मानवीय मूल्यों की क्या बिसात? आज अधिकतर अपना सुख सर्वोपरि है। आज नारी देह मात्र नुमायश की वस्तु बना दी गई है। कहीं मजबूरीवश और कहीं प्रगतिशीलता/आधुनिकता के नाम पर कठपुतली की तरह नाच रही है और तो और उसकी कोख भी बिकाऊ बन गई है।

इस अंधी दौड़ में जहां बचपन, यांत्रिक पुर्जों के निर्माण हेतु भस्म हो रहा हो, युवा शक्ति अधिकांशित भ्रमित होकर नशों में डूबती जा रही हो, वहां समय-च्युति (न घर के न घाट के) डोलती परछाइयों की किसे चिंता होगी? और पनाह मिलेगी तो कहां? आज 'घर, परिवार, स्नेह, ममता, आदर-सत्कार' जैसे शब्द अपने अर्थों का मुंह चिड़ा रहे प्रतीत होते हैं। *"बिरधि भइआ ऊपरि साक सैन ॥ मुखि अपिआउ बैठ कउ दैन ॥"* का पाठ करते हुए उस ७० वर्ष की बेबस विधवा (जो . . . वृद्ध आश्रम में अपने जीवन की शेष अवधि काट रही थी) की आह निकल गई और निस्तेज आंखें नम हो गयीं। जब मैंने अपने लेख के लिए बातचीत करने के बाद फोटो लेनी चाही तो उन्होंने हाथ जोड़ दिए, "बेटा, गुमनाम ही रहने दो, वरना . . .। एक क्रूर यथार्थ! 'जबरा मारे भी और रोने भी न दे'।"

यह आदर्शहीन, तेजगामी जिन्दगी जहां हर पल पिछड़ जाने का भय व्याप्त हो, वहां रुक कर सांस लेने की किसे फुर्सत है? फास्ट फूड द्वारा पेट भरने की बात हो अथवा दैहिक अग्नि शांत करने के लिए कोई भी घाट, परिणामस्वरूप 'लिव-इन' संस्कृति ही पनपेगी। इसमें आश्चर्य क्या है? प्रेम-प्यार, आस्था-विश्वास, त्याग-बलिदान आदि बीते युग की धारणाएं या बातें बनती जा रही हैं। आज का युग जैट-युग कहा जाता है जो अपने पीछे मात्र धुएं की लकीर ही छोड़ता है और वह लकीर भी कुछ पलों में आलोप हो जाती है।

आप वृद्ध-जन कितनी भी दुहाई दीजिए कि हमने अपना जीवन समाज को बांधे रखने में होम कर दिया और आज हम अपनों के हाथों ही तिरस्कारे गए हैं, दुत्कारे गए हैं, और तो और जीते-जी हम अपनी अर्जित पहचान भी खो बैठे हैं। ऐसा ही एक मार्मिक दृश्य मेरी आंखों के सामने सजीव हो उठा है। मेरे एक गढ़वाली मित्र राम सिंह जी जो कुछ दिन पहले ही एक प्रतिष्ठित फर्म के क्षेत्रीय प्रबंधक के उच्च पद से सेवा-निवृत्त हुए थे, का एक पार्टी में मेजबान ने उनका परिचय डॉक्टर के पिता के रूप में करवाया तो वे मानो सुन्न हो गए। एकांत मिलने पर उन्होंने अपनी पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त की--"सरदार जी! यकीन

मानो, अपनी पहचान खो जाना भी एक प्रकार की मृत्यु ही है।"

ऐसे ही जब किसी गृहणी (माता) की गृह-सत्ता एक पल में झपट ली जाती है तो वे राज माता के पद से दासी से भी बदतर हुई महसूसती है जबकि यह एक व्यवहारिक सत्य है कि यदि संतान ऊंचाइयां छूती है तो माता-पिता, सखा-बंधु स्वयं उनकी विजय-पताका फहराते नहीं थकते, परन्तु 'छोड़ने' और 'छूटने' की प्रक्रिया में आकाश-पाताल जैसा अंतर है। बस, शिकवा यही है कि कुछ तो भ्रम बना रहता कि दिल बुझते-बुझते ही बुझता! निर्माण करने वाले तो फालतू सामान से भी 'रॉक-गार्डन' जैसे दर्शनीय स्थल का निर्माण कर लेते हैं, जबकि हम तो अतीत नहीं हुए, वर्तमान का अंग हैं, आपकी नजरों में ही खोटे सिक्के बन गए हैं।

परन्तु माननीय वृद्ध-जनो! इस प्रलाप से कुछ हासिल होने वाला नहीं, क्योंकि 'ब्लैक-होल' में तो रौशनी भी प्रवेश नहीं कर पाती। इस करुणा की दैवी-निधि को इस प्रकार नष्ट न करो।

इस चित्र का एक दूसरा पक्ष भी है। है तो कड़ी बात परन्तु सत्य तो सत्य ही है कि आप में से अधिकांश ने मेरी तरह पानी ही बिलोया है और अब भी परछाइयों के पीछे ही भाग रहे हैं, जब कि आप लोगों ने स्वयं अनुभव कर लिया है कि कोई भी सांसारिक संबंध अथवा वस्तु चिर-स्थाई सुख देने में समर्थ नहीं है और यदि हम मात्र सांसारिक रिश्तों से ही अथाह सुख की इच्छा करने लग पड़े तो अंत में पछताना ही हाथ लगता है, परंतु इधर मेरे जैसे फिर भी हाय-तौबा मचाए हुए हैं।

गुरु की मति के पीछे चलने की बजाए मेरे जैसे अपने मन की मति के पीछे चलने वालों की यही दशा होती है क्योंकि मन की मति तो शराबी हाथी के समान कही गई है। गुरु-वाक है : *"मन की मति मतागलु मता ॥"* और जो हमारे तन के रोग हैं वे भी इसी का प्रतिफल हैं कि हमने अपने मालिक/प्रभु को भुला दिया है। आओ याद करें गुरबाणी का यह पद :

खसमु विसारि कीए रस भोग ॥
तां तनि उठि खलोए रोग ॥ (पन्ना १२५६)

और यह सुख-दुख भी उसी प्रभु की रजा के अंतर्गत ही हैं :

दुखु सुखु भाणै तिसै रजाइ ॥ (पन्ना २२३)

आओ! अभी बंद करें यह दूसरों पर दोषारोपण करना। साफ हृदय से स्वीकारें कि हमीं हैं इसके दोषी :

ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करंमा आपणिआ ॥
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना ॥ (पन्ना ४३३)

आओ! अब तो वस्तु-स्थिति समझने का सच्चे मन से प्रयास करें। जब जागे तभी सवेरा। अपने मूल की ओर अपने वजूद को सार्थक कीजिए। अंततः उस 'निरभउ' की शरण में जाने से भयमुक्त हुआ जा सकता है।

बीसवीं सदी के प्रसिद्ध चिंतक और मनोवैज्ञानी जे. कृष्णमूर्ति का कथन है कि 'ज्ञात के खो जाने का भय ही मृत्यु का भय है और अज्ञात में प्रवेश से ही मृत्यु के भय से मुक्त हुआ जा सकता है।' परन्तु यदि ईश्वर की कृपा/बख्शिश से उसके हुक्म की सूझ प्राप्त हो जाती है तो यह सहज ही समझ में आ जाता है कि संसार में जो कुछ भी विचर रहा है वह सब उस प्रभु के 'हुक्म' के अंतर्गत है, उसके 'हुक्म' से बाहर कुछ नहीं है, यह जन्म/मरण

उसके 'हुक्म' के अनुसार ही है :

जंमणु मरणा हुकमु है भाणै आवै जाइ ॥

(पन्ना ४७२)

हां, जन्म-मरण के बारे में गुरमति का यही सारभूत ज्ञान है।

उसके और हमारे बीच जो कूड़ (झूठ) की दीवार है वह तभी टूट सकती है जब हम उसके 'हुक्म' को समझ कर उसकी रजा में चलेंगे। उस सत्य-स्वरूप, कालातीत सत्य की अनुकंपा पाने के लिए अपने अंतर के अहम को त्याग कर, सत्य के अनुसारी होकर, निस्वार्थ सेवा और उसके सिमरन द्वारा पूर्ण समर्पित होना होगा, तभी उसकी कृपा के पात्र बन सकेंगे, वरना मृत्यु के भय से मुक्त होना असंभव है। और यदि अभी भी मन की मति के पीछे चलते रहे तो दुख ही हमारी पहचान बन कर रह जाएंगे। गुरबाणी में मनमुख अर्थात् मन की मति के पीछे चलने वालों की दशा एवं दिशा का इस प्रकार वर्णन किया है :

मनमुखु दुख का खेतु है दुखु बीजे दुखु खाइ ॥
दुख विचि जंमै दुखि मरै हउमै करत विहाइ ॥
आवणु जाणु न सुझई अंधा अंधु कमाइ ॥
जो देवै तिसै न जाणई दिते कउ लपटाइ ॥

(पन्ना ९४७)

जानते/बूझते हुए भी कुंचर की तरह धूल उड़ाने में मस्त हैं तो फिर हाथ में दीपक लेकर कुएं में गिरने के समान है। भक्त कबीर जी के पावन वचन क्या मात्र पढ़ने के लिए ही हैं?

कबीर मनु जानै सभ बात जानत ही अउगनु करै ॥
काहे की कुसलात हाथि दीपु कूए परै ॥

(पन्ना १३७६)

परन्तु सत्य यही है कि हमने जीवन-भर कलछुल का ही धर्म निभाया है और *"हरि हरि नित करहि रसना कहिआ कछू न जाणी ॥"* के वास्तविक प्रेम-रस से वंचित ही रहे हैं।

अंततः यही कहना बनता है कि सृजनहार की शरण में जाए बिना, मृत्यु के रूबरू अर्थात् मृत्यु से निर्भयतापूर्वक आंखें मिला पाना असंभव है। जिसने जीवन सहज रूप से जिया है वही मृत्यु का स्वागत कर सकने में समर्थ होगा, क्योंकि ऐसे सत्य-कर्मी की दृष्टि में मृत्यु, जीवन का अभिन्न अंग होती है।

यह सब 'मैं' और 'तूं' का खेल है और निपटारा *"हउमै जाई ता कंत समाई ॥"* ही है।

और जब 'मैं', 'तूं' का रूप हो गया तो फिर कैसा भय, किससे भय? जब बूंद सागर में मिल गई तो सुरखरू हो गई। यही तो है मनुष्य के जीवन का परम लक्ष्य।

हाय! कितनी सुखद अनुभूति है और उपाय भी कितना सरल, परन्तु यथार्थ में अति कठिन।

मनुष्य सदैव ही अंतर-यात्रा से बिदकता आया है। जहां वह चन्द्र गृह के रहस्य जानने के पश्चात मंगल गृह को गुदगुदाने लगा है, वहां उसका अपना मन उसके लिए पहेली बना हुआ है।

वृद्ध-जनों की वास्तविक स्थिति यह है कि इतनी ठोकरें खाने के बाद भी हम जीवन के अंतिम सत्य के रूबरू होने को तत्पर नहीं।

यदि हम यथाशक्ति दूसरों का दुख बांटने का प्रयास करें तो हमारे वर्तमान मानसिक दुख अवश्य ही कम हो सकते हैं। ऐसे में देह-रूपी चर्खा सार्थक हो जाए।

कहते हैं, वृद्ध अवस्था में भूलने की बीमारी हो जाती है परन्तु वे तत्कालित बातें होती हैं जो स्मृति से फिसल-फिसल जाती हैं। अपने वजूद का अपनी ही परछाई में गुम होते जाना अर्थात् पूर्ण-पटाक्षेप को भुला पाना संभव ही नहीं। आए दिन कोई न कोई संगी-साथी

साथ छोड़ रहा है और यह दुनिया, जो प्राय: आपकी बढ़ती आयु के प्रति अपने सरलोचित प्रश्नों द्वारा अपनी विस्मयता प्रकट करती रहती है कि आपकी आयु कितनी होगी? कि आप तो इस आयु में भी इतने गतिशील हैं, परन्तु हम इस आयु तक पहुंचेंगे भी या नहीं आदि जैसे संवाद कैसा असर छोड़ते होंगे, मुक्त-भोगी ही कह सकते हैं।

न तो यह विषय नया है और न ही बातें। काल का प्रवाह युगों से प्रवाहमान है। हर युग के चिंतकों ने इस . . . सत्य को भिन्न-भिन्न रूपों में समाज के समक्ष उभारा है।

डेल कार्नेगी ने एक बार अपना भाषण इन शब्दों से आरंभ किया था, "यह सब कुछ पहले भी कहा जा चुका है, परन्तु किसी ने 'सुना' नहीं, इसलिए दोबारा कहना चाहिए।" अर्थात् बार-बार दोहराया जाएगा।

यहां एक बात कहने को मन कर आया है कि उपरोक्त सत्य की व्याख्या अधिकतर मेरे जैसे आध्यात्मिक कमाई से कोरे चुंच-ज्ञानियों द्वारा की जाती है जिनके द्वारा व्यक्त सत्य मात्र दूसरों के लिए ही होता है, उनके अपने लिए नहीं, तभी तो यह अपना प्रभाव छोड़ने में असमर्थ सिद्ध होता है। स्वयं बुझे हुए दीपक दूसरों को कैसे प्रज्वलित कर पाएंगे?

इसीलिए मेरे जैसे ज्ञान बघारने वाले अंदर से मृत्यु के भय से त्रस्त, पीले पड़ते पत्तों की भांति खड़खड़ाते रहते हैं, क्योंकि पूर्ण आत्मसमर्पण अथवा अक्षरी ज्ञान को आत्मसात करने के लिए जिस आस्था, सरलता, निष्कपटता और सेवा-भावी हृदय की आवश्यकता होती है वे कहां से लाएंगे? मात्र बखशिंद पिता/परमात्मा ही कृपा करे तो *"नानक अवरु न सुझई हरि बिनु बखसणहारु ॥"*

. . . . श्री गुरु अमरदास जी का संदेश

(पृष्ठ २२ का शेष)

आनन्दित वृद्धावस्था के लिए उसे घर में रहकर ही नाम-सिमरन का संदेश देते हैं।

श्री गुरु अमरदास जी ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है कि चाहे यह शरीर वृद्ध हो जाए पर जिन पर गुरु की कृपा है, जिन्हें अंत:ज्ञान मिल चुका है वे कभी भी वृद्ध नहीं होते, वे तो सदैव दिव्य आनंद में मस्त रहते हैं। उनका जन्म सार्थक हो जाता है। वे उस अवस्था में सम-सुख-दुख-धीर हो जाते हैं, जैसे कि इन पंक्तियों से स्पष्ट है :

गुरमुखि बुढे कदे नाही जिन्हा अंतरि सुरति गिआनु ॥
सदा सदा हरि गुण रवहि अंतरि सहज धिआनु ॥
ओइ सदा अनंदि बिबेक रहहि दुखि सुखि एक समानि ॥
तिना नदरी इको आइआ सभु आतम रामु पछानु ॥ *(पन्ना १४१८)*

गुरु जी के कथनानुसार जब वृद्धावस्था में मानव इस सहज ज्ञान को प्राप्त कर लेगा तो वृद्ध समाज में नहीं उपेक्षित होंगे और गुरु जी की शिक्षा का अनुपालन करें तो आज आधुनिकतावाद की इस दौड़ में किसी समाज को अलग वृद्धाश्रमों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, क्योंकि उन वृद्धों से ज्ञान प्राप्त करके ही हमारे युवक-युवतियां अपना लक्ष्य पा सकेंगे। श्री गुरु अमरदास जी का यह फरमान भी हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए :

गिआन विहूणी पिर मुतीआ पिरमु न पाइआ जाइ ॥
अगिआन मती अंधेरु है बिनु पिर देखे भुख न जाइ ॥ *(पन्ना ३८)*



बुढ़ापा : जीवन का अंतिम पड़ाव और पूर्व जीवन के अच्छे-बुरे के अध्ययन का समय

*-जनाब हुसन-उल-चराग**

बुढ़ापे ने दस्तक दे दी है। इच्छा है मगर अब शक्ति साथ नहीं देती कि लालसाओं, उम्मीदों और इच्छाओं से भरे समंद्र को पी सकूं। मुझे कोई बाहर की ताकत पस्त नहीं कर रही मगर तकाजा-ए-उम्र की वजह मेरे जिस्म की शक्तियां क्षीण कर रही है। मैं असमर्थ हो अपने जीवन का दूसरे जीव-जंतुओं के साथ तुलनात्मक विश्लेषण करने लगता हूं। जोश-ए-जवानी में जिनकी मैं हंसी उड़ाता था, परवाह न करता था, आज मैं उनके बारे में कितना चिंतित और गंभीर हो सोचने लगा हूं!

हर जीव की उम्र है और प्रत्येक निरजीव की मुनियाद। जीव मुख्यत: दो प्रकार के हैं--जीव-जंतु तथा वनस्पतियां। जीव का जन्म होना और वनस्पतियों के बीज का अंकुरित होना जीवन का आरंभ है और फिर ये जीवन फलने-फूलने लगता है। वनस्पतियां, वातावरण (जल-वायु) और जीव-जन्तु अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार जीवन में आगे बढ़ते हैं, मगर इन सबके उल्ट मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसकी बुद्धि विकसित हो चुकी है और अपनी विवेकी बुद्धि के आधार पर वह तरह-तरह के वातावरण, भांति-भांति के भोजन और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में जीवित रह कर विकास कर सकता है। वनस्पतियों को अंकुरित होने के पश्चात भूमि और जलवायु की आवश्यकता होती है और पशु-पक्षियों को कुछ रोज के लिये ही अपनी मां का दूध पीना होता है। पक्षी भी कुछ दिनों में ही उड़ने लगते हैं और तब तक कुछ दिनों के लिये वे मां पर अश्रित रहते हैं। मगर आदमी कुछ दिन-महीनों के लिये नहीं बल्कि कई सालों तक अपने मां-बाप, परिवार, समाज और अध्यापकों पर निर्भर रहता है। एक से दो साल तक वह दूध पीता है, दो से पांच साल तक चलना, बोलना और भाषा सीखता है, फिर वह पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षा हासिल करता है और जीवन-व्यवसाय के योग्य बनता है। मगर शादी-ब्याह के कारोबार में जमने के लिए वह फिर भी अपने मां-बाप पर ही आश्रित होता है। हमारे भारतीय समाज में मां-बाप अपने बच्चों को उनके जीवन में उन्हें स्थापित करना अपना दायित्व मानते हैं। इस तरह बचपन, पढ़ाई, शादी व कारोबार में स्थापित होने तक ही सीमित नहीं है, शादी के पश्चात उनकी औलाद का समय पर होना या न होना या लड़कियों का ही जन्म लेना, बहू-बेटे के दोनों परिवारों की गंभीर सोच का कारण बने रहते हैं। अमीर हो या गरीब, हर मां-बाप के लिये चिंता का विषय बना रहता है। चिंता का बोझ दूसरों को दिखाई नहीं देता, जो असहनीय है। चिन्ता चिता के समान है। चिन्ता की चिता में हम बाहरी

**१४-सी, रेस कोर्स रोड, श्री अमृतसर। मोः ९८१५१-८८८१०*

ईंधन से नहीं अपने भीतर के ईंधन से स्वयं जल रहे होते हैं। जो विवेक आपको जीवन में नये-नये विचार, उपचार व विधियां बता कर जीवन के शिखर पर पहुंचाता है वही विवेक अब आपकी चिंताओं का आपको कोई समाधान प्रदान करने में सफल नहीं होता। प्रश्न यह है कि ये चिंताएं आईं कैसे और कहां से? हां, अगर आप लौट कर देख सकते हैं तो आप पायेंगे कि इन चिंताओं का एक-एक तार हमने समाज में अपनी आन बनाये रखने के लिये खुद बुना होता है। रीति-रिवाज, रिश्तेदारी, धार्मिक कर्मकांड हमारी इन चिंताओं और उलझनों का कारण होते हैं।

हम पांच साल की आयु तक चलने और दौड़ने लगते हैं, मगर हम जब पच्चीस साल के भी हो चुके होते हैं तो सड़कों पर दौड़ना तो हमें आ चुका होता है मगर जीवन-संघर्ष के पथ पर हमें रेंगना तक नहीं आता। आज मेरा बेटा पच्चीस साल का होकर भी मुझ पर आश्रित है, कल को मेरे बेटे का बेटा पच्चीस साल का होकर भी उस पर आश्रित होगा। हमारे समाज में इस उम्र तक भी उन्हें थक चुके मां-बाप की सलाह की नहीं बल्कि सहायता की जरूरत पड़ रही होती है। संसार के कुछ जीव-जंतुओं में केवल आदमी का ही इतना लंबा 'बचपन' है और हमारे समाज में हमारे २५-३० साल के नवयुवक अपना खर्च अपने वयोवृद्ध मां-बाप से ले रहे होते हैं। हमारे यहां जन्म, पढ़ाई या ब्याह-शादी के खर्च ही नहीं सताते बल्कि मृत्यु और उसके लिये निभाए जाने वाले लेन-देन के रीति-रिवाज तथा कर्मकांड भी बहुत भारी पड़ने लगे हैं। मृत्यु कई साल पहले हो चुकी है मगर दान-पुन्य, श्राद्ध आदि आदमी को खाये चले जा रहे हैं। हां, अपने पूर्वजों का सम्मान और उन्हें याद करना उत्तम है मगर फजूल के उपायों और रिवाजों को निभाने से हमारे अपने धर्म व सामाजिक कार-विहार के प्रति हमारी आस्था कमजोर पड़ती है और विश्वास टूटता है। यह एक मुख्य कारण है कि हमें एक राष्ट्र बनने में दिक्कत पेश आ रही है। भीतर ही भीतर हम खुद की सामाजिक बुराइओं के कारण जल रहे हैं, मगर हम में साहस नहीं कि हम मिल कर उन्हें तोड़ दें। यह सब सामाजिक बंधन, पारिवारिक बोझ, मानसिक-पीड़ा बन हमारे शरीर में रोग पैदा कर रहे हैं, जिससे निजी जीवन भ्रष्ट, परिवार असंतुष्ट समाज अस्थिर हो रहा है। मनुष्य परेशानी व चिन्ता की चिता में जा बैठा है, फिर ऊपर से खुले बाजार में अनियंत्रित हुई बढ़ती कीमतें और बेकाबू होती तेज-रफ्तारी को जमाने ने आदमी के लिये न हल होने वाले तनाव पैदा कर दिये हैं और वह मानसिक रोगी होता जा रहा है।

विषय है "बुढ़ापा जीवन का अंतिम पड़ाव और पूर्व जीवन के अच्छे-बुरे के अध्ययन का समय"। यह अत्यंत सुंदर और विचारणीय विषय है। जन्म से बुढ़ापे तक फैले जीवन के छिजरे पर अगर हम नज़र डालें तो हमें मिलेगा कि हर आदमी को बुढ़ापे में आकर अपने पूर्व जीवन का अध्ययन करने का मौका ही नहीं मिलता। वह तो गाड़ी के बैल की तरह अपने बोझ, परिवार के फर्ज और समाज के बंधनों के बीच पिस्ते-पिस्ते अपने दुखों, अन्याय व चिंताओं को साथ लिये बिना कर्ज लौटाए अंत को प्राप्त हो रहा है। हां, जिस खुशनसीब को अपने जीये जीवन का अध्ययन करने, उसे जांचने-परखने और उसकी

विवेचना करने का माकूल वातावरण तथा समय मिले तो ऐसे जीवन-अध्ययन से समाज को लाभ प्राप्त हो सकता है, बेशर्ते अध्ययन विवेचना से भरपूर, निष्पक्ष व मार्गदर्शक हो, जिससे उसके अपने परिवार, बिरादरी व समाज में तबदीली आ सके। यह अध्ययन एक प्रकार की स्वयंजीवनी के समान है। आम तौर पर आदमी अपनी की गई गलती को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं होता। जो चाहें आप सफाई पेश करें, पाठक व समाज उसे मंजूर नहीं करता। गलती को स्वीकार करने से इंसान की शख्सियत और अधिक उभरती है। सच्चे और खरे इंसान को याद ही नहीं कि उसको उदाहरण के तौर पर पेश किया जाता है।

भारतीय सभ्यता में मानव-जीवन को भले ही चार अवस्थाओं में बांटा गया है मगर ये अवस्थाएं केवल हमारे ग्रंथों तक ही सीमित हैं। यथार्थ जीवन तो इनसे कोसों दूर है। आधुनिक जीवन धर्म-शास्त्री से दूर जा चुका है मगर धर्म के नाम पर कर्म-कांडों ने मनुष्य को पूर्णत: घेर लिया है। एक अच्छे खुशहाल और लम्बे जीवन के लिये चार उपलब्धियों का होना अवश्यक है--(१) अच्छी सेहत (२) गुजारे के लिये धन का होना (३) आपके जीवन-साथी का सही स्वभाव और एक-दूसरे को समझना (४) स्वयं में अंतरध्यान होने की शक्ति और अपने आप का विवेचन करने की हिम्मत। हम इन चार गुणों के होने से अच्छा व साधारण खुशहाल जीवन जी सकते हैं। सिवाए (२) के शेष तीनों अवस्थाएं हम स्वयं अपने में मुफ्त पैदा कर सकते हैं।

अब हम यह भी सोचें और देखें कि बुढ़ापा कहते किसे हैं और यह शुरू कब होता है? कुछ देशों में ५८-६०-६२-६५ साल की आयु में जब कोई सेवामुक्त हो जाता है या जिस आयु पर हम सामाजिक सुरक्षा के लाभ पाने के योग्य हो जाएं या जब हमारी कार्य-क्षमता कम पड़ जाती है या हमारे बाल सफेद हो जाते हैं या गिरने लगते हैं और झुर्रियां पड़ने लग जाती हैं, हमें सुनना और दिखना कम हो जाए, सोचने की क्षमता और याद-शक्ति कमजोर हो जाए, हड्डियां पतली और नरम पड़ जाएं, उसे बुढ़ापा कहते हैं। हर आदमी का बुढ़ापा किसी निश्चित तिथि से आरंभ नहीं होता। यह आपकी सेहत-संभाल पर निर्भर करता है। आयु क्षय रोग जैसी है जो यौवन के पश्चात हमारे जिस्मो-जिहन को धीरे-धीरे खाने लगती है, जिससे शक्ति हीन, शरीर-कम्पन, सहारे की जरूरत, नाड़ी-नसों का शिथिल पड़ना आरंभ हो जाता है और आदमी को सामने अंत दिखाई देने लगता है। बुढ़ापे के इस आसार को विज्ञान इस तरह बयान करता है--बुजुर्ग अवस्था जिसे **Germtology** कहते हैं, इस अवस्था की सामाजिक, मानसिक तथा जीव (प्राणी) विज्ञान से सम्बंधित है और बुढ़ापा शारीरिक विज्ञान की वह प्रक्रिया है जिसके कारण शरीर, कोशिकायें, हड्डियां, दिमाग, नसें व शरीर को चलाने वाले अंग क्षीण होने लगते हैं और अंत को पहुंचते हैं। यह वह समय आ जाता है जब आदमी ने अपने पूर्व जीवन में जो भला-बुरा किया होता है, उसके सामने आने लगता है। जोश-ए-जवानी अंधी होती है और बुढ़ापे का अंतिम समय बुराई के लिये पश्चाताप और प्रार्थना में लगता है और की गई अच्छाई की कहानियां बुजुर्ग सुनाने लगते हैं। बेहतर हो

(शेष पृष्ठ ७८ पर)

वृद्धावस्था की मानसिक उलझनें और उनका समाधान

*-डॉ अमृत कौर**

आधुनिक युग में बुढ़ापा एक अभिशाप बनता जा रहा है। माता-पिता को रब्ब मानने वाले भारत देश में आज बुजुर्ग दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं, बच्चों की अवेहलना झेल रहे हैं, अपने आप को अवांछित और बोझ महसूस कर रहे हैं। झुर्रियों के साथ उनके चेहरे पर अंकित दर्द की रेखाएं उनके मन की व्यथा की कहानी कहती हैं। जिस पौधे को वे प्यार से सीचते, पालते, पढ़ाते-लिखाते हैं, जिनके लिए सम्पूर्ण जीवन दांव पर लगा देते हैं, वृद्धावस्था में जब वह पौधा वृक्ष बन जाता है तो उसकी छाया के नीचे बैठने का, विश्राम करने का अधिकार उनसे छिनता जा रहा है। हमारे सामाजिक मूल्य बदल रहे हैं। पश्चिम के अंधानुकरण ने हमारी आधुनिक पीढ़ी को उच्चश्रृंखल और गैरजिम्मेदार बना दिया है। आधुनिक युवती स्वतंत्रतापूर्वक स्वच्छंद जीवन व्यतीत करने में विश्वास रखती है, अत: पति के बूढ़े मां-बाप की उपस्थिति उसे सहन नहीं होती। अधिकांश बार बेटा चाह कर भी अपने वृद्ध माता-पिता के लिए कुछ नहीं कर पाता और यदि पत्नी के विपरीत जाकर कुछ करता है तो उसकी अपनी गृहस्थी में कलह का संचार हो जाता है।

हमारे आस-पास समाज में वृद्ध-जनों की अवहेलना के अनेकों उदाहरण बिखरे पड़े हैं। मेरी एक सखी है। उसकी भाभी ने उसकी रुग्ण, असहाय विधवा मां की देखभाल से इंकार कर दिया। वह उसे अपने घर ले लाई। बेटी के घर हमारे देश में कोई भी मां मरना नहीं चाहती। मां की देखभाल तो सुचारू रूप से हो गई पर उसे अपने पति के हाथों प्रताड़ित होना पड़ा। आज वह स्वयं भी सेवानिवृत्ति के बाद पति के देहांत होने पर भी अकेली रह रही है क्योंकि उसकी बहू ने उसे अपने पास रखने से इंकार कर दिया है। अनेक बीमारियों को झेलते हुए एकांकी जीवन-यापन करना अपने आप में एक सजा है, मानसिक संताप है जो अनेक व्याधियों को जन्म देता है और जब एक साथी का देहांत हो जाता है तो दूसरे की अकेली जिंदगी अजीब बन कर रह जाती है।

हमारे पड़ोस में एक विधुर बुजुर्ग रहते थे। शूगर की तकलीफ थी, पर मीठा खूब खाते थे। मना करने पर उनका उत्तर था मुझे जीने की और इच्छा नहीं हैं। हम तो भुई भार है। बेटे-बहू को घर बनवा के दिया, बच्चों के लालन-पालन में सहायता की, पर किसी के पास समय नहीं था कि उनका हाल-चाल पूछते। इस अवहेलना की अकेली जिंदगी के मानसिक संताप ने जल्दी ही उन्हें मृत्यु के कगार पर धकेल दिया।

हमारे घर के पास ही एक बुजुर्ग स्त्री एक कनाल (पंजाब में एकड़ का आठवां भाग) की कोठी में अकेली रहती थी। पति-पुत्र सभी उच्चाधिकारी थे। पति के निधन के बाद उन्हें अकेला जीवन जीने के लिए मजबूर होना

**१५४, ट्रिब्यून कालोनी, बलटाना, जीरकपुर-१४०६०३*

पड़ा। उसी शहर में उच्चाधिकारी बेटा कभी-कभी उनका पता कर जाता। नौकरानी का परिवार उनकी देखभाल करता। अपनों के होते हुए भी कोई अपना नहीं था। फलस्वरूप वह बोलने और चलने-फिरने की शक्ति खोकर चारपाई के साथ लग कर रह गई।

हमारी एक करीबी रिश्तेदार है। ८० साल की आयु है। विधवा है। तीन-तीन जवान बेटों के होते हुए भी रोटी का सुख किसी से नहीं। बड़ा घर बिकवा कर अपने हिस्से ले लिए। अब छोटे-से घर में रह कर बुढ़ापा पेंशन और सीमित जमापूंजी से गुजारा कर रही है।

ऐसे अनेकों उदाहरण हमारे समाज में बिखरे पड़े हैं। यही कारण है कि अब भारत में भी पश्चिम की तरह बुढ़ापा घर और वृद्ध आश्रम बनते जा रहे हैं। यह नहीं है कि सभी बच्चे ऐसा करते हैं। अनेकों नौकरी करती महिलाओं का यह कथन है कि उनके बुजुर्ग सास-ससुर के कारण उनकी घर-गृहस्थी सुचारू रूप से चल रही है परन्तु कई बार ऐसा भी होता है कि मतलब निकल जाने पर बच्चे मुंह फेर लेते हैं। अब ऐसी परिस्थितियों में वृद्धावस्था में मानसिक उलझनों का होना स्वाभाविक है। 'बच्चा बूढ़ा एक बराबर'। बच्चों की तरह बूढ़ों को भी प्यार-दुलार की आवश्यकता होती है। उनके खाने-पीने का ध्यान रखना पड़ता है। बीमारी की अवस्था में उचित उपचार की आवश्यकता होती है और जब यह सब नहीं मिलता, मिलता है तिरस्कार और अवेहलना तो मानसिक और भावनात्मक रूप से कुंठित हो चारपाई से लग जाते हैं। चारपाई पर पड़े व्यक्ति का जीवन कितना दुखमय हो जाता है इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

आज का युग प्लानिंग का युग है। हर क्षेत्र में प्लानिंग की आवश्यकता है। अत: समझदार व्यक्ति अपने बुढ़ापे के जीवन की उचित समय पर तैयारी कर लेते हैं। मैंने सेवा-मुक्ति से दो वर्ष पूर्व यूनीवर्सिटी के माध्यम से प्रमुख 'यू. जी. सी. खोज प्रोजेक्ट' के लिए अर्जी भिजवा दी। इधर रिटायरमेंट हुई और उधर खोज प्रोजेक्ट मिल गया। एक के बाद दूसरा मिला। जिंदगी के सात वर्ष क्रियात्मक-रचनात्मक कार्य में व्यतीत हुए। मानसिक संतोष मिला, आर्थिक सहायता मिली और व्यस्त रहने के कारण एकांकीपन का अहसास भी नहीं हुआ। पुस्तकें छपती रहीं, लेख प्रकाशित होते रहे। अत: बुढ़ापे की मानसिक उलझनों से बचने के लिए क्रियात्मक, रचनात्मक, कलात्मक कार्यों में व्यस्त रहना आवश्यक है।

हमारे एक सम्माननीय प्रोफेसर हैं। माने हुए लेखक हैं। कई अवार्ड जीत चुके हैं। चंडीगढ़ में एक कनाल की कोठी में रहते हैं। ९२ साल की आयु है। लेखन-कार्य के साथ बीमारों को दवा-बूटी देने का कार्य भी करते हैं। एक दिन मैं दोपहर के कोई दो बजे मिलने गई तो अपने क्लीनिक में बैठे, सूट-बूट पहने, टाई लगाए कार्य कर रहे थे। दो बेटे हैं। दोनों बाहर रहते हैं। घर के ऊपर का भाग किराए पर दिया हुआ है। किराए, लेखन-कार्य और दवा-बूटी की आमदन से गुजर-बसर करते हैं। बच्चों पर निर्भर नहीं हैं। नौकरानी और उसका परिवार जो उनके घर रहता है, उनकी देखभाल करता और खाना बनाता है और ऐसे देखभाल करते हैं जैसे अपने बच्चे हों।

हमारे एक बूढ़े विधुर गाईड थे। उनका कहना था कि एकांकीपन और उचित प्यार-सत्कार का न मिलना बुढ़ापे की प्रमुख व्याधियां

हैं। काम में व्यस्त रहना किसी भी आयु में जीवन की खुशी के लिए जरूरी है। जब हम क्रियात्मक, रचनात्मक जीवन जीते हैं, दूसरों के काम आते हैं तो प्रेम और सत्कार स्वयं मिल जाता है। हमारे बड़े-बड़े राजनीतिक अधिकतर बूढ़े होते हैं। हमारे प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंघ ८० वर्ष के करीब परिपक्व आयु में भी सम्पूर्ण संसार में सम्मानीय स्थान रखते हैं। डॉ अब्दुल कलाम, लता मंगेशकर तथा अन्य भी ऐसे बुजुर्गों का कोई अंत नहीं। ये ऐसे बुजुर्ग हैं जो समाज का मार्गदर्शन कर अथवा किसी न किसी रूप में समाज के विकास में सहायक होकर सम्मानीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जब बूढ़े व्यक्ति सृजनात्मक-क्रियात्मक कार्यों में संलग्न रहते हैं तो बुढ़ापे में पैदा होने वाली हीनता की भावना, असहाय होने की भावना स्वयंमेव लुप्त हो जाती है। आप कहेंगे सभी तो साहित्यकार-कलाकार-लेखक नहीं बन सकते। *"करन वालिआं खातिर ने जीवन विच कम बहुतेरे।"*

हमारे कालिज के प्रधान हैं। मुश्किल से मैट्रिक पास होंगे। परन्तु कॉलिज के प्रधान होने के साथ एक स्कूल भी चला रहे हैं, समाज-सेवा का कार्य भी करते हैं और समय मिलने पर अपनी दुकान का काम भी देखते हैं। ८८ वर्ष की आयु है। चुस्त-दुरुस्त हैं। अपनी सेहत का ध्यान रखते हैं। विधुर हैं, परन्तु बेटे-बहुएं सभी सम्मान करते हैं। बुजुर्ग अपने पोते-पोतियों को होमवर्क करवा सकते हैं, बाजार का काम कर सकते हैं, बच्चों के लालन-पालन में सहायता कर सकते हैं।

दादी-नानी की कहानियां तो मन पर स्थाई प्रभाव डालती हैं। औरतें तो कभी रिटायर ही नहीं होतीं। समझदार 'सास' अपनी बहू की 'मां' बन उसकी घर के कार्यों में सहायता और मार्गदर्शन कर सकती है। "सम्मान करो सम्मान लो" यह मन्त्र काफी हद तक दोनों पीढ़ियों के अन्तराल को कम कर सकता है।

जैसे पहले कहा जा चुका है कि आज का युग प्लानिंग का युग है। जहां हम बच्चों को पढ़ाते-लिखाते हैं, शादी-विवाह करते हैं वहां अपने बुढ़ापे के लिए भी उचित आर्थिक व्यवस्था करनी जरूरी है ताकि जीवन की सान्ध्य वेला में हमें रोटी के मुहताज न होना पड़े। आर्थिक सुरक्षा अत्यन्त आवश्यक है। पैसा होगा तो खान-पान जरूरी है। बीमार पड़ने पर दवाई जरूरी है। बुढ़ापे की मानसिक उलझनों से बचने के लिए आर्थिक रूप से आत्म-निर्भरता अत्यन्त आवश्यक है। अपनी सेहत का ध्यान रखना जरूरी है ताकि किसी का मुहताज न होना पड़े।

बूढ़े व्यक्ति का समाज से, अपने रिश्तेदारों से जुड़ा रहना जरूरी है ताकि अकेलापन उन पर बोझ न बने। मेरे एक भाई और भाभी हैं। बूढे हैं। दोनों अकेले रहते हैं। सुबह-शाम गुरुद्वारा साहिब जाते हैं। गुरुद्वारा साहिब के मैंबर्ज़ हैं। गुरुद्वारा साहिब के संचालन में भाग लेते हैं। भाभी तो कीर्तन भी काफी अच्छा कर लेती हैं। उन पर श्री गुरु अमरदास जी, जो ८३ साल की आयु में भी समाज का मार्ग-निर्देशन करते रहे, की यहे पंक्तियां बाखूबी लागू होती हैं :

गुरमुखि बुढे कदे नाही जिन्हा अंतरि सुरति गिआनु ॥ *(पन्ना १४१८)*

बूढ़े व्यक्ति अपने ज्ञान और समय का सदुपयोग समाज-सेवा में भी कर सकते हैं। गरीब बच्चों को पढ़ाना, निम्न वर्ग के निर्माण

का कार्य करना, समाज-सेवी सोसायटियों का मैंबर बन सेवा के कार्यों के द्वारा सुख और शांति प्राप्त की जा सकती है। जीवन का आनंद जीवन के किसी भी स्तर पर उठाया जा सकता है। पश्चिम में बूढ़े व्यक्ति अच्छे-भले कपड़े पहने हुए पार्कों, बाजारों, नए स्थानों की सैर करते हुए आम मिल जाएंगे। अतः बुढ़ापे की जिंदगी का आनंद उठाने के लिए अपनी जिंदगी में ताजगी का संचार करना होगा, आशावादी दृष्टिकोण अपनाना होगा, मुस्कराना सीखना होगा, बच्चों के साथ खिलखिला कर हंसना होगा। प्रकृति की ओट में घूमने निकल जाइए, मैं दावे से कहती हूं कि आपका आधा तनाव दूर हो जाएगा।

सुखी संतुष्ट जीवन-यापन करने के लिए बूढ़ों को भी अपना दृष्टिकोण बदलना होगा। *"तू भी बदल फलक कि जमाना बदल गया।"* पीढ़ियों के अन्तराल को भरने के लिए एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझना होगा। कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में अनुचित हस्तक्षेप नहीं चाहता। आधुनिक बच्चे अपनी इच्छानुसार जीवन-यापन करना चाहते हैं। अपने बुजुर्ग बहिनों-भाइयों के लिए मेरा सनम्र सुझाव है कि बुजुर्ग भी उनके दृष्टिकोण को समझें और मस्त रहें। जैसे बच्चे करते हैं करने दें, जैसे जीते हैं जीने दें। अत्यंत आवश्यकता महसूस होने पर उनको अच्छा मार्ग अवश्य दिखाओ परंतु उनके जीवन में अनुचित टांग न अडाएं। बिना मांगे तो सलाह भी नहीं देनी चाहिएं। सत्कार पाने के लिए सत्कार देना जरूरी है। बच्चे बड़े हो जाते हैं पर मां-बाप बड़े होने पर भी उन्हें बच्चे समझकर व्यवहार करते हैं, उन्हें नियन्त्रण में रखना चाहते हैं। यहीं से मन-मुटाव शुरू हो जाता है। संस्कृत की एक उक्ति है--*"षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवत् आचारेत"* अर्थात् सोलह साल के पुत्र से मित्र की तरह व्यवहार करो। हमारे पिता जी हमें बहुत प्यार करते थे यहां तक कि सम्मान भी करते थे। ऐसा लगता था मानो हमारे लिए ही जी रहे हों। हम भी उनके लिए जान देने के लिए तैयार रहते थे। मेरी मां ने मेरे बच्चों के लालन-पालन में भरपूर सहयोग दिया जो भुलाए भी नहीं भूलता। यही बात मेरे बच्चों की है। मेरी बेटी और बेटा मुझे इतना प्यार करते हैं, इतना प्यार करते हैं कि उनका प्यार मेरी कीमती धरोहर है जो मुझे अकेला रहने पर भी अकेलेपन का अहसास नहीं होने देता।

बूढ़े व्यक्तियों के लिए यह एक सदैव काल के लिए काम आने वाला विचार-बिंदु है--"अपने अकेलेपन का आनंद उठाइए।" आजकल बच्चों का जीवन अत्यन्त व्यस्त है। उनके पास समय ही नहीं है कि बूढ़े मां-बाप के साथ बैठ कर बातें करें। बूढ़ों के पास समय बहुत होता है। अपने अकेलेपन का आनंद उठाना सीखिए। अकेलापन अनेक मानसिक उलझनों का जन्मदाता तो है परंतु यदि अकेलापन आत्म-चिंतन के रूप में अध्ययन और समाज-विश्लेषण में बदल जाए तो यह वरदान सिद्ध होता है। किसी सभा सोसायटी से जुड़े रहना, किसी क्रियात्यक कार्य में संलग्न रहना चाहिए, मंदिर-गुरुद्वारे जाना, प्रभु-सिमरन में कुछ समय व्यतीत करना, घर के कार्यों में व्यस्त रहना, मित्रों-रिश्तेदारों से मिलना-जुलना जरूरी है। निष्कर्षतः बदलती परिस्थितियों में बूढ़े व्यक्तियों को भी अपना दृष्टिकोण बदलना होगा तभी वे सुखमय जीवन व्यतीत कर पाएंगे।



बदलते मूल्यों एवं आधुनिकता में भारतीय बुजुर्गों की दीन-दशा

-डॉ. सुधा जितेन्द्र*

बड़े बुजुर्ग वट वृक्ष की तरह होते हैं जिनकी छत्र-छाया में हम जीवन का आनंद लेते हैं। ये वट वृक्ष रूपी बुजुर्ग दुख और कष्ट रूपी आंधी, तूफानों को अपने ऊपर झेलकर हमें हर आपदा से बचाने के लिए तत्पर रहते हैं। जन्म देने वाले माता-पिता ही वक्त के साथ अपना कर्त्तव्य निभाते-निभाते कब बुजुर्ग हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता। अनुभव के खजाने, ममता के पुंज, ये अभिभावक अपने बच्चों को जिंदगी की हर सुविधा, हर सुख प्रदान करने की होड़ में, उन्हें कुछ बनते हुए देखने की चाह में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने से भी नहीं चूकते। माता-पिता का अपनी संतान के प्रति यह स्नेह बिना शर्तों, नियमों और अपेक्षाओं से आजीवन बना रहा है। भारतीय संस्कृति में इसीलिए जिन तीन ऋणों का प्रावधान है उनमें मातृ एवं पितृ-ऋण के बाद गुरु-ऋण की चर्चा होती है। बच्चे की प्रथम पाठशाला माता-पिता ही तो होते हैं।

भारतीय नारी जो पहले ही अनेक फ्रंटों पर जूझ रही थी, पढ़-लिख कर किसी तरह इस योग्य हुई कि कमा कर परिवार की आर्थिक सहायता करे और उसने की भी। उसने भारतीय समाज की आर्थिक स्थिति में जमीन-आसमान का अंतर भी किया, परन्तु आज भी उसे घर के फ्रंट पर उसी तरह जूझना पड़ता है। पहले जो समय केवल घर और परिवार के लिए था अब उसमें से अधिकांश कामकाज पर लगने लगा और ऐसे घरों में अगर बुजुर्ग हैं तो दिन भर अकेले, दिशाहीन, कायाक्षीण। आज भारतीय समाज में अगर अकेलेपन का सबसे बड़ा शिकार हैं तो हमारे 'बुजुर्ग'। उम्र के इस पड़ाव में उनके शौक और मांगें उतनी नहीं होतीं। वे उस तिरस्कार और अवहेलना के पात्र नहीं होते जिसका शिकार उन्हें होना पड़ रहा है। ये वही मां-बाप हैं जिनकी कभी हमारी तरह दुनिया मुट्ठी में थी। आज हम अपने बच्चों पर सब कुर्बान और न्यौछावर कर रहे हैं और बड़े गर्व से कहते हैं--"इन्होंने कुछ बनना है"। कभी इन्होंने भी अपने बच्चों यानि हमारे लिए सोचा था? क्या हमारे बच्चे हमसे दो कदम आगे दायित्वों, क्रिया-कलापों की सीख भी माता-पिता के श्रीचरणों में, उनके अनुभव स्यूत निष्कर्षों से प्राप्त करते हैं। जीवन के कड़े संघर्षों से जूझ कर, अनुभवों का खजाना लिए हमारे माता-पिता बुजुर्ग अवस्था में पहुंचते हैं जहां उनकी शारीरिक क्षमता क्षीण होने लगती है। हमें उंगली पकड़कर चलना सिखाने वाले माता-पिता स्वयं हमारे परे निर्भर होने लगते हैं।

भारतीय संस्कृति के पहचान बिंदुओं में 'बड़ों का सम्मान' सर्वाधिक महत्त्व रखता है और भारतीय पारिवारिक प्रणाली में बड़े बुजुर्गों को मान-सम्मान देना नैतिक दायित्व

*रीडर, हिन्दी विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, श्री अमृतसर।

रहा है। वास्तव में भारतीय समाज संयुक्त परिवार का पक्षधर रहा है। संयुक्त परिवार में एक साथ तीन-चार पीढ़ियों का रहना जहां बच्चों और नवयुवकों, नवयुवतियों के प्रति संतुलित व्यवहार की सीख देता रहा वहीं बुजुर्गों के सम्मान के लिए भी सजग और सतर्क था। यह परम्परा उन भारतीय मूल्यों पर केन्द्रित थी जो त्याग, मर्यादा और संयम से ओत-प्रोत थी। निस्संदेह पिता अपने अधूरे कार्यों की पूर्ति के लिए स्वप्न अपने बच्चों में देखते और दादा-दादी के लिए तो मूल से भी ज्यादा ब्याज के रूप में पौत्र-पौत्रियां उनकी हंसती-खेलती बगिया को महकाने वाले फूल ही रहते। सुख-दुख में ऐसे संयुक्त परिवारों के दायित्व बंटे होते और घर के हर प्राणी की उचित देखभाल होती रहती। अपनत्व और अनुराग में डूबे भारतीय संयुक्त परिवार समाज को स्वस्थ दिशा प्रदान करते। यह जीवन कुछ आदर्शों-मूल्यों पर टिका होता था और उन मूल्यों का अनुपालन करके ही इसके सकारात्मक पहलू सामने आते थे।

इस पृष्ठभूमि में भारतीय साहित्य में भी समाज के इसी आइने को प्रस्तुत किया जाता रहा। इन्हीं आदर्शों एवं मूल्यों की प्रस्तुति कर साहित्य समाज के प्रति अपने दायित्व को संपूर्ण करता। स्वस्थ समाज की परिकल्पना तभी पल्लवित रहती जब समाज के सभी वर्ग अपने-अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए आगे बढ़ते। इस दृष्टि से गुरु साहिबान द्वारा रचित बाणी का भी केन्द्र-बिन्दु समाज और मनुष्य रहा है। अत: उन्होंने भी अपनी बाणी के माध्यम से 'मानव जीवन को उच्च बनाने के विचार' पर ही बल दिया है। जहां वे गुरु की महिमा का बखान करते हैं वहीं जीवात्मा को इसी संसार में रहते हुए सामाजिक दायित्वों, गृहस्थाश्रम का अनुपालन करते हुए ही परमात्मा-प्राप्ति पर बल देते हैं। प्रथम पातशाह श्री गुरु नानक देव जी तो इस संसार रूपी दलदल में मनुष्य को कमल की भांति रहने की प्रेरणा देते हैं। गुरु साहिबान की बाणी जहां दीनहीन के पक्ष में है, जुझारू होने का संदेश देने वाली है, वहीं यह पवित्र बाणी बाल्यावस्था, युवावस्था और बुजुर्ग अवस्था के कर्त्तव्यों से भी हमें सजग करवाती है। सर्वप्रथम तो उन्होंने मानव-जन्म में होना ही भाग्य की बात माना है :

माणस जनमु दुलंभु गुरमुखि पाइआ ॥

(पन्ना ७५१)

और स्वयं श्री गुरु नानक देव जी ने मानव जीवन की आयु को निम्नलिखित पड़ावों में बांटा है : गर्भावस्था, बाल्यावस्था, यौवनावस्था, वृद्धावस्था, अतिवृद्धावस्था और मरणावस्था। पहरे में वृद्धावस्था में मनुष्य की स्थिति का चित्र:

चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा बिरधि भइआ तनु खीणु ॥
अखी अंधु न दीसई वणजारिआ मित्रा कंनी सुणै न वैण ॥
अखी अंधु जीभ रसु नाही रहे पराकउ ताणा ॥

(पन्ना ७६)

इसी वृद्धावस्था की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति श्री गुरु नानक देव जी ने इस प्रकार भी की है:

तीजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा सरि हंस उलथड़े आइ ॥ *(पन्ना ७५)*

तन-मन से क्षीण बुजुर्ग अवस्था के रूप में दुर्लभ मानस जन्म ही भटकता है। श्री गुरु नानक देव जी मानते हैं कि मनुष्य रूपी

आत्मा में ही परमात्मा का निवास है और अगर परमात्मा, निराकार ब्रह्म इस संसार के कण-कण में विराजमान है तो फिर भटकती और तिरस्कृत बुजुर्ग अवस्था द्वारा हम ब्रह्म का ही तिरस्कार करते हैं। ब्रह्म का तिरस्कार कर भला जीव के लिए जीवन में क्या प्राप्य है? फिर भारतीय संस्कृति में गुरु-ऋण से पहले मातृ और पितृ-ऋण का भी संकल्प है। गुरु साहिब जी मानते हैं कि गुरु-रूपी पथ-प्रदर्शक के लिए अपना तन-मन तक भी बेच देना चाहिए।

तनु मनु गुर पहि वेचिआ मनु दीआ सिरु नालि ॥ (पन्ना २०)

उनके अनुसार गुरु की सेवा बडभागी (बड़े भाग्य वाला) को ही प्राप्त होती है। गुरु और परमात्मा में कोई अंतर नहीं, परमात्मा और आत्मा में अंतर नहीं:

आतम रामु रामु है आतम . . . ॥ (पन्ना १०३०)
आतम महि रामु राम महि आतमु . . . ॥
(पन्ना ११५३)

वास्तव में श्री गुरु नानक देव जी गुरु, आत्मा और परमात्मा के माध्यम से मनुष्य को जीवन जीने की कला ही सिखाना चाहते थे और इस प्रकार गुरु के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने में ही उन्होंने मानवता की सेवा, माता-पिता, वृद्ध-जनों की सेवा का विराट संदेश दिया।

इस पृष्ठभूमि में यदि आज के समाज में बुजुर्गों की स्थिति पर बात की जाए तो यही पंक्तियां सामने आती हैं :

हम कौन थे? क्या हो गए हैं? और क्या होंगे अभी?
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी।
-मैथिलीशरण गुप्त

भूमण्डलीकरण के आज के दौर में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से केवल 'अर्थ' ही केन्द्र में रह गया है। भौतिकवादी युग में हर रिश्ता, हर बात पैसों के साथ तौली जाती है। बाजारवाद, उपभोक्तावाद और मीडिया के बढ़ते चरण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उन्नति से हमारे परिवारों और समाज को परिचालित कर रहे हैं। 'आधुनिक' होने के नाम पर भारतीय समाज अपने जीवन-मूल्यों से बहुत दूर जा रहा है। वास्तव में भौतिकवादी दृष्टि से आज मनुष्य जितना सम्पन्न हुआ है, नैतिकता और मूल्यों की दृष्टि से उसका उतना ही पतन भी हो रहा है। भारतीय संस्कृति और समाज पोषक रहे हैं—आत्मसंयम, आत्ममर्यादा और आत्मत्याग के। लेकिन पिछले बीस बरसों में, क्योंकि 'ग्लोबलाइजेशन' के कारण पूरा विश्व एक विलेज बन गया है, पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के नाम पर, आजादी और मौज-मस्ती के नाम पर, प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से ऐसा जहर भारतीय समाज में भरा जा रहा है जिसने भारतीय जीवन-मूल्यों की धज्जियां उड़ा दी हैं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है, लेकिन स्वस्थ समाज वही है जो परम्परा सहित आधुनिकता में प्रवेश करता है। भारतीय समाज औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण अधिक पैसा कमाने की चाह में संयुक्त परिवारों से एकल परिवारों में बंटे, जहां पति-पत्नी और संभवत: किसी एक बच्चे की गुजांइश है, लेकिन जन्म देकर, पाल-पोस कर बड़ा करने वाले मां-बाप के लिए कोई 'स्पेस' नहीं। अधिक पैसा कमाने के लिए युवाओं में विदेश-गमन की चाह ने भी भारतीय बुजुर्गों को बेघर कर दिया है। विदेशी चकाचौंध में

और अपने करियर को चमकाने की मद में ऐसे भारतीय परिवारों में से प्रेम और अपनत्व की आत्मा मर चुकी है। पिछले बीस वर्षों में भारतीय समाज का परिदृश्य इतना बदल गया है कि बच्चों को मां-बाप के विचार, उनका अनुभव, उनकी सलाह सब थोथी लगनी शुरू हो गई है। टी. वी., कम्प्यूटर, वीकएंड मनोरंजन से परिवार के मुखिया लोग गायब हो रहे हैं। उनके पुराने विचार और पहरावा, उठना-बैठना और दुलार की बातें करना हमारे बच्चों को 'बेमतलब की टांग अड़ाना' लगता है, क्योंकि उनके सामने आदर्श है ऐसी विदेशी सभ्यता जहां केवल मौज है, केवल मस्ती है, कोई मूल्य नहीं, कोई सीमा नहीं। आज दादा-दादी की तो बात ही क्या है, बच्चे अपने माता-पिता को धड़ाक से कहते हैं, "आपको तो कुछ पता ही नहीं है, चुप रहिए!" आधुनिक और अत्याधुनिक घरों में विशेष मेहमान आने पर बुजुर्गों को ऐसे कमरे में डाल दिया जाता है जहां वे आसानी से नज़र न आ सकें?

इन सभी बातों की पृष्ठभूमि में कहीं-न-कहीं कामकाजी नारी की भूमिका ने भी प्रभाव डाला है। कमरतोड़ महंगाई हो चुकी है और दिखावे भी अपनी चर्म सीमा पर हैं। ऐसी स्थिति को बदलने के लिए हर संभव प्रयत्न करना होगा। बुजुर्गों को प्यार, सहानुभूति और सबसे अधिक हमारे 'थोड़े से टाइम' की जरूरत है। भारतवर्ष ऋषियों, मुनियों की भूमि है। यहां तो नदियों को भी माता की संज्ञा दी जाती है, पूजा की जाती है। हमारे यहां विदेशी तर्ज पर भारत को 'वृद्धाश्रमों' का घर मत बनाइए।

प्रश्न यह है कि अगर आज की भागदौड़ की जिन्दगी में किसी के पास अपने बुजुर्गों के लिए समय भी नहीं है, सरमाया भी नहीं है और कोई संभावना भी नहीं है तो वृद्धाश्रम में उनका कमरा बुक करवाने के साथ-साथ अपना कमरा भी बुक करवाना होगा, क्योंकि उनकी आंखों में भी हमारी तरह ही हसीन सपने थे। अगर व्यवहारिक बात की जाए तो जैसी स्थिति भारतीय समाज और परिवार की है आज आवश्यकता है भारतीय नौजवानों को जागरूक होने की। जिस दिन वे प्रण कर लेंगे कि उनके बुजुर्ग मां-बाप रुसवाई और अकेलेपन की जिन्दगी नहीं जियेंगे। जिस दिन वे बता देंगे कि परिवार के बुजुर्ग फालतू सामान नहीं हैं, उसी दिन सभी वृद्धाश्रम बंद हो जाएंगे।

समस्या बुजुर्गों की नहीं है, समस्या उस आधुनिकता की है जिसमें आज कोई अंकुश, कोई संयम, कोई रोकटोक नहीं रह गई। अत: सोचिए, आधुनिकता की आंधी में कहीं इतना न बह जाएं कि समाज में बुजुर्गों का आधार समाप्त करते-करते खुद ही समाप्त हो जाएं। काल-चक्र तो सब पर एक जैसा ही घूमता है और बुजुर्गों के प्रति सम्मान, आदर, नमन ही ईश्वर के प्रति सम्मान, आदर और नमन भी है, जैसे कि श्री गुरु नानक देव जी ने भी प्रतीकात्मक रूप में फरमाया है :

आतमा परातमा एको करै ॥ (पन्ना ६६१)

और जिस व्यक्ति को ऐसा आत्म-साक्षात्कार हो जाता है वह परमात्मा ही हो जाता है :

आतमु चीन्हि भए निरंकारी ॥ (पन्ना ४१५)

अत: अंतर्मन की आवाज़ सुनकर मनुष्य को आत्मा में ही परमात्मा को ढूंढना है और इसीलिए माता-पिता की सेवा परमात्मा की ही सेवा है।



तिरस्कृत दृष्टि का सामना करते बुजुर्ग

-डॉ. आशा अनेजा*

बुजुर्ग घर की शान हैं, मान हैं।
बुजुर्ग युवा वर्ग की ताकत हैं,
इनके मन में प्यार और दुआएं हैं,
बुजुर्ग तो भगवान के समान हैं।

न जाने कहां चले गये वे दिन जब लगभग सभी भारतीयों के मन में बुजुर्गों के प्रति ऐसी सम्मानीय भावना थी! बुजुर्गों का अनुभव, उनके द्वारा दी गयी प्रेरणा, उत्साह युवा वर्ग के लिए खास महत्व रखता था। घर-परिवार को चलाने में बुजुर्गों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। पर आज स्थितियां बहुत बदल गयी हैं। आधुनिक युग की भौतिकतावादी संस्कृति ने बुजुर्गों के अनुभव, उनकी परंपराएं, प्रेम, सलाह-मशवरे आदि की युवा वर्ग के जीवन में कोई जगह नहीं छोड़ी है। आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण के कारण युवा शिक्षा पाने के लिए, रोजगार पाने के लिए घर से बाहर बड़े शहरों की ओर या विदेशों की ओर निकल गये, जिससे संयुक्त परिवार टूट कर अधिकतर एकल परिवार बन गए हैं। जगह की कमी, व्यस्त जिंदगी, अधिक महंगाई, वृद्धों से विचारों में तालमेल में कमी के कारण नई पीढ़ी और बुजुर्गों के बीच एक फासला बनता चला जा रहा है। टी.वी., इंटरनेट, क्लब तथा मनोरंजन के अन्य साधनों ने संतान की माता-पिता से दूरी बढ़ाई है। भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने की होड़ में युवा वर्ग दौड़ रहा है। परंपराओं, रीती-रिवाजों और पुराने अनुभवों को वह पीछे छोड़ रहा है। इसी के साथ ही पीछे छूट रहे हैं बुजुर्ग। पीछे छूटे बुजुर्ग अपने आप को उपेक्षित महसूस करने लगे हैं। उन्हें महसूस होने लगा है कि उनके लंबे जीवन का अनुभव किसी काम का नहीं रहा। अपनी ही संतान उन्हें बोझ समझने लगी है, संतान के साथ मानसिक टकराव की यह स्थिति बुजुर्गों की समस्याओं को बढ़ाने लगी है, जिसके कारण उनके मन में असंतोष, घुटन और तनाव बढ़ रहा है।

चिकित्सा के क्षेत्र में विकास के कारण मनुष्य की औसत आयु पहले से बढ़ गयी है, जिसके कारण वृद्ध-जनों की संख्या में भी वृद्धि हो गयी है। एक अनुमान के अनुसार आज ६० वर्ष से अधिक आयु के ७ करोड़ लोग भारत में हैं और इनमें से लगभग आधी महिलायें हैं, जिनमें से कुछ विधवा हैं, कुछ तलाकशुदा हैं या अविवाहित हैं। इन अकेली रहती वृद्धाओं, जिनका आय का कोई स्रोत भी नहीं है, की समस्याएं और भी गहरी हैं। पति-पत्नी में से किसी एक की मृत्यु के पश्चात् का अकेलापन बुजुर्गों की जिंदगी में और भी बिखराव ला देता है। कितनी दुखद बात है कि जो वृद्ध परिवार को ऊपर उठाने में अपनी जिंदगी खर्च कर देते हैं वे जीवन-संध्या में अपनों के द्वारा ही तिरस्कृत हो जाते हैं, अकेले रहने को विवश हो जाते हैं। उनकी पीड़ा, उनका दुख, उनका अभाव देखने के लिए, सुनने के लिए, समझने

*३०६/१, खुड्ड मोहल्ला, ओल्ड सिविल अस्पताल रोड, लुधियाना-१४१००८, मो: ९४१७९-७७२००

के लिए न ही किसी के पास समय है और न ही सांत्वना के दो बोल।

जिन बुजुर्गों के बच्चे घर से दूर शहर से दूर स्थापित हो गये हैं वे घर में अकेले रहने पर विवश हैं। जो बुजुर्ग घर में अपनी संतानों के पास हैं उन्हें लगता है कि बेटे-बहू के लिए उनकी हैसियत एक नौकर से बढ़ कर नहीं है! उनकी सारी ऊर्जा और अनुभव बाजार से सब्जी व अन्य वस्तुएं लाने, पोते-पोतियों को स्कूल छोड़ने, घर की रखवाली करने व बिजली, पानी का बिल जमा करवाने में ही खर्च हो रही है। उनकी जीवित अवस्था में ही बेटा उनके व्यवसाय पर अपना अधिकार जमा लेता है, उनकी सम्पत्ति और बैंक बैलेंस हथियाकर अपने नाम करवा लेता है। बुजुर्ग मजबूरी में वह सब करता है जो बच्चे चाहते हैं। जो बुजुर्ग ऐसा कर देते हैं उनके पास धनाभाव हो जाता है तथा वे स्वयं को असुरक्षित महसूस करते हैं। एक अध्ययन के अनुसार जिन बुजुर्गों के पास धन या सम्पत्ति नहीं रहती उनके साथ दुर्व्यवहार अधिक होता है। बुजुर्गों के साथ दुर्व्यवहार और अत्याचार की घटनाएं पीड़ादायक तो हैं ही साथ ही हमारे सभ्य समाज का नग्न सत्य भी उद्घाटित करती हैं। बीमारी के समय बुजुर्ग भयग्रस्त हो जाते हैं। महंगा इलाज और पैसा पास में नहीं। भारत में मात्र ३० प्रतिशत बुजुर्ग ही ऐसे हैं जो बीमारी में खर्च का दायित्व स्वयं सहन करते हैं, शेष बुजुर्ग किसी न किसी पर निर्भर हैं और यह निर्भरता उन्हें मानसिक और शारीरिक दोनों ही दृष्टियों से कमजोर कर देती है। अकेलापन, धनाभाव, शारीरिक आवश्यकता की समस्या से जूझ रहे बुजुर्ग वर्तमान से दुखी और भविष्य के प्रति आशंकित रहते हैं। भौतिकतावाद की दौड़ में दौड़ रहा युवा वर्ग यह क्यों नहीं सोचता कि बुजुर्गों की आंखों से बहता नीर चाहे उन्हें बद्दुआएं नहीं देता पर उनके लिए एक न एक दिन अभिशाप बन कर तो अवश्य खड़ा होगा?

पहली अक्तूबर को 'बुजुर्ग दिवस' के रूप में मनाया जाता है। 'बुजुर्ग दिवस' मनाना तभी सार्थक है जब उनका उचित सम्मान भी किया जाये, उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखा जाए। बुजुर्गों की दुर्दशा को देखते हुए भारत में उनके लिए 'वृद्ध आश्रम', 'देखभाल गृह' आदि स्थापित किए गये हैं, जिनका उद्देश्य बुजुर्गों की उचित देखभाल करना है। केन्द्रीय व राज्य सरकारें आर्थिक मदद देकर इन संस्थाओं को चला रही हैं। पंचवर्षीय योजनाओं में भी बुजुर्गों की सुविधा के कार्यक्रमों पर राशि खर्च करने का प्रावधान रखा जाता है। रेल मंत्रालय रेल भाड़े में बुजुर्ग-जनों को वरिष्ठ नागरिक सम्मान देकर यात्री भाड़े में छूट देता है। बुजुर्गों की समस्याओं का निराकरण करने के लिए २००७ में केन्द्र सरकार द्वारा "माता-पिता और वरिष्ठ नागरिक भरण-पोषण विधेयक" पारित किया गया। पर भारत में कानून से भयभीत होने वाले लोग कम ही गिनती में हैं। इसी कारण तो अधिकाधिक अपराध यहीं होते हैं। इस कानून के बनने से कोई खास फर्क नहीं पड़ा। बुजुर्गों की स्थिति वैसी ही है। सरकार का दायित्व बनता है कि वह बुजुर्गों के लिए "स्वास्थ्य बीमा" जैसी सरल योजनाएं लागू करवाये ताकि अशिक्षित लोग भी अपनी युवावस्था में उसके महत्व को समझते हुए उसमें योजनाबद्ध तरीके से निवेश करें। जो संतानें अपने माता-पिता को अच्छे ढंग से रखती हैं उनके लिए टैक्स में छूट या विशेष पुरस्कार योजना आरंभ

की जाए। बुजुर्ग बच्चों को पालित करते समय यह भावना मन से निकाल दें कि बुढ़ापे में बच्चे उनका सहारा बनेंगे।

बुजुर्ग घर में रहें या वृद्ध-आश्रम में, उन्हें चाहिए अपनापन, सही परिवेश और उनकी बात सुनने और मानने वाले अपने लोग। हर माता-पिता ने अपनी संतान को गुलाब की तरह पाला होता है पूरी लगन, मेहनत और निष्ठा के साथ, तन, मन और धन के साथ। उन्हें उम्मीद होती है कि उनका 'गुलाब' जब पूर्ण विकसित होकर खिलेगा तो उन्हें आनंद, सुख और खुशबू देगा, घर की शोभा बढ़ाएगा, उन्हें तारीफ का पात्र बनायेगा और सम्मानित स्थान देगा, पर अगर वही 'गुलाब' अपने कांटों से उन्हें लहूलुहान करने लगे, अपनी खुशबू अपने तक सीमित कर ले तो पालने वाले माली रूपी बुजुर्ग की जीवन भर की पूंजी, मेहनत और सपने धराशायी हो जाते हैं। जरूरत है बुजुर्गों की इस जीवन संध्या में युवा 'गुलाब' के महकने की . . . जिससे समाज रूपी बगिया सुवासित हो सके।



कविता

हम दोनों

एक बेटी और दो बेटों के होते हुए,
हम दोनों अलग रहते हैं,
अकेले हैं . . .
मोतियाबिंद उतरी आंखों की धुंधली रोशनी से
रोटी सेकती हुई की हथेलियां भी
सिक जाती हैं कई बार।
पैरों से चलने को लाचार
अपने आप को धिकयाते हुए
पंक्ति में लग कर जमा करवाते
बिजली-पानी का बिल
जब आंखें भीगती हैं लाचार होकर
दया आ जाती है
वहां खड़े लोगों को कई बार।
सूने आंगन में शाम को
कमजोर कंधे घोड़ा बनने को
दादा-नाना कहलवाने को,
तोतली जुबान को तरस जाते हैं कई बार।
खुश हैं, अकेले रहते हैं
किसी पर बोझ तो नहीं
कहते हैं लोगों से तो
स्वर का भीगापन छुपाना पड़ता है कई बार।
विदेशों की अंधी दौड़ ने
जीवन में मिलने वाली सम्पन्नता ने
सुख और सुविधाओं ने
नई-नई गाड़ियों के शौक ने
माता-पिता को पीछे छोड़ा है कई बार।
कहां चूक गये हम उन्हें अच्छा बनाने में
संस्कार और अपनापन सिखाने में
माता-पिता और गुरु-जनों की सेवा करने में,
एक बार नहीं, यह सोचा है कई बार।
और हर बार जवाब पाया है :
हम दोनों भी छोड़ आए थे
गांव में बूढ़े माता-पिता को
बच्चों का भविष्य बनाने के लिए
नगर की ओर भाग आए थे
शायद यह उसी का जवाब है।
कल बच्चों के लिए
अपने माता-पिता छोड़े थे
आज बच्चों ने अपनी
संतान के लिए हमें छोड़ा है
शायद जीवन में यही घटित होगा
कई बार नहीं, हर बार, बार-बार।



बुजुर्गों के भाईचारे में 'मां' सर्वश्रेष्ठ है

*-डॉ. अनूप सिंह**

बुजुर्गों का भाईचारा वास्तव में माता-पिता का भाईचारा है। हम जो कुछ भी हैं या होने की आशा करते हैं वह अपने माता-पिता एवं उनके माता-पिता के कारण ही हैं। मनुष्य जिन सुख-सुविधाओं का आनंद आज ले रहा है वे करोड़ों बुजुर्गों के हजारों वर्षों के अर्थपूर्ण प्रयत्नों का ही परिणाम हैं। अतः उन महान बुजुर्गों की अमूल्य देन को सत्कार सहित स्मरण रखना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है। बुजुर्गों का सत्कार माता-पिता का सत्कार ही है और जो व्यक्ति माता-पिता का सत्कार नहीं करता वह कदापि सुख नहीं पाता और न ही पा सकता है। दुर्भाग्यवश माता-पिता के योगदान, त्याग तथा कुर्बानी का अहसास कुछ लोगों को ही होता है। यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिए कि इस अहसास से हीन लोग अपनी महान विरासत के प्रति असावधान होते हैं, परंतु इस अहसास के प्रति संवेदनशील लोग माता-पिता को प्रत्येक संभव सुख-सुविधाएं प्रदान करते हैं और इस प्रकार वे अपना जीवन भी सुखमयी बना लेते हैं।

माता-पिता, उनके माता-पिता और बड़ों का समस्त भाईचारा, बच्चे को खाना-पीना, उठना-बैठना, रेंगना, चलना-फिरना और बोलना सिखाते हैं। माता-पिता अपनी जीवन-युक्ति और पहुंच-दृष्टि द्वारा अपने बच्चों के अहसास, भावनाएं, जजबात, विचार, नैतिकता, आचरण तथा जीवन-मूल्य बनाते-सिखाते हैं और इस प्रकार उनके चरित्र का निर्माण करते हैं। वे योग्य पथ-प्रदर्शन करके बच्चों को सही या गलत की पहचान कराते हैं। वे बच्चों की प्रारंभिक आवश्यकताएं पूरी करते हैं और उनके व्यक्तिगत विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। माता-पिता अपने सुखों तथा ऐश का परित्याग करके अपने बच्चों का पालन-पोषण करते हैं। एक अति अल्प गिनती को छोड़कर हमारे समाज में ३५-४० वर्ष की आयु के बाद मनुष्य अपने बच्चों के पालन तथा विकास के लिए ही जीते हैं। माता-पिता अपने बच्चों को बिना लाभ तथा स्वार्थ के उनको आत्मनिर्भर बनाते हैं।

पूरे विश्व में अन्य सभी रिश्तों की तुलना में माता-पिता का रिश्ता ही स्वार्थ से हीन होता है। कारण? अपनी सृजना के प्रति मोह बहुत ही स्वाभाविक है। परंतु आज तक कोई भी वैज्ञानिक तकनीक या खोज 'मां' की ममता तथा मोह को मापने में सफल नहीं हो सकी। मोह, प्यार तथा ममता की कोई भी इकाई नहीं बन सकी और शायद बनाई भी नहीं जा सकती। 'मां' की गोद की ऊष्णता को मात्र अनुभव ही किया जा सकता है। प्रसिद्ध पंजाबी कवयित्री श्री अमृता प्रीतम ने शायद इसी कारण कहा था :

माण नी जिंदे चंन दी चानणी,
लभ्भीं ना रिशमां दे बीज।
पिआर सज्जण दा महिक फुल्लां दी,
इह फड़न वाली नहीं चीज।

दुर्भाग्यवश ज्यों-ज्यों पैसे की प्रमुखता

**१४२, अरबन अस्टेट, बटाला-१४३५०५ (गुरदासपुर, पंजाब)*

वाली व्यवस्था चरम सीमा की तरफ बढ़ रही है त्यों-त्यों मोह-प्यार के रिश्ते भी लेने-देने तथा तोलने-मापने के पैमानों पर चढ़ रहे हैं। परस्पर निर्भरता, सहयोग भाईचारे की ऊष्णता कम होती जा रही है परंतु अभी भी 'मां' की ममता का कोई बदल नहीं है और इसकी तर्कसंगत व्याख्या भी असंभव लगती है। भारतीय समाज में बढ़ रहे वृद्ध आश्रम चिंता का विषय हैं। जब माता-पिता के सत्कार के लिए और उनकी सेवा-संभाल के लिए कानून पारित करना पड़े तो समझ लो कि समाज तथा संबंधित भाईचारा रसातल की तरफ जा रहा है, पारिवारिक तथा सामाजिक मूल्यों का हनन हो रहा है और मानवी मूल्य-विधान पैरों तले लताड़े जा रहे हैं।

वर्तमान पीढ़ी 'मां' के महत्व को अनदेखा कर रही है। 'मां' वृद्ध-आश्रमों में बैठ कर मृत्यु की प्रतीक्षा करने के लिए विवश है। 'मां' से इतना कुछ प्राप्त करके भी 'मां' को दो वक्त की रोटी देने से इंकार किया जा रहा है। पैसे, पदवी तथा प्रसिद्धि की अंधी दौड़ में मनुष्य इतना गलतान हो गया है कि 'मां' के मोह-ममता के साथ लबालब भरे रिश्ते को अचेत-सुचेत तोड़-मरोड़ रहा है। यही कारण है कि पदार्थक साधनों की अधिकता के होते हुए भी मनुष्य खाली-खाली तथा शून्यता में भटकता प्रतीत होता है।

बुजुर्गों तथा माता-पिता को तो घर में ही इतना सत्कार मिलना चाहिए कि उनको किसी बाहरी सहारे या आश्रम की आवश्यकता ही न पड़े। माता-पिता द्वारा किये गए परिश्रम, साधी कठिन साधना और समस्याओं के किये सामने का हमको तब पता चलता है जब हम खुद माता-पिता बन जाया करते हैं। बुजुर्गों के पास जीवन का तजुर्बा होता है। हमें उनसे वह तजुर्बा सीखना चाहिए। माता-पिता के तजुर्बों से प्राप्त ज्ञान बच्चे को मोह सहित नि:शुल्क ही मिल जाता है, जिसको बच्चे अपने जीवन में अपना कर प्रसन्नचित्त लंबी आयु जी सकते हैं।

बुजुर्ग/माता-पिता के भाईचारे में अनेकों कारणवश 'मां' को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण यह है कि 'मां' के पास एक सृजन-शक्ति है: मनुष्य जैसा पैदा करने, पालने की और उसको अपने पांवों पर खड़ा करने की। है किसी और के पास ऐसी सृजन-शक्ति एवं क्षमता? नारी सर्वप्रथम 'मां' है। 'मां' तो उत्पत्ति का मूल है। हर 'मां' एक महान कलाकार है जो मौलिक सृजना करती है। 'मां' सृजनहार है और उसकी मौलिकता ही खूबसूरती की एक मात्र कसौटी है। भारतीय समाज में 'औरत', शब्द के सही अर्थों तथा भावना में तपस्या करती है। 'मां' घर का अकाने-थकाने वाला, नीरस तथा मेहनताने से रहित काम औरत नित्य नये चाव, उत्साह और सच्ची सुहृदय-भावना के साथ नित्य-प्रतिदिन करती है। है कोई व्यवसाय जिस में दिन-त्योहार, अमावस-संक्रांति तथा रविवार की अर्थात वर्ष भर और आयु पर्यंत कोई छुट्टी भी न हो? घर में सबके बाद कौन खाता है? घर में दूसरे पारिवारिक सदस्यों का ख्याल कौन रखता है? ऐसे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर होगा--'मां'।

यह हमारा दुर्भाग्य ही नहीं अकृतघ्नता का शिखर है कि हमारे समाज में माताओं के भाईचारे के साथ जन्म लेने से मरने तक और जीवन के हरेक क्षेत्र में भेदभाव किये जा रहे हैं। वे बहुत नालायक बेटियां-बेटे हैं जो अपनी मां-जननी, मां-बोली (मातृ-भाषा) और मां-धरती का अनादर करते हैं। कुछ गिनी-चुनी स्त्रियों का सफलता की चोटी पर पहुंच जाना,

माताओं के समुदाय की समूची स्थिति के गुणात्मक परिवर्तन का संकेतक नहीं बनता। वैसे उन स्त्रियों को प्रणाम करना बनता है जो अत्यंत टेढ़े-मेढ़े फासले तय करके मंजिल पर पहुंची हैं। खैर, बात 'मां' की हो रही है।

'मां', 'मां' होती है और उसका कोई बदल नहीं होता। 'मां', 'मां' होती है और इसके साथ कोई अन्य विशेषण लगाने की आवश्यकता नहीं होती, जैसे 'अच्छी', 'बढ़िया', 'अधिक अच्छी', 'सुंदर', 'सकुशल', 'संयमी' और 'सचियार' आदि। दुनिया की हरेक भाषा का शब्द 'मां' अमूल्य है। 'मां' के सामने दुनिया का हरेक रिश्ता, हरेक शब्द, हरेक परिभाषा बहुत अधूरी है। संस्कृत में कहा गया है कि जननी और जन्म-भूमि स्वर्ग से उत्तम होती हैं। 'मां' के दिल को माताएं ही जान सकती हैं। माताओं के मोह और साहस तक पुत्र नहीं पहुंच सकते। देश की सांस्कृतिक विरासत के अनुसार 'मां' 'प्रथम गुरु' है भाव 'प्रथम अध्यापक' है। प्राइमरी स्कूल के अध्यापक का कार्य सभी अध्यापक समुदायों से बड़ा, कठिन तथा जटिल माना जाता है। 'मां' का काम प्राइमरी अध्यापक के काम से भी अधिक महत्वपूर्ण है। कभी न खत्म होने वाले प्यार, असीम मोह, अनंत साहनुभूति के हिमसागर, अधिकतम लगाव, शीत ऋतु में ऊष्णता और ग्रीष्म ऋतु में शीतलता का नाम 'मां' है। रिश्तों में सर्वाधिक पवित्र और सत्कार भरा रिश्ता 'मां' का है। कोमल और निर्मल लोरियों का नाम है 'मां'। निरंतर तप-योग का नाम है 'मां'। 'मां' की सदाबहार आशीषें लोक-परलोक में रक्षा करती हैं। 'मां' बिना जिंदगी अधूरी है। 'मां' की बेवक्त मृत्यु से बच्चे का सही एवं संतुलित विकास संभव नहीं है। 'मां' सदैव अपने बच्चे की खैर मांगती है। 'मां' सदैव बच्चे की भलाई तथा विकास चाहती है, इसीलिए वह बच्चे को बुरी संगत, नशों तथा चोरी से बचे रहने के लिए समझाती, रोकती, टोकती और मना करती रहती है। बच्चे की परवरिश में 'मां' का सहयोग तथा योगदान सबसे अधिक है।

'मां' एक ऐसा वृक्ष है जो अपने बच्चे-पौधे को एक सेकेंड के लिए भी अपने से अलग नहीं होने देना चाहता। यदि बच्चा भी अपनी 'मां' से दूर जाए तो वह भी सफल नहीं बन सकता। जो प्यार, अपनापन, मोह-ऊष्णता और इस संसार में अन्य जो कुछ भी अच्छा 'मां' दे सकती है वह कोई और नहीं दे सकता। 'मां' तो ऐसा अस्तित्व है जिसके सहारे से सब दुख-कष्ट भुलाये जा सकते हैं, उसकी गोदी में सिर रखकर सभी बातें कही जा सकती हैं। यह 'मां' ही है जो अपनी संतान को उसकी सभी बुराइयों सहित अपनाती है और उन बुराइयों/गलत कामों को चित्त में लाने का कभी सपना भी नहीं लेती। भारतीय समाज में उसके लिए बेटे तथा बेटियां केवल बेटे तथा बेटियां ही हैं। वह अच्छे या बुरे की परख में पड़ती ही नहीं क्योंकि वे उसकी अपनी सृजना होते हैं। हमारे भाईचारे में 'मां' अनेकों बार संतान की खातिर ज्यादतियां भी सह जाती है।

बुद्धिमान लोग 'मां' के महत्व को दृढ़ कराने के लिए ही कहते हैं कि रब्ब भौतिक रूप में हर जगह नहीं हो सकता, इसलिए उसने 'मां' का सृजन किया है। इस तरह 'मां' जिसके रक्त-मांस से हम बने हैं, रब्ब से भी ऊपर समझी जानी चाहिए। हमारी पालना-परवरिश करने के लिए वह स्वयं को भी भूल जाती है और दुनिया की सभी खुशियां हमारे लिए कुर्बान कर देती है। बच्चा जब प्रथम बार कुछ बोलता है तो 'मां' शब्द ही बोलता है। किसी भी आयु में जब किसी व्यक्ति को कोई

दुख-कष्ट होता है तो उसके मुंह से सर्वप्रथम और बार-बार शब्द 'मां' ही निकलता है। साधारण मनुष्य से लेकर महान मानवों ने अपने मानसिक भाव, दुख-दर्द, विलाप, रुदन 'मां' के साथ सांझे किये हैं। शिव कुमार बटालवी 'मां' को 'विरह का तीर्थ' भी कहता है और उसका काव्य-पात्र शिकरे (एक पक्षी) को दिल में बैठने की शिकायत भी 'मां' के पास ही करता है। उसकी काव्य-पात्र लड़की अपने गीतों के नयनों में विरह की कसक भी 'मां' के साथ ही सांझी करती है। शिव कुमार ने 'मां' को मृत हो चुके तारों के साथ आलिंगन करते हुए बिलखते, चिल्लाते भी देखा है। बेटियां, बहिनें भी ससुराल-घर को जाते समय चाबियां 'मां' को ही पकड़ा कर जाती हैं। मनुष्य 'मां' का सत्कार करके, उससे प्यार का आशीर्वाद लेकर खुशियों का आनंद अनुभव कर सकता है। सच्ची खुशी 'मां' के चरणों में ही है। पंजाबी युवती को अपनी 'मां' वृक्ष की छाया की भांति छाया देती प्रतीत होती है। 'मां' की शीतल छाया की तरफ पंजाबी लोक-बोलियों में संकेत किया गया है :

मैं सौ सौ रुक्ख पई लावां, रुक्ख तां हरे भरे।
मांवां ठंडीआं छांवां, छांवां कौण करे?

'मां' हमारे जीवन की अमूल्य पूंजी है। लोक-काव्य का कथन है :

मांवां ठंडीआं छांवां, छांवां कौण करे?
रूप बसंत दी हामी, मां बिनां कौण भरे?

'मां' सचमुच ही घनी छाया वाला वृक्ष है जो दुख रूपी धूप अपने शरीर पर सहन करता हुआ, अपने बच्चों को गर्म लू तक नहीं लगने देता। 'मां' मात्र एक जैविक अस्तित्व ही नहीं बल्कि मोह, ममता और त्याग का सागर है, जिसका प्यार रूपी जल अपने बच्चों के व्यक्तित्व को सींचता, सृजन करता, रूप-आकार देता तथा संवारता है और उनको सफलता की चोटियों पर पहुंचाता है। 'मां' के गणित-विज्ञान में जमां और गुणा के चिन्ह होते हैं, मनफी एवं विभाजन के नहीं। 'मां' शब्द युगों-युगांतरों की प्यासी आत्माओं को सुख प्रदान करता है। प्रकृति द्वारा सृजित अनेकों दातों अथवा ऊंची अमूल्य वस्तुओं में से सर्वाधिक अमूल्य दात 'मां' है। 'मां' ऐसी सीपी है जो अपनी संतान के लाखों रहस्य सीने में छुपा कर रखती है। 'मां' प्रकाश का सात रंगों वाला प्रकाश का स्रोत है। हमारे लोक-गीतों सहित हमारी संस्कृति में आया 'मां' शब्द का उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि 'मां' बिना सब कुछ अधूरा, कमी वाला तथा खाली है।

'मां' की देन की मूल्य-अदायगी कोई भी नहीं कर सकता। यदि 'मां' जिंदगी के अंतिम चरण में शारीरिक रूप से कमजोर पड़ जाए या बीमार हो जाए और बेटियां-बेटे उसकी पूर्णत: तन-मन से सेवा-संभाल भी करें तब भी उसकी सेवा-संभाल का मूल्य नहीं चुकाया जा सकता, जो (सेवा-संभाल) उसने अपनी बेटियों एवं बेटों को उनके अपने पैरों पर खड़े करने के लिए की होती है।

विश्व भर की महान शख्सियतों ने 'मां' के सत्कार में बहुत भावभीनी तथा शानदार टिप्पणियां की हैं। इनमें अमेरिका के बहुत चर्चित रहे राष्ट्रपति मिस्टर लिंकन भी शामिल हैं जिन्होंने झोंपड़ी से व्हाईट हाऊस तक की यात्रा सफलता सहित की। उन्हों ने कहा था, "मैं जो कुछ भी हूं या होने की आशा रखता हूं, अपनी फरिश्तों जैसी 'मां' के कारण हूं।" पंजाबी कवि प्रो. मोहन सिंघ ने 'मां' के बारे में बहुत ही खूबसूरत काव्य-टिप्पणी की है :

मां वरगा घणछावां बूटा, मैनूं नजर ना आए।
लै के जिस तों छां उधारी, रब्ब ने सवरग

बनाए।
बाकी कुल्ल दुनीआं दे बूटे, जड़ सुक्किआं सुक्क जांदे,
ऐपर फुल्लां दे मुरझाइआं, इह बूटा सुक्क जाए।

लोक-गायक श्री कुलदीप माणक के अनुसार:
मां हुंदी ए मां, बई दुनीआं वालिओ!
मां बिना नीं कोई लाड लडाउंदा,
रोंदिआ नू नईं चुप्प कराउंदा,
खोह लैंदे टुक्क कां, बई दुनीआं वालिओ!

लहिंदे (पश्चिमी) पंजाब के कवि जाहिद के अनुसार :
जिन्हां दे घर विच मां नईं हुंदी,
उन्हां दे विहड़े छां नईं हुंदी।
जेकर मावां हां ना आखण,
रब्ब कोलों वी हां नईं हुंदी।

पंजाबी के जाने-माने गद्यकार स. गुरबख्श सिंघ 'प्रीतलड़ी' ने लिखा है : "मां की कीमत का अहसास तब होता है जब वह चली जाती है।" इंग्लैंड में बस रहे पंजाबी लेखन अमीन मलिक का कहना है : "मां से बड़ी कोई यूनीवर्सिटी नहीं होती।" श्री शरत चंद्र कहते हैं: "जिंदगी की बड़ी वस्तुओं को हम तब पहचानते हं, जब हम उनको गंवा लेते हैं। 'मां' इन (बड़ी वस्तुओं) में से एक है।" स. गुरबख्श सिंघ 'प्रीतलड़ी' और श्री शरत चंद्र के भाव-अर्थों को एक अन्य विद्वान इस प्रकार प्रस्तुत करता है : "जब मां थी, तब उसके दर्जे के बारे में ज्ञात न था, दर्जा ज्ञात हुआ तब मां नहीं थी।" प्रसिद्ध चित्रकार मिस्टर वान गाग को जब यह पूछा गया कि कौन-सी चीज ने उनको कलाकार बनाया है, तो उन्होंने उत्तर में कहा : "मेरी 'मां' के एक चुंबन ने। एक बुद्धिमान तथा सुयोग्य 'मां' सौ अध्यापकों से भी अधिक योगदान डालती है व्यक्ति विशेष के विकास में।" प्रो. पूरन सिंघ 'मां' की स्तुति यूं करते हैं : "मां रब्ब दा कोई डाढा सुहणा आवेश है।"

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति जनाब अब्दुल कलाम ने अपनी आत्म-कथा में मां को इस तरह सत्कार भेंट किया : "स्मरण है, अभी कल ही दस वर्ष का मैं तेरी गोद में सोया पड़ा था तथा दूसरे बच्चों की ईर्ष्या का शिकार हुआ। पूर्णिमा की रात भरती जिसमें तेरा प्यार, आधी रात अधखुली आंखों के साथ देखता तुझे, आंसू रोकता पलकों पर। घुटनों के बल बाहों में घेरे खड़ा था तुझको। तूने जाना था मेरा दर्द। अपने बच्चे की पीड़ा, जब तेरी अंगुलियों ने सहलाया था दर्द मेरे बालों का, फिर भरी थी अपने विस्माद की शक्ति, निर्भीक होकर जीने की, जीतने के लिए, मेरी मां! जीता मैं। कयामत के दिन मिलेगा तुझे तेरा कलाम, मां तुझे प्रणाम!"

भक्ति-आंदोलन की संतनी मीरा ने भी "माई माहरे सपना मां पढ़ लिया रे दीना नाथ" द्वारा अपनी मां को ही अपनी सहेली बना कर आध्यात्मिक दुख रोये।

'मां' के प्रति उपर्युक्त तर्कसंगत तथा श्रद्धायुक्त टिप्पणियों और भावुक कथनों का कोई अंत नहीं है।

माता-पिता के प्रति जो महत्वपूर्ण बात स्मरण रखनी चाहिए वह यह है कि माता-पिता ही बच्चे की किसी प्राप्ति पर सबसे अधिक खुशी, संतुष्टि तथा तृप्ति अनुभव करते हैं और बच्चे के किसी भी दुख पर सबसे अधिक दुख भी वे ही अनुभव करते हैं। बच्चों की प्राप्ति को वे अपनी प्राप्ति समझते हैं। माता-पिता की अपने बच्चों के साथ कोई ईर्ष्या नहीं होती है।

सभी बहिन-भाइयों के बीच तो ईर्ष्या हो सकती है, होती भी है, परंतु माता-पिता की अपने बच्चों के प्रति कोई ईर्ष्या नहीं होती। पंजाबी भाषा में लोक-कथन है कि "पुत्त कपुत्त हो जांदे ने पर मापे कुमापे नईं हुंदे।" इस पक्ष से दूसरी समझने वाली बात यह है कि माता-पिता अपने किये का मूल्य नहीं मांगते। जितनी खुशी तथा सुख माता-पिता अपने बच्चों से मिले प्यार का अनुभव करते हैं वह प्यार किसी भी अन्य स्रोत से मिलने पर महसूस नहीं करते। माता-पिता में से 'माता' का हृदय तो मोम से भी अधिक नर्म होता है, जो पलों में ही पिघल जाता है।

बच्चों की हर खुशी में 'मां' अपनी खुशियां कुर्बान करती रहती है। वह अपने द्वारा की कुर्बानियों का सिला तो नहीं चाहती परंतु इतना अवश्य चाहती है कि दो शब्द खुशी तथा प्यार के साथ उसके बाल-बच्चे उसके साथ बोलें। यदि बच्चा होनहार निकले तो माता-पिता, दोनों का नाम रौशन करता है, परंतु यदि बिगड़ गया तो दोषी अकेली 'मां' गिनी जाती है। बहू भी "मां का बिगड़ा हुआ पुत्र" की शिकायत करती है। बेटी से यदि ससुराल में अचेत ही कोई भूल जो जाए तो भी दोष 'मां' का ही निकाला जाता है।

जीवन में कार-व्यवहार करते हुए अनेकों लोगों से आमना-सामना होता है। उनमें से कुछ एक अपने माता-पिता की निंदा करते, उनको बुरा बोलते, गालियां निकालते देखे-सुने जाते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उनकी उचित संभाल न करते हुए दिखाई देते हैं। जीवन में यदि ऐसे "मनुष्यों" के "दर्शन" न ही हों तो अच्छा है। सिक्खी-सिद्धांतों में असीम निश्चय के कारण मेरा जात-पात, छूत-छात, सुच्चम अथवा छूने से अपवित्र हो जाने, शुभ-अशुभ, शगुन-अपशगुन और परछाई लेने-देने में कोई विश्वास नहीं है, परंतु माता-पिता को बुरा बोलने वालों की परछाईं मेरे पर यदि न ही पड़े तो अच्छा रहेगा। जिंदगी में मित्र बनाने के समय एक नियम यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जो माता-पिता का नहीं बनता वह अन्य किसी का क्या बनेगा? जो जन्म देने और पालना-परवरिश करने वालों का नहीं बना वह आपका कौन-सा कीचड़ में से छकड़ा निकाल देगा?

यदि कोई मुझे पूछे कि "दुनिया की सबसे अच्छी औरत कौन है" तो बिना सोचे तथा बिना झिझक सीना फैलाकर मैं उत्तर दूंगा : "मेरी मां"। मैं तो कहता हूं कि हरेक को यही उत्तर देना बनता है। बात व्यक्तिगत है। साधारण लोगों के लिए मेरी 'मां' साधारण औरत थी, परंतु मेरे लिए पूरे विश्व में से विशेषतम। मेरी 'मां' थी ही बहुत अच्छी। जब प्राइमरी कक्षाओं में कच्चे-पक्के पेपरों में मेरे अंक, मेरे हमजोलियों के अंकों से थोड़े अधिक अच्छे आ जाते तो मेरी 'मां' फूले न समाती थी और मोह-ममता के साथ-साथ गर्वशील भी हो जाती थी। आशीषों तथा शुभ कामनाओं की रहमत, ममता भरा आशीर्वाद देने वाले हाथों के साथ सिर सहलाना और प्यारे-प्यारे आलिंगन अब कहां मिलते हैं? मेरा तथा मेरे बहिन-भाइयों का दुर्भाग्य ही है कि हमारी 'मां' जल्दी चली गई। साढ़े चार दशक के लंबे सफर पर उड़ी धूलों के साथ तो उस महानतम औरत का चेहरा भी बेपहचाना तथा अपरिचित-सा हो गया है! उन दिनों में मेरी भोली 'मां' की फोटो किसने खींचनी थी?



बुढ़ापा : जीने की एक और कला

-प्रो. हरमहेन्द्र सिंघ*

मनुष्य सृष्टि की सर्वोत्तम उत्पत्ति है, जीवों में सर्वश्रेष्ठ तथा प्रकृति की अनुपम कृति। दर्शन की दृष्टि से मनुष्य सामाजिक प्राणी है। आध्यात्म की दृष्टि से ऐसा प्राणी जिसे ईश्वर सर्वाधिक प्रेम करते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति का एकमात्र कारण यह भी माना गया है कि भगवान मानव की लीला का चित्रण करना चाहते थे या फिर उसे अकेले बैठकर निहारना चाहते थे, परन्तु यह सब कुछ चिरस्थायी नहीं, क्षणभंगुर है।

एक न एक दिन इस शरीर को नष्ट होना ही है। कहते हैं कि मिट्टी से बना जिस्म कितने दिन संसार की ठोकरें खा सकता है? क्या बढ़ती आयु के प्रभावों को रोका जा सकता है? विज्ञान ने इस चुनौती को स्वीकार किया। औषधियों तथा विभिन्न उपचार-पद्धतियों का प्रणेता कर मानव की आयु में वृद्धि भी की लेकिन मौत के आगे विज्ञान भी हार गया। भारत में महाभारत काल में भी विज्ञान अपने चरमोत्कर्ष पर था। उस युग में भी आम आदमी सहज ही सौ वर्ष की आयु भोग कर नश्वर संसार से विदा लेता था। मृत्यु उस समय भी सत्य थी और आज भी। लोकोक्ति भी है--"जीना झूठ, मरना सच।" दार्शनिक दृष्टि से भरी पूरी जिन्दगी जीकर संसार से विदा होना मुक्ति के द्वार तक पहुंच जाने के बराबर है। भारतीय धर्म-ग्रंथों में बार-बार जिंदगी और मौत पर विचार किया गया है। अनेक स्थानों पर मानव को ऐसे आशीर्वाद भी दिए गए जिसका भावार्थ यह है कि आप सम्पूर्ण आयु भोगें या बुढ़ापा आपको न सताये या भर यौवन में आपको गृहस्थ जीवन की सारी खुशियां, नेक संतान प्राप्त हो और कुशल-मंगल एवं स्वास्थ्यपूर्ण रहकर जीवन सफल करें। परंतु क्या कोई व्यक्ति सदा एक जैसी जिंदगी जी सकता है? सृष्टि में ऐसा संभव नहीं हो सकता। जिसने जन्म लिया है वह धीरे-धीरे नष्ट अवश्य होगा। बुढ़ापा सुखमय जीवन का अंतिम पड़ाव है। जीवन की संध्या कैसे खूबसूरत ढंग से व्यतीत की जाए यह कला मनुष्य को सीखनी चाहिए। कहते हैं कि बचपन सपनों में बीत जाता है, यौवन शक्ति दिखाने-दर्शाने में खो जाता है और यदि कोई अवस्था शेष रहती है तो वह बुढ़ापा ही होता है। गहराई से यदि देखें तो बुढ़ापा अनुभवों का पुंज होता है। व्यक्ति आयु-पर्यन्त जो कुछ भी सीखता है वह बुढ़ापे की पूंजी होती है। घर, परिवार, समाज आयु भोग चुके व्यक्ति से बहुत कुछ सीख सकते हैं। बुजुर्ग व्यक्ति उन पद-चिन्हों पर चलने की सीख भी देता है जो रास्ता उसने खुद नंगे पांव चलकर देखा होता है। फिर क्यों बार-बार बुढ़ापे से बचने के ढंग सोचे जाते हैं? यह ठीक है कि बढ़ती हुई आयु के साथ व्यक्ति को अपनी जीवन-पद्धति में परिवर्तन ले आना चाहिए। स्वास्थ्य की दृष्टि

*अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, श्री अमृतसर।

से यह आवश्यक भी है। खाना-पीना, सोना-उठना तथा दिनचर्या में बुनियादी फर्क बुढ़ापा सुखद बना देते हैं। लोकतंत्र में सरकार भी साठ साल से ऊपर अपने नागरिकों को वरिष्ठ नागरिक मानकर उन्हें सम्मान देती है। कार्यालयों, निगमों, विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में उम्रयाफ्ता लोगों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति लिंकन बूढ़े व्यक्तियों को अपने राष्ट्र का अलंकरण मानते थे। वे कहा करते थे: "नौजवान पीढ़ी विकास की गति है, बच्चे मेरे देश का भविष्य हैं और बुजुर्ग व्यक्ति राष्ट्र का वो धन हैं जिनकी कीमत आंकी नहीं जा सकती।" फिर आप सोचो, क्या बूढ़े बोझ हैं या राष्ट्र को मिला हुआ भगवान का सच्चा आशीर्वाद? जैसे प्रत्येक ऋतु मानव को अच्छी लगती है वैसे ही आदमी की जिंदगी का हर पड़ाव रस भरा होता है और फिर बुढ़ापा तो सभी रसों का संयोग ऐसा अमृत है जिसकी एक-एक बूंद में जीने की हजारों कलाएं छिपी हुई हैं। राष्ट्र के नागरिकों को बुढ़ापे को सम्मान देना आना चाहिए।

भारतीय संस्कृति में बच्चों, स्त्रियों और बूढ़े व्यक्तियों को सम्मान और सुरक्षा प्रदान करने की गरिमा पर विशेष बल दिया गया है। अब तो जमाना बदल गया है। संयुक्त परिवार में बड़े-बूढ़ों का इतना सत्कार होता था कि पूरा घर उन्हें गुरु, ऋषि, पथ-प्रदर्शक तथा प्रभु-तुल्य मानकर उनकी सेवा किया करता था। हर घर में सम्मान की एक निर्मल धारा निरंतर बहा करती थी। पश्चिम के लोग भारतीय घर-परिवारों में ऐसी आचार संहिता देख आश्चर्यचकित होते थे। पूरे हिन्दोस्तान में बूढ़ों के लिए कोई अलग से घर नहीं होते थे। जहां तक घर में बूढ़े पिता का रोल था—बच्चे-बच्चियां तो घर बसाने की कला सीखते थे। मां-बाप का बुढ़ापा अपने अनुभवों से भी खिलता था और बच्चों की सेवा के कारण वे लंबी आयु भोगते थे। सरवण कुमार की कथा व्यवहार में घर-घर में दोहराई जाती थी। गांव, शहर, कसबा और नगर इसी जीवन-पद्धति का अनुसरण करते थे। जिस घर में बड़े-बूढ़े का सत्कार नहीं होता था वह घर समाज की दृष्टि में दुष्ट-प्रवृत्ति वालों का डेरा माना जाता था।

अब क्या ऐसी संस्कृति की जरूरत नहीं रही? पश्चिम की जीवन-पद्धति से तीसरी दुनिया के देश डर गये हैं। तलाक ने एकांकी परिवार भी बदल दिया। बच्चों का कोई सुनिश्चित भविष्य नहीं रहा। ऐसे भयानक समय में विश्व को पुन: जरूरत है उन भरे पूरे घरों की जिनमें बूढ़े अनुभवशील व्यक्ति टूटते हुए समाज को बचा सकें। यह बात कहकर मैं पीछे लौटने के लिए कोई जिद्द नहीं कर रहा बल्कि अतीत के उन सुनहरी पृष्ठों का आंकलन-मूल्यांकन अवश्य करना चाहता हूं ताकि हमारे बुजुर्गों को घर-परिवार में महान योगदान देने के पश्चात पिछली आयु में वृद्ध-घरों में न भटकना पड़े। औषधि विज्ञान ने इस दुनिया में करिश्मा कर दिया है। बूढ़े व्यक्तियों को घर में ही दवाई, दया, ईश्वर की दुआ यदि उपलब्ध हो जाए तो उन्हें जीते-जी बुढ़ापे में स्वर्ग मिल जाएगा।



बुजुर्ग अवस्था का दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्लेषण

*-कैप्टन डॉ मनमीत कौर**

बाल जुआनी अरु बिरधि फुनि तीनि अवसथा जानि ॥
कहु नानक हरि भजन बिनु बिरथा सभ ही मानु॥
(पन्ना १४२८)

तात्पर्य यह है कि बाल्यावस्था, युवावस्था तथा बुजुर्ग अवस्था किसी भी अवस्था में व्यक्ति को प्रभु-नाम के सिमरन को नहीं त्यागना चाहिए अन्यथा उसका जन्म व्यर्थ ही बीत जाता है।

भारतीय जीवन-दर्शन के अनुसार मानव जीवन का वैज्ञानिक वर्गीकरण किया गया है। मानव शरीर की रचना कोशों (**cell**) से मिलकर हुई है जो शरीर के सबसे छोटे आकार के तत्व माने जाते हैं। जब शरीर के कोश समय के साथ पुराने होने लगते हैं तो वे अपनी गंदगी को नहीं निकाल पाते। यह कचरा कोश के लगभग २० प्रतिशत स्थान में जमा हो जाता है। समयान्तराल में कोशों के मोलेक्यूल परस्पर सट जाते हैं जिससे बायोकेमिकल चक्रण (**Biochemical Cycling**) की क्रिया रुक जाती है। इसके फलस्वरूप कोशों की सामान्य क्रिया बाधित हो जाती है। यह बुजुर्ग अवस्था का मुख्य जैविक कारण है।

एक मत यह भी है कि मस्तिष्क में केन्द्रित हाइपोथैलेमस व पिटयूटरी ग्रन्थि (**Hypothalamus & Pituitary glands**) से किसी ऐसे हार्मोन्स की उत्पत्ति होती है जिसके कारण शरीर में नियोजित ढंग से ह्रास (**declining**) की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। इसलिए इसे **'aging harmone'** कहा गया है। इसके कारण थायराइड ग्रन्थि से निकले थायराक्सिन रस को ग्रहण करने की कोशिकीय क्षमता नष्ट हो जाती है। परिणामस्वरूप शरीर में पोषक तत्वों के परिवर्तन की क्रिया (**metabolism**) प्रभावित हो जाती है तथा बुजुर्ग अनेक बीमारियों का शिकार हो जाते हैं।

दैहिक सिद्धांत (**Physiological Theory**) के अनुसार व्यक्ति के भीतर प्रकृति की योजना के अनुसार निश्चित अवधि में शारीरिक शक्ति में ह्रास उत्पन्न हो जाता है। इसे **aging by program** नाम से जाना जाता है।

एक सिद्धांत यह भी है जिसे होमियोस्टैटिक असंतुलन का सिद्धांत (**Theory of homeostatic imbalance**) कहा जाता है। इसके अनुसार जब शारीरिक अवयवों (**organs**) के मध्य अंतः-क्रिया बिगड़ जाती है तो शारीरिक स्वास्थ्य व क्रियाशीलता प्रभावित होती है और बुढ़ापे के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। ऐसा उस स्थिति में होता है जब कोई बुजुर्ग व्यक्ति किसी मानसिक आघात का शिकार होता है। इस स्थिति में बुजुर्ग व्यक्ति के शरीर में दबाव और तनाव का सामना करने की क्षमता का लोप हो जाता है।

जेनेटिक सिद्धांत (**Genetic Theory**)

**Flat No. 203, Dashmesh Tower, GH-6, UPIL Scheme, Aishbagh Rd., Behind Petrol Pump, Lucknow*

के अनुसार जीन्स की परिवर्तित क्रियाओं के कारण व्यक्ति की क्रियात्मक क्षमता में ह्रास होता है। स्पेन्स ने लिखा- **Perhaps there are genes which direct many cellular activities during the early years of life that become altered in later years, thus altering their function. In their altered state, the genes may be responsible for the functional decline and structural changes associated with aging.**

एक बुजुर्ग व्यक्ति शैशव, बाल्यकाल, किशोर एवं प्रौढ़ावस्था के सुनहरे वर्षों की खट्टी-मीठी अनुभूतियों को समेटे वृद्धावस्था में प्रवेश करता है। उसके पीछे अतीत की एक विशाल चादर फैली होती है। जोसेफ कैम्पबेल ने बुजुर्ग व्यक्ति के सम्मान में लिखा :

'As a white candle in a holy place.
So is the beauty of an aged face.'

राबर्ट ब्राउनिंग ने बुजुर्ग के महत्व को दर्शाते हुए लिखा :

'Grow old along with me.
The best is yet to be. The last of life for which the first was made.'

शेक्सपियर ने बुजुर्ग अवस्था के विषय में लिखा :

'Last scene of all
That ends this strange eventful history.
Is second childishness and mere oblivion. Sans teeth, sans eyes, sans taste, sans everything.'

उपनिषदों की रचना होने के समय से आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम में व्यक्ति के दायित्व इस तरह निर्धारित किए गए जिसके पीछे यह भावना विद्यमान प्रतीत होती है कि बुजुर्ग-जन मानसिक तनाव से दूर रहकर समाज को अपने उपयोगी अनुभवों से लाभांवित कर सकें और स्वयं भी अपना आध्यात्मिक विकास कर सकें। इसी उद्देश्य को लेकर पुरुषार्थ के अंतर्गत 'मोक्ष' की अवधारणा को विकसित किया गया।

ग्रामीण जीवन को संगठित बनाने के लिए भी एक ऐसी ग्राम पंचायत प्रणाली विकसित की गयी जिसका संचालन गांव के बुजुर्ग लोगों के द्वारा किया जाता था। भारतीय मनीषियों का यह एक विशेष चिंतन था जिसके फलस्वरूप एक गौरवपूर्ण संस्कृति का विकास हो सका।

बुजुर्ग अतुलनीय अनुभव समेटे हमारा मार्गदर्शन करते हैं जिससे व्यक्ति, परिवार, समाज तथा राष्ट्र लाभान्वित होता है। क्षमा, दया, करुणा, सहनशीलता, धैर्य, विवेकशीलता, जीवन जीने की शैली, मार्गदर्शन, चरित्र-निर्माण आदि नैतिक गुण हमें बुजुर्गों से प्राप्त होते है। इसका साक्षात प्रमाण श्री गुरु अमरदास जी तथा बाबा बुड्ढा जी रहे हैं, जिन्होंने लंबे समय तक जीवन-यापन करते हुए आत्मिक उच्चता को प्राप्त किया तथा संसार के समक्ष बेमिसाल उदाहरण प्रस्तुत किया।

कहते हैं कि बुजुर्गों का प्रतिदिन अभिवादन करने से, उनकी सेवा करने से हमारी चार चीजें बढ़ती हैं--(१) व्यक्ति आयुष्मान या दीर्घायु होता है, (२) विद्वान होता है (३) यशस्वी होता है, उसकी कीर्ति सर्वत्र फैलती है और (४) वह बलवान होता है, शारीरिक व

मानसिक रूप से स्वस्थ रहता है। कहा भी गया है- **'As you sow, so shall your reap'** अर्थात् "जैसी करनी, वैसी भरनी"। जैसा हम अपने बुजुर्गों के साथ व्यवहार करेंगे वैसा ही आने वाली पीढ़ी हमारे साथ करेगी।

बुजुर्ग तभी सुखी रह सकते हैं जब समाज उन्हें इसका अवसर दे। उन्हें उतना ही सक्रिय रहने दिया जाए जितना वे अपने स्वास्थ्य और शक्ति के अनुसार रह सकते हैं। यदि उनके सक्रिय होने से समाज को लाभ होता है तो वे जब तक जियेंगे यह जानकर सुखी रहेंगे कि उनका जीवन उपयोगी है। अत: सुखी रहने के लिए व्यक्ति को अपने को तथा अपने जीवन की स्थितियों को स्वीकार कर लेना चाहिए, चाहे वे उसकी आशाओं के प्रतिकूल ही क्यों न हों। प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति की आकांक्षा का स्तर उसकी योग्यताओं से ऊंचा होने पर तथा अयथार्थ लक्ष्यों से उसमें अनुपयुक्त होने की भावना पैदा हो जाएगी जो उन्हें दुखी बनाएगी। बुजुर्ग अवस्था में व्यक्ति को अपने, अपनी योग्यताओं व निर्योग्यताओं, समाज में धीरे-धीरे होने वाले अपने अलगाव तथा बुजुर्ग अवस्था के साथ जीवन के ताने-बाने में होने वाले अन्य परिवर्तनों के विषय में यथार्थवादी होना चाहिए।

बुजुर्ग अवस्था की सबसे प्रमुख समस्या यह होती है कि बुजुर्ग व्यक्ति परिवर्तित परिस्थितियों में समायोजित नहीं हो पाता। इस अवस्था में व्यक्ति का सामाजिक परिवेश संकुचित होकर प्राय: उसके परिवार तथा पड़ोस तक ही सीमित हो जाता है। परिवार के युवा सदस्यों तथा बुजुर्गों के मध्य कम से कम एक पीढ़ी का अंतर तो होता ही है जिसे **generation gap** कहा जाता है। इसके कारण वैचारिक मतभेद उभर कर सामने आते हैं। परंतु जो समझदार होते हैं वे शीघ्र ही मित्रवत् व्यवहार से मतभेद को समाप्त करने का प्रयास करते हैं। भारतीय परिवारों में आज भी यह परंपरा कायम है कि प्रमुख संदर्भों में बुजुर्गों की राय ली जाती है तथा उनके सुझावों, दृष्टिकोणों को महत्व दिया जाता है, जिसमें बुजुर्ग स्वयं को सम्मानित महसूस करते हैं तथा परिवार का मुखिया भी मानते हैं। संयुक्त परिवारों में रहकर ही बुजुर्ग अन्य सदस्यों की सेवा तथा सम्मान प्राप्त करते हैं। **The youngest and the oldest are the best friends.** यह कहावत संयुक्त परिवारों में चरितार्थ होती दिखती है।

बुजुर्ग अवस्था के सम्बंध में आशावादी दृष्टिकोण रखना निश्चय ही भावनात्मक मनोवृत्ति का परिचायक है। सामान्यत: अनेक बुजुर्ग-जन अनुभवी, सहिष्णु, विवेकशील, उदार तथा धैर्यवान होते हैं। कुछ तो अपनी सीमित शारीरिक क्षमता के बावजूद अभूतपूर्व मानसिक दृढ़ता, सृजनात्मक कौशलता व इच्छा-शक्ति से परिपूर्ण होते हैं, जो किसी पर आश्रित नहीं रहते।

एक अन्य कोटि के बुजुर्ग वे होते हैं जो सामाजिक परिस्थितियों के साथ सुसमायोजित बने रहने की अद्‌भुत क्षमता रखते हैं। ऐसे व्यक्ति बुजुर्ग अवस्था की वास्तविकताओं को स्वीकारते हुए परिवार तथा समाज के साथ सरलता से समझौता कर लेते हैं व बुजुर्ग अवस्था की कठिनाइयों तथा कमियों के मध्य सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु इन दोनों से भिन्न वे बुजुर्ग भी होते हैं जो पूर्णतया आश्रित होकर जीवन के दिन येन-केन-प्रकारेण बिताते हैं। इनमें शारीरिक ह्रास अपेक्षाकृत तीव्र गति से होता है तथा उन्हें विवश होकर दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। परिणामत: इनका

जीवन सुख से वंचित रहता है।

वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व में बुजुर्ग-जनों की समस्याओं के प्रति एक नयी जागरूकता उत्पन्न हुयी है। परिवर्तन के युग में बुजुर्गों की समस्याओं का समाधान करने के लिए सबसे पहले सन् १९४८ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने बुजुर्ग अवस्था अधिकार पर एक घोषणा-पत्र तैयार किया तथा इस पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया। इसी घोषणा-पत्र के आधार पर सन् १९८२ में बुजुर्ग-जनों के लिए वियेना में होने वाले अधिवेशन में एक अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम तैयार किया गया। इस कार्यक्रम में इस बात पर बल दिया गया कि बुजुर्ग-जनों को आर्थिक सहायता देने के साथ ही उन्हें सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध करा दी जाए। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा बुजुर्ग-जनों कों रोगों से सम्बंधित चिकित्सकीय सुविधाएं दी जाएं, सामाजिक गतिविधियों में बुजुर्ग पुरुषों और महिलाओं की सहभागिता बढ़ायी जाए तथा उनके आवास और पर्यावरण सम्बंधी सुविधाओं में सुधार किया जाए। यह घोषणा-पत्र अत्यधिक सैद्धांतिक था। इस कारण इस क्षेत्र में कोई व्यवहारिक प्रगति नहीं हो सकी। बुजुर्ग-जनों के प्रति सभी देशों में जागरूरता पैदा करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने सन् १९९९ को "बुजुर्ग लोगों का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष" घोषित किया। इसके द्वारा विभिन्न देशों से यह अपेक्षा की गयी कि वे ऐसे व्यवहारिक कार्यक्रम तैयार करें जिनके द्वारा बुजुर्ग-जनों की समस्याओं का समाधान किया जा सके।

संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव के अनुसार भारत में सामाजिक न्याय मंत्रालय द्वारा बुजुर्गों को सहायता देने का एक व्यापक कार्यक्रम तैयार किया गया। इसके अन्तर्गत बुजुर्ग अवस्था गृह स्थापित करने वाले, बुजुर्ग-जनों को सुविधाएं प्रदान करने वाले तथा बुजुर्गों के लिए सचल चिकित्सालय चलाने वाले ऐच्छिक संगठनों को वित्तीय सहायता देना आरंभ किया गया। समयान्तराल में इस कार्यक्रम का नाम "वृद्ध लोगों का समन्वित कार्यक्रय" घोषित कर दिया गया। इसके अनुसार बुजुर्गों को दी जाने वाली सभी तरह की सेवाओं के लिए ऐच्छिक संगठनों के व्यय का ९० प्रतिशत भाग सरकार सहन करती है, जबकि १० प्रतिशत हिस्सा ऐच्छिक संगठनों को अपने द्वारा जुटाना होता है। यदि बुजुर्गों को दी जाने वाली सुविधाएं नेहरू युवा केंद्र अथवा महाविद्यालयों में राष्ट्रीय सेवा योजना द्वारा संचालित होती हैं तो उनका पूरा व्यय सरकार द्वारा उठाया जाता है। सामाजिक न्याय मंत्रालय द्वारा स्वयं भी इस प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं जिससे बुजुर्ग-जनों की सहायता के लिए सामाजिक कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित किया जा सके।

यह न्यायोचित कदापि नहीं है कि जिस मानव शरीर का उसके पूर्वार्द्ध में उपयोग देश व समाज के सृजन या विकास के लिए किया गया हो उसके उतरार्द्ध में उसको तिरस्कृत कर दिया जाए। बुजुर्ग अवस्था को एक सम्मानपूर्ण स्थान देकर हम अपने पारिवारिक जीवन को और भी अधिक सुखद तथा सुंदर बना सकते हैं। बुजुर्ग हमें जीवन-दर्शन भी देते हैं और हमारा मार्गदर्शन भी करते हैं। अत: बुजुर्ग अवस्था समस्या नहीं बल्कि समस्याओं का समाधान है।



अनुभवों का खजाना व फालतू होने का अहसास

*-डॉ. श्याम सुंदर दीप्ति**

बुढ़ापे के बारे में कई तरह के अहसास हमें अपने आस-पास देखने-सुनने को मिलते हैं— 'बुढ़ाए-सठिआए', 'बुढ़ापा आए-फिर न जाए', 'गले में पड़ा ढोल'। कोई इस अवस्था को बीमारी बताता है तो कोई शरीर की सहज प्रक्रिया का हिस्सा। इस पड़ाव का एक अर्थ यह भी है कि बुजुर्ग यानि समझदार, अनुभवी।

बुजुर्ग अवस्था के लिए चिंता या चिन्तन, यह नहीं कि पहले नहीं था, परन्तु एक समस्या के तौर पर जिस तरह आज अनुभव हो रहा है, पहले इस तरह नहीं था। एक बच्चे के जन्म से लेकर, पूरे जीवन-काल पर नज़र डाली जाए तो बुढ़ापा इस निरन्तरता की कड़ी है। जिस तरह कहते हैं कि जन्म व मृत्यु एक ही सिक्के के दो विभिन्न पहलू हैं। अगर जन्म लेने के बाद बढ़ना-फूलना विकास है तो इसी गतिशीलता में ढलना भी प्राकृतिक कर्म है और इस तरह बुढ़ापा जिंदगी की अटल मंजिल है। प्रत्येक मनुष्य पर यह पड़ाव अवश्य आता है, यहां तक कि पेड़-पौधों पर भी।

इसके अतिरिक्त शारीरिक पहलू के साथ सामाजिक पहलू से देखें तो समाज सीखने का नाम है और उम्र व्यक्ति को सिखाती है और बुद्धिमान बनाती है। मनुष्य की अन्य श्रेष्ठताओं में से एक श्रेष्ठता यह भी है कि वो अपनी जिंदगी के अनुभव अपनी आने वाली पीढ़ी को दे सकता है। इस दृष्टि से बड़ी उम्र मनुष्य को अनुभवों से जोड़ती है और उसे इस पक्ष से अमीर बनाती है। मनुष्य के विकास के इतिहास में बुजुर्ग अवस्था का एक महत्व है कि बुजुर्ग अपनी प्राप्तियों को बांटता है और अपने अनुभव में आई गलतियों को भी इस रूप में बांटता है ताकि अगली पीढ़ी उनसे शिक्षा लेती हुई और अच्छी जिंदगी जी सके।

परंतु आज जब हम देख रहे हैं कि बुढ़ापे की उम्र की स्थिति उम्मीद से ज्यादा बुरी है। इसके कई कारण हो सकते हैं, जैसे कि कुछ दशक पूर्व संयुक्त परिवार थे। बच्चे और बूढ़े उन परिवारों में संभाले जाते थे। युवक दिन-प्रतिदिन के कार्य में व्यस्त रहते और बुजुर्ग बच्चों को संभालते और इस तरह स्वयं भी सक्रिय रहते। परन्तु आज कई परिवारों में बुजुर्गों को सही तरीके से नहीं संभाला जा रहा। जिस परिवार में ज्यादा बच्चे हैं वहां वे अधिक टूटते हुए दिखाई देते हैं। बच्चों के बंटवारे में वे स्वयं बंटते हुए प्रतीत होते हैं। जहां एक ही बेटा है, वह अपने कार्य के कारणों से मां-बाप से दूर है और बुजुर्ग नई जगह पर जाने के लिए तैयार नहीं हैं।

इससे अलग जो स्थिति बनी है वो यह है कि पिछली आधी सदी के मुकाबले बुजुर्गों की गिनती ज्यादा बढ़ी है। साठ वर्ष की आयु से अधिक उम्र के लोगों की गिनती सात-आठ करोड़ के लगभग है, जो कि और बढ़ने की संभावना है। दवाई व इलाज के पहलू से स्वास्थ्य विभाग में आए लोगों की औसतन आयु में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। हमारे देश में स्वतंत्रता के समय से लेकर आज तक इस उम्र में दो गुना बढ़ोत्तरी हुई है। विकसित देशों में औसतन आयु अस्सी के करीब है और हमारे यहां चौंसठ-पैंसठ है, पर

**९७, गुरु नानक ऐवीन्यू, मजीठा रोड, श्री अमृतसर। मो. ९८१५८-०८५०६*

फिर भी भारत की कुल आबादी के हिसाब से बुजुर्गों की गिनती दुनिया के मुकाबले बहुत ज्यादा है।

बुढ़ापे की दुर्गति का मुख्य कारण यह है कि बुजुर्ग शारीरिक, मानसिक और सामाजिक तौर पर अपने आप को स्वस्थ नहीं पा रहे हैं। शरीर की तो अपनी प्राकृतिक चाल है, जिसने समय के साथ ढलना है, परन्तु मानसिक और सामाजिक पहलू से टूट जाने व नकारा समझे जाने की हालत में उनमें जितनी भी शारीरिक क्षमता होती है उसे भी पूरी तरह क्रियान्वित नहीं कर पाते।

आंकड़े इकट्ठे करने की प्रक्रिया लगभग हर वर्ष होती है। हर एक क्षेत्र में प्राप्तियों की बात बार-बार चलती है, पर अफसोस इस बात का है कि इन आंकड़ों को सामने रख कर हमें कोई अच्छी योजना बनानी नहीं आती। हम अपने अध्ययन से कुछ ज्यादा नहीं सीख पाते। समस्या को रेखांकित कर लेते हैं पर उन पर गंभीरता से विचार नहीं करते। विचार करते भी हैं तो कार्यशील नहीं होते। हमें अपने देश की स्वास्थ्य स्थिति का आभास है। पिछले साठ सालों से हर एक नागरिक की आयु सैंतीस वर्ष से चौंसठ वर्ष हुई है। यह सब कुछ एक ही दिन में नहीं हुआ है। हमने यह उद्देश्य स्वास्थ्य नीतियों और कार्यक्रमों से प्राप्त किए हैं। हमने निरंतर विचार करके, योजनाएं बना कर मृत्यु-दर कम की है, बीमारियों पर काबू किया है जिसके परिणामस्वरूप औसतन आयु बढ़ी है। इसलिए हमें मालूम होना चाहिए कि बढ़ती आयु में क्या समस्याएं पैदा होंगी। आयु का बढ़ना अवश्य ही स्वास्थ्य विभाग की एक छलांग है, परंतु इस उम्र को अनदेखा करना भी एक भ्रम है। इसके लिए अगर हमारे पास अनुभवों की कमी है तो हमें विकसित देशों में बुजुर्गों की समस्याओं का अध्ययन करके लाभ उठा लेना चाहिए और उन्हें अपने देश के सामाजिक परिप्रेक्ष्य के अनुसार ढाल कर कोई कार्य करना चाहिए। परन्तु हमारी मानसिकता ऐसी है कि जब मुसीबत सिर पर आ पड़ती है तभी हम आंखें खोलते हैं। साथ ही हम यह भी महसूस करते हैं कि हमारी सभ्यता, संस्कृति व विरासत बहुत अमीर है, बुजुर्गों को मान-मर्यादा प्रदान करने वाली है। हमारे यहां सरवन पुत्र ही पैदा होते हैं। सभ्यता की अमीरी और उसके महत्व को समझना अच्छी रिवायत है। प्रत्येक संस्कृति में कुछ बातें अच्छी व अपनाने वाली होती हैं, परन्तु समय के साथ-साथ उन मूल्यों को मापना और अच्छे पहलुओं को पहचान कर उन्हें प्रचारना भी आवश्यक है। एक सभ्यता को बिलकुल नकारा कह कर किसी दूसरी को नहीं अपनाया जा सकता।

प्रश्न है बुजुर्गों की सही स्थिति को समझने और उसके अनुसार बुजुर्गों को अपनाने का और जिंदगी के आखिरी पहर को सुखमय बनाने का। यह नहीं कि सारा कसूर युवा पीढ़ी का है और इस संदर्भ में बुजुर्ग बिलकुल भी जिम्मेदार नहीं हैं। वास्तव में जब दोनों ने मिलकर रहना है तो आपसी सहयोग आवश्यक है।

बुढ़ापे की शारीरिक प्रक्रियाओं के तहत शरीर के सभी अंगों/प्रणालियों ने ढलना ही है, इनकी कार्यकुशलता में कमी आनी ही है। इनमें कई ऐसी हैं जिन्हें रोका तो नहीं जा सकता, पर कुछ समय के लिए उनसे बचाव संभव हो सकता है—आंखों का सफेद मोतिया, खून की नाड़ियों का सख्त होना और ब्लड प्रेशर का बढ़ना, हड्डियों का कमजोर होना व अन्य प्रणालियों का सुस्त होना आदि। किसी भी अंग के बारे में बात कर लें, परन्तु बुढ़ापे के पड़ाव को गतिशील रख कर किसी तरह की व्यस्तता बनाकर रखने से बेहतर जिंदगी गुजारी जा सकती है। इसके अतिरिक्त यह समझते हुए कि शरीर अब वैसा सरगर्म नहीं है, तो खाने-पीने की शैली में

आवश्यक बदलाव भी अच्छे परिणाम दे सकते हैं। भाव यह कि इस पड़ाव पर व्यक्ति अपनी जवानी के जोश में न आए। बुढ़ापे का मतलब ढलती जिंदगी और मौत के इंतजार का पड़ाव नहीं है।

मनुष्य के मानसिक तथा सामाजिक पहलू, विशेषत: बुजुर्गों में, शारीरिक स्वास्थ्य से भिन्न हैं। बुजुर्गों की मानसिकता अपने परिवार में इज्जत, बच्चों का सही ठिकाने पर पहुंचना और घरेलू कार्य को सुनिश्चित ढंग से संभालने में रहती है। अगर मानसिकता ठीक हो तो सामाजिक स्थिति खुद-ब-खुद ठीक रहती है। दूसरी तरफ जो व्यक्ति अपने सामाजिक परिप्रेक्ष्य में पहचान बनाता है, दोस्तों-पड़ोसियों व रिश्तेदारों के साथ ठीक सम्बंध बना कर रखता है, उसकी मानसिकता भी दुरुस्त रहती है।

शारीरिक-सामाजिक-मानसिक की त्रिवेणी मिलकर तब परेशानी बनाती है जब बच्चे मां-बाप की अनदेखी करते हैं। प्रकृति से कमजोर-दुर्बल, जल्दी-जल्दी बीमार होने से अपने आप को इलाज से भी दूर रखता है। यह भी हम जानते हैं कि बहुसंख्यक बुजुर्ग आर्थिक तौर पर बच्चों पर निर्भर करते हैं। शारीरिक पहलू से देखें तो बुजुर्गों को अपनी गिरफ्त में लेने वाली ज्यादातर बीमारियां लम्बे समय की होती हैं और लगभग सारी उम्र दवाइयों पर ही गुजारा करना पड़ता है और अगर आज दवाइयों की कीमतों पर नजर डालें तो एक और दुखदायी पहलू जुड़ जाता है। लगभग नब्बे प्रतिशत बुजुर्ग किसी भी तरह के आर्थिक पक्ष से शून्य हैं।

यूं तो स्वास्थ्य एक ऐसा पहलू है जिसके लिए सामाजिक सुरक्षा के तहत समाज को मिलकर संगठित रूप में आगे आना चाहिए, जो कि सरकार के माध्यम से आसानी से हो सकता है। हम स्वयं सोचें कि एक व्यक्ति जिसने देश, समाज व परिवार के लिए अपनी जिंदगी के साठ-पैंसठ साल लगाए, अपने कार्य और अनुभव से समाज को बेहतर बनाने में योगदान दिया, तो क्या उस देश-समाज का दायित्व नहीं कि वह बुजुर्ग के आखिरी पड़ाव के आठ-दस सालों के दौरान उसे संभाले? परिवार का दायित्व अपनी जगह है, परन्तु कई बार परिवार आर्थिक पहलू से इतने मजबूत नहीं होते। हमें यह भी मालूम है कि इन्हीं कमजोर आर्थिक स्थितियों में रहने वाले बुजुर्ग ही मंदी हालत से गुजरते हैं। भारत में लगभग तीन-चौथाई बुजुर्ग गांवों में रहते हैं और उनमें से आधे गरीबी-रेखा से नीचे हैं। बुजुर्गों में साठ साल से बड़ी पचास फीसदी औरतें विधवा हैं और उनके पास कोई सहारा नहीं।

इसके अतिरिक्त परिवार ही ऐसी जगह है जहां बुजुर्ग एक सुरक्षित व अपनत्व का जीवन जी सकते हैं। जो संभाल, भावनात्मक वातावरण, प्यार व अपनापन उन्हें परिवार में बच्चों से मिल सकता है वह और कहीं से नहीं मिल सकता। यह कोई बहुत कठिन कार्य भी नहीं है। दोनों वर्गों को कुछ एक सूक्ष्म बदलाव लाने और जीवन-शैली को तबदील कर, स्वस्थपूर्ण स्थिति पैदा करनी है।

सबसे पहले यह समझने की आवश्यकता है कि एक-दूसरे को नकारने व विरोध पैदा करने से कोई हल नहीं निकलेगा। हमें एक-दूसरे के स्वभाव व व्यवहार की वैज्ञानिक जानकारी हासिल करने के बाद दुरुस्त दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

बच्चों-नौजवानों को यह समझना चाहिए कि बुजुर्गों के पास अनुभव है जो कि उनके व्यक्तित्व का अंश है, जो कि उन्हीं के ही हिस्से आता है। वे इतिहास का एक पड़ाव हैं। साथ ही यह भी समझना चाहिए कि पुराना सब कुछ ही बेकार नहीं होता बल्कि पुराना बहुत अमूल्य भी होता है। अतीत और भविष्य आपस में जुड़े हैं। इनमें निरंतरता है और निरंतरता का नाम ही विकास है। दूसरी तरफ बुजुर्गों को बच्चों की

मानसिकता समझने में आसानी है क्योंकि वे उस पड़ाव में से गुजरे होते है। मात्र जरूरत है उन दिनों को याद करके विश्लेषण करने की।

अगर वे याद करें कि उन्हें भी अपने मां-बाप की नसीहतें अजीब लगती थीं, दकियानूसी लगती थीं, उसी दृष्टिकोण से उन्हें अपने बच्चों में एक भविष्य, एक नवीनता नज़र आनी चाहिए। बुजुर्गों को बच्चों में समाजिक विकास के प्रति नज़रिया समझना चाहिए। बुजुर्गों को परंपरा अच्छी लगती है और स्थिति को ज्यों का त्यों रखे रहने से संतुष्टि मिलती है, पर उन्हें समझना चाहिए कि ज्यों की त्यों स्थिति लम्बे समय तक जारी नहीं रह सकती। इसलिए उन्हें स्वयं तबदीली का हिस्सा बनते हुए सार्थक प्रत्यनों में अपना योगदान डालना चाहिए।

बुजुर्गों के अनुभवों को खजाना समझ कर संभालना चाहिए। कोई भी अनुभव बेकार नहीं होता। यहां तक कि बुरा अनुभव भी अच्छी राह के लिए दिशा-निर्देश होता है।



. . . अच्छे-बुरे के अध्ययन का समय *(पृष्ठ ५१ का शेष)*

कि आम बुजुर्ग लोगों के जीवन सारांश का खोज भरपूर अध्ययन करवाते जाएं और अच्छे-अच्छे मनोविज्ञान के द्वारा उन लेखों का विश्लेषण करवाकर नवयुवकों के मार्गदर्शन के लिये पाठ्यक्रम का भाग बना दिया जाये। बुढ़ापे के अध्ययन को यथार्थवादी विश्लेषण से जोड़ कर उसे युवकों के लिये सुरक्षित किया जाए और उसका सचित्र-रूप समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, रेडियो तथा टेलीविजन के कार्यक्रमों का भाग बनाया जाए। अनेकों उदाहरणों को छोड़ते हुये मैं नौजवानों को संदेश के तौर पर दो-तीन बुजुर्गों की बात अवश्य कहता चलूंगा।

प्रथम आर्थर विन्सन, जो लास-एंजीलस मैटरो से सौ साल की उम्र में रिटायर हुए। उन्होंने ७२ साल सर्विस की और पूरी सर्विस में केवल १९८८ में एक छुट्टी ली। वह भी उस दिन जब उनकी पत्नी गुजर गई थी और उसे दफनाया जाना था। दूसरे एन. निकसन कपूर हैं, जिन्होंने १०६ साल की उम्र में अमेरिकी चुनावों में वोट डाला और ओबामा ने अपने विजयी भाषण में उनका विशेष तौर पर नाम लेकर उनसे प्रेरणा लेने को कहा। तीसरे व्यक्ति हैं हैरी बर्नस्टीन, जिन्होंने २००७ में अपनी पहली पुस्तक 'इनविजिबल वाल' ९६ साल की उम्र में छपवाई। ये तीनों भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की मैंने आपको तीन मिसालें प्रेरणा के लिये दी हैं।

अंत में यह कि आदमी जो बचपन व जवानी में कर गया होता है और अब बुढ़ापे में उन तमाम बातों का विश्लेषण करे और अगर आदमी यह मंजूर करता है कि उसे वह नहीं करना चाहिए था तो यह भी बड़ी बहादुरी की बात है। हां, "नहीं करना चाहिए था।" क्या हम इस नतीजे को अपने बच्चों तक पहुंचा सकते हैं? अगर हां, तो समाज शुद्ध और स्वस्थ होगा। तब हम अकेले एक थे जिसे नहीं करना चाहिए था, मगर अब हम अनेक हो चुके हैं—पुत्र, पुत्रियां, बहुएं और उनके बच्चे। ज़रा सोचिए, कितने लोग शुद्ध होंगे हमारे एक प्रयास से! जीवन तराजू के दो पलड़ों में पड़ा है—शुद्ध हो जाना या अशुद्ध रह जाना।



बुजुर्ग समाज पर बोझ नहीं हैं!

-डॉ. मीना रानी*

समय परिवर्तनशील है और बदलते परिवेश के साथ मानवीय मान्यताएं भी तथाकथित परिवर्तित होने लगी हैं। इस परिवर्तित परिवेश का रूप इतना भयावह एवं क्रूर हो गया है कि संस्कृति की मूल परंपरा की धज्जियां उड़ गई हैं, समस्त सामाजिक व्यवस्था चरमरा उठी है।

गत वर्षों से भारत निरंतर विध्वंस की ओर अग्रसर हो रहा है। भारतीय समाज की मूल परंपरा, संस्कृति व सभ्यता गिरावट की ओर उन्मुख हो रही है। संयुक्त परिवार-प्रणाली तो मानो नाटकों, फिल्मों में ही देखने को रह गई है। व्यवहारिक रूप में तो उसकी कल्पना भी नितांत असम्भव-सी प्रतीत होती है। संयुक्त परिवार प्रणाली का संचालक एक वृद्ध व्यक्ति होता था और सभी पारिवारिक सदस्य उसके आदेश का पालन करते थे। फलतः परिवार एक इकाई में बंधा रहता था। किन्तु जैसे-जैसे युग और परिस्थितियों ने मुंह फेरा वैसे ही संयुक्त परिवार प्रणाली और उसके मूल्य का भी अवमूल्यन होने लगा। जहां घर का मुखिया वृद्ध व्यक्ति होता था वहीं उन्हें अब घर के एक कोने में स्थान दिया जाने लगा है।

पाश्चात्य सभ्यता की 'कमाओ, खाओ और मौज उड़ाओ' की प्रवृत्ति ने भारतीय समाज-प्रणाली और जीवन-पद्धति को सर्वथा एकल बना दिया है। आज 'मैं' प्रधान हो गयी है और परोपकार की भावना को तिलांजलि दी जा रही है। स्वयं-हित और अहित के अलावा अन्य कोई रिश्ता शेष नहीं रह गया है। स्वार्थ आज सर्वोपरि है। इसका विकट प्रमाण हमारे समक्ष प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है, जिसका सबसे ज्यादा संताप बुजुर्ग वर्ग झेल रहा है। उन्हें आज अवैध घोषित कर दिया गया है। आज बहू और बेटा ही घर के असली मालिक बन बैठे हैं। माता-पिता का जीवन-अनुभव उनके लिए मात्र पिछड़ापन है।

वर्तमान जीवन-व्यवस्था कृत्रिम हो गई है। हरेक व्यक्ति ने सभ्यता का मात्र मुखौटा पहना हुआ है, लेकिन वास्तविकता कुछ और ही है। आधुनिकता की होड़ में बूढ़े मां-बाप को फालतू सामान की तरह छिपाकर रखा जाता है। उनके लिए एक चारपाई का स्थान भी घर में मुश्किल से हो पाता है। वृद्ध मां-बाप अपने बेटे-बहुओं की नफरत भरी जलती-कोसती कुटिल दृष्टि जो पल-पल उन्हें छेदती रहती है, को सहने के लिए बाध्य हैं।

रहन-सहन तो दूर की बात, उन बेचारों की हसरत भरी आंखें दो वक्त का भोजन पाने के लिए भी तरसती रहती हैं। आज के कमाऊ बेटा-बहू के पास उनको संभालने या उनको सही ढंग से खाना खिलाने का समय ही नहीं होता। इसलिए मजबूरीवश उन्हें रूखी-सूखी दो रोटियां थाली में पटक

*गांव व डाक बागड़ियां, तहसील मलेरकोटला, जिला संगरूर-१४८२०४ (पंजाब)

दी जाती हैं, चूंकि उनका मानना है कि उन्होंने अपनी सारी जिंदगी जी ली है, अब बढ़िया-बढ़िया खाने खाकर वे कौन-सा हल चलाएंगे! वे भूल जाते हैं कि कभी उनको खाना खिलाने के लिए मां-बाप ने कितने मनोहार किए होंगे, कितनी विपदाएं झेलकर उनके लिए सुविधाएं मुहैया करवाई होंगी, पर उनके लिए ये सारी बात केवल उनका 'फर्ज' थीं। कितना आश्चर्य है कि एक मां-बाप अपने बच्चों का लालन-पालन एक ही समय में कितने प्यार-दुलार से करते हैं, लेकिन वही दो से चार या चार से आठ या अधिक हुए लोग एक मां-बाप को संभालने में असमर्थ रहते हैं। इससे बड़ी जीवन की विडम्बना और क्या हो सकती है?

बुजुर्गों का आदर-सम्मान बीते समय की बात बनकर रह गया है। उनका जीवन अपनों ही के कारण अति दुष्कर हो गया है और वे स्वयं की 'जिंदा लाश' ढोते, अश्रुओं में विगलित जीवन-यापन करने को बाध्य हैं, जिसमें न कोई उमंग है, न कोई तरंग है।

घर-गृहस्थी के निरंतर विघटन से घर युद्ध-स्थल बनकर रह गया है। अधिकारों की भावना ने फर्ज की भावना को दबोच लिया है। फलतः इसका खामियाजा भुगतने के लिए बुजुर्ग ही आड़े आते हैं। उन्हें अपनी आंखों के सामने ही अपने द्वारा तिनका-तिनका जोड़कर बनाए घर को एकदम टूटते हुए देखना पड़ता है। उनकी जुबान तो चाहे यह वीभत्स दृश्य देखकर मौन रहती है किन्तु अंदर ही अंदर वे पल-पल मरते रहते हैं। उनकी विवशता और पीड़ा का न तो किसी को अहसास होता है और न ही उनकी भावनाओं को समझने की आवश्यकता।

तुलना करके देखिए, आज की परिवार-प्रणाली और पहले की परिवार-प्रणाली की, परिणाम यही मिलेगा कि आज की मुश्किलें पहले की मुश्किलों से ज्यादा भयावह हैं।

बुजुर्गों की अपेक्षा करना एक सघन छायादार पेड़ की छाया से स्वयं को जान-बूझकर वंचित करना है, नन्हें-नन्हें से मासूम बच्चों से उनके बचपन को छीनना है, चूंकि आज की कुव्यवस्था का अधिक शिकार नन्हें बच्चे ही हो रहे हैं। वे रिश्तों के मोहताज बनकर जीवन जीते हैं। दादी की ममता से मरहूम वे 'क्रैच' में समय बिताने को बाध्य हैं। उनके लिए उनके 'आधुनिक मम्मी-पापा' के पास समय ही नहीं है। वे वात्सल्य भरे वरद हाथों की शीतल छाया के सुख से वंचित ही रह जाते हैं।

आधुनिक संतति के इस व्यवहार के कारण बूढ़े माता-पिता का जीवन उन्हें भार लगने लगा है। अपनी जिंदा लाश को कंधों पर लिए वे निराशा के गहरे अन्धकार में खो जाते हैं और अंततः एक बूंद पानी के लिए तरसते हुए वे परमात्मा को प्रिय हो जाते हैं या बेघर करके फालतू सामान की तरह घर से दरकिनार कर दिए जाते हैं व एकांकी, असहाय और नियक्षित स्थिति में घिसट-घिसटकर जिंदगी गुजारने के लिए छोड़ दिए जाते हैं। आज की पीढ़ी के लिए उनके बुजुर्ग बरदाश्त और सहनशीलता के स्तर से परे हैं।

अतः बहुत शर्म की बात है कि आज का मानव अपराधबोध की भावना से दूर होता जा रहा है। परिवर्तन आवश्यक है किन्तु परिवर्तन के नाम पर और आधुनिकता के नाम पर जीवन-मूल्यों को तिलांजलि देना कहां तक

उचित है? बुजुर्ग हमारे समाज की अमूल्य धरोहर हैं, हमारे समाज का अनिवार्य अंग हैं, हमारी सभ्यता और संस्कृति की बुनियाद हैं। हमारा अस्तित्व उन्हीं से बरकरार है। उनके होने से हमारी प्रभुत्ता और गरिमा को कोई ठेस नहीं पहुंचती है अपितु समाज में हम सम्मान के ही भागीदार बनते हैं। समाज को इस भयानक क्रूर स्थिति से निजात दिलाने के लिए आवश्यकता है मानसिकता में बदलाव लाने की। इस जिम्मेदारी को घर की संचालिका स्त्री बहुत अच्छे ढंग से निभा सकती है। नारी चाहे सदैव प्रताड़ित रही है किन्तु सभ्यता, संस्कृति और परम्पराएं उसी के कारण सुरक्षित हैं। वे घर में दो भिन्न-भिन्न विचारों वाली पीढ़ियों में सामंजस्य पैदा कर भीतर के अन्तराल को खत्म कर सकती है तथा बुजुर्ग वर्ग को चैन और सुकून भरा जीवन दे सकती है और यह बिलकुल सच है कि अगर आज हम अपने अभिभावकों का ध्यान नहीं रखेंगे, हम उनका तिरस्कार करेंगे, उनकी हालत बद से भी बदतर बनाएंगे तो इसका भयंकर परिणाम हमें निकट भविष्य में भुगतना पड़ेगा, चूंकि घर के बच्चे वही सीखेंगे जो घर में देखेंगे, घर के परिवेश का उन पर प्रभाव पड़ेगा। आखिर हमें अपने कुकृत्यों का मूल के साथ खामियाजा भुगतना होगा--तो सतर्क हो जाएं! हम अपने लिए फूलों का स्वर्ग निर्मित करना हैं या कांटों भरा नरक? फैसला अब हमारे हाथ में है।



अनमोल धरोहर

मां-बाप बोझ नहीं हम पर, इस बात का कर लो ध्यान!
मां-बाप न हों तो यह जीवन, शून्य, नीरस और बेनाम।
जितना सम्मान करोगे उनका, बदले में उतना पाओगे।
तिरस्कार करोगे जो उनका, तो भला अपने बच्चों से क्या पाओगे?
मत समझो उनको बोझ तुम, वे तो अनमोल खजाना हैं।
परमात्मा का है हाथ जिस पर, उसने ही इस बात को जाना है।
कर लो चित्त लगाकर सेवा उनकी, जीवन सुखमय हो जाएगा।
नहीं रहेगी कमी किसी चीज की, घर खुशियों से भर जाएगा।
बुढ़ापा भी तो बचपन की तरह है, फिर क्यों उनको दुत्कारते हो?
क्या उन्होंने तुमको कभी ठुकराया है, जिन्हें आज घर से निकालते हो?
दुनिया वालो! होश करो, मत अपने ही हाथों से लुटो।
मां-बाप अनमोल धन है, दोनों हाथों से बटोर लो।
फिर परमात्मा आप उतरकर आपके घर आएगा।
'सरवन' की तरह तुम्हारा भी नाम अमर हो जाएगा।



क्यों आ रहा है बुजुर्गों के स्वभाव में कड़वापन?

*-डॉ. दादूराम शर्मा**

"सन जैसे सफेद बाल, चिन्ता की लकीरों से भरा भाल, बिना दांत के पोपले गाल, ऊंचा सुनते कान, बुझी-बुझी-सी निस्तेज आंखें, झुर्रियों भरा चेहरा, मोमियाती आवाज, झुकी कमर, हाथ की लाठी के बल से किसी तरह शरीर को घसीटते पैर", यही है जीवन की सान्ध्य वेला में खड़े और तिल-तिल कर मौत की अंधेरी रात की ओर बढ़ते बुजुर्ग की तस्वीर! इसे ही बोलचाल की भाषा में 'बूढ़ा' कहा जाता है। इस शब्द से उसके शारीरिक रूप में असमर्थ और शिथिलांग होने की ध्वनि निकलती है। बुजुर्ग या बूढ़े के लिए हिन्दी में तीन शब्द और हैं--(१) वृद्ध (२) सयाना और (३) बुड्ढा। 'वृद्ध' शब्द 'वृध' (वर्धते = बढ़ना, विकसित होना) धातु के साथ 'क्त' कृदन्त प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ है- वृद्धि को प्राप्त, पूर्ण विकसित या परिपक्व। इस तरह 'वृद्ध' शब्द पूर्णता को व्यंजित करता है। 'सयाना' शब्द सज्ञान से बना है, जिसका अर्थ है अनुभवी, सूझबूझ वाला, जिसमें जीवन और जगत की जटिल समस्याओं का समाधान करने की क्षमता विकसित हो चुकी हो। इन्हीं की शिक्षा या मार्गदर्शन को 'सयानों की सीख' कहा जाता है। 'वृद्ध' और 'सयाना' दोनों शब्द समानार्थक हैं। 'वृद्ध' या 'सयाने' वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए ही नहीं, भावी पीढ़ी के लिए भी अभिनंदनीय, अनुकरणीय और वंदनीय होते हैं। इन्हीं के पुरुषार्थ, अर्जन, ज्ञान, तप और त्याग ने मानवीय सभ्यता और संस्कृति का उत्तरोत्तर उन्नयन किया है।

'बूढ़ा' और 'बुड्ढा' 'वृद्ध' के ही तद्भव रूप हैं। 'बूढ़ा' जहां आयु की अधिकता से उत्पन्न शारीरिक दुर्बलता और शिथिलांगता के कारण दया और सहानुभूति का पात्र होता है वहां 'बुड्ढा' अपनी स्वार्थ-परायणता, इन्द्रिय-लोलुपता, क्रूरता, धूर्तता और छल-फरेब में प्रवीणता के कारण उपेक्षा, निन्दा और अनादर का पात्र बन जाता है। यह बात अलग है कि सिक्ख धर्म में बाबा बुड्ढा जी जैसे महान व्यक्तित्व के कारण यह शब्द आज सम्मानीय भी बन चुका है। 'बूढ़ा' जहां परिवार और समाज के लिए सहन या वहन करने योग्य भार है तो 'बुड्ढा' दुर्वह भार और असहय अभिशाप। वृद्ध और सयाने मरकर भी कभी नहीं मरते। वे अपने कर्तृत्व से अमर हो जाते हैं। बूढ़ों की मृत्यु पर हम उन्हें अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि देते हैं। परंतु क्षमा करना यह भी माना जाता है कि अत्यधिक खर्राट बुड्ढों की मौत से समाज चैन की सांस लेता है।

माता-पिता अपनी संतानों को लाख तकलीफें सहकर भी लाड़-प्यार से पाल-पोस

*सेवानिवृत्त प्राध्यापक, महाराज बाग, भैरोगंज, सिवनी (म. प्र.)-४८०६६१, फोन : ०७६९२-२२२७९२

कर, पढ़ा-लिखा कर बड़ा करते हैं, योग्य बनाते हैं और अपने पैरों पर खड़ा करते हैं, इस आशा से कि वे उनके बुढ़ापे का सहारा बनेंगे। किन्तु हाय रे दुर्भाग्य! वे इनकी पूर्णतः उपेक्षा करके अपने बीवी-बच्चों के संसार में खो जाते हैं। बूढ़े माता-पिता चीखते-चिल्लाते हैं, खीझते हैं, अपनी किसमत को रोते हैं और उद्विग्न होते हैं, प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हमें इस नारकीय जीवन से मुक्त करो। शरीर बोझ बन गया है, सारे अधिकार छिन गए हैं, उनका बोलना किसी को अच्छा नहीं लगता। वे कभी परिवार की आंखों के तारे थे, आज उनकी आंख की किरकिरी बन गये हैं। अपमान, उपेक्षा, झिड़की और प्रताड़ना! कितनी सहें? कहां तक सकें? फिर भी जीने की आशा पिण्ड नहीं छोड़ती :

अंगं गलितं पलितं मुण्डं, दशन विहीनं जातं तुण्डम्!

वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं, तदपिन मुंचत्याशा पिण्डम् !!

संतानों से प्राप्त उपेक्षा से बुजुर्गों के स्वभाव में कड़वापन या चिड़चिड़ापन आ जाता है, जो स्वाभाविक है।

जिन्होंने जीवन भर "मैं-मेरा, तू-तेरा" की साधना की है, वे बुढ़ापे में अत्यधिक अनुदार, स्वार्थपरायण और अपने धन-जन में बुरी तरह आसक्त हो जाते हैं और फलतः सबके तिरस्कार-भाजन बनते हैं। यदि हमने दुराचार-भ्रष्टाचार से अर्जित धन द्वारा अपने परिवार का भरण-पोषण किया है तो उसके रक्त में अच्छाई का प्रवाह और अपने प्रति कृतज्ञभाव खोजना व्यर्थ है। बबूल के पेड़ को रोपने और सींचने वाले को उसके कांटे और कड़वे-तीखे अभक्षणीय फल ही तो मिलेंगे न!

परमेश्वर ने प्रकृति के द्वारा ऐसी व्यवस्थाएं कर दी हैं जिनसे हमें शाश्वत ईश्वरीय विधान का सम्यक ज्ञान हो सके। बुढ़ापा भी उनमें से एक है। इसने जीवन और जगत की अस्थिरता के प्रति हमें सचेत कर रखा है। जो हमें मिले थे, बिछुड़ गए, जिनसे हम मिले थे, वे भी बिछुड़ते जा रहे हैं, जिन्हें हमने पाया है, हम उनसे बिछुड़ जाएंगे। हमारी सम्पूर्ण भौतिक उपलब्धियां भी हमारे लिए नहीं रह जाएंगी। यह शरीर भी कहां रहेगा? दूसरों की वृद्धावस्था अलार्म देकर, सीटी बजाकर सचेत करती है और स्वयं की वृद्धावस्था कान पकड़कर, चपत लगाकर हमारी नींद अथवा लापरवाही को तोड़ती है। फिर भी क्या हम पूरी तरह जाग पाते हैं अथवा सचेत हो पाते हैं?

सामान्यतः मानव-जीवन का अवसान काल 'बुढ़ापा' अभिशाप जान पड़ता है, जीवन की अभावमय और दुखमय परिणति--"**The Worst of life**", किन्तु अंग्रेजी का कवि ब्राउनिंग इसे "जीवन का श्रेष्ठ काल--**The Best of life**" बतलाते हुए कहता है--**"The best is yet to be, the last of life, for which the first was made."** (जीवन का अंतिम और सर्वश्रेष्ठ काल अर्थात् वृद्धावस्था अभी आने को है, जिसकी तैयारी समग्र पूर्व जीवन में अर्थात् बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था तक की जाती है।)

शरीर दो तरह के होते हैं--एक तो यह स्थूल भौतिक शरीर, जो जन्म लेता है और मर जाता है और दूसरा है, सूक्ष्म यश: शरीर जो अविनाशी है। माता-पिता से हमें भौतिक शरीर मिलता है, उन्हीं की कृपा से हम जन्मते, पलते-बढ़ते और शिक्षा पाकर योग्य बनते हैं। अत: उनका हम पर ऐसा ऋण है जिससे हम कभी उऋण नहीं हो सकते; ऐसा उपकार है उनका, जिसका प्रत्युपकार हम अनेक जन्मों में भी नहीं कर सकते। उनकी सेवा और भक्ति परमात्मा की अराधना और भक्ति के तुल्य है। उनसे प्राप्त यह मानव शरीर साधनधाम और मोक्ष का द्वार है। यह हमें कर्म करने के लिए ही मिला है। किन्तु हमें ध्यान रखना है कि अनित्य सांसारिक भोग-साधनों को जुटाने और भोगों को भोगने में ही हम अपना मानव-जीवन व्यर्थ न गंवा दें। हम धनादि को साधन मात्र मानें और उतना ही संचित करें जितना जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक है। बेशक कभी-कभी सुख-सुविधाओं का भी लुत्फ लें, फिर भी उन पर पूर्णत: निर्भर ही न होने लगें। उनकी असारता का अनुभव भी करें। उनमें हमारी आसक्ति न हो और हो भी तो धीरे-धीरे समाप्त होती जाए! भक्त कबीर जी मानव को इस नश्वर देह के साज-संवार से बाज आने और परमात्मा से लौ लगाने की प्रेरणा दे रहे हैं :

कारनि कौन संवारे देहा?
यहु तन जारि बरि हुवै बेहा।
चोबा चंदन चरचत अंगा, सो तन जरत काठ के संगा।
बहुत जतन करि देह सुच्याई, अगिनि दहै कै जम्बुक खाई!
जा सिरि रचि-रचि बांधत पागा, ता सिरि चंच सों मारत कागा।
कह कबीर तन झूण भाई, केवल राम रहौ ल्यौ लाई।

इस संसार को और इसके सभी प्राणियों को परमात्मा का रूप मानकर उनकी सेवा में अपने जीवन को समर्पित कर देना ही मानव-जीवन की सार्थकता है, इसी से मानव को अमर यश: शरीर मिलता है। अत: हम हमेशा ध्यान रखें कि इस अनश्वर यश: शरीर की प्राप्ति के साधन भौतिक शरीर को जन्म देने वाले माता-पिता हमसे सदैव प्रसन्न रहें और अपना आशीर्वाद हमें देते रहें। वृद्ध गुरु-जन अर्थात् माता-पिता के माता-पिता तो हमारे लिए दोगुने वन्दनीय हैं, जिनके चरण-स्पर्श से हमारा मस्तक धन्य हो जाता है और आशीर्वाद पाकर जीवन कृतार्थ। किन्तु वर्तमान भारतीय समाज का दुर्भाग्य ही कहिए कि आधुनिक शिक्षा प्राप्त और पश्चिमी भोगवादी सभ्यता के रंग में रंगे हमारे विवाहित युवक-युवतियों की वृद्धों के हस्तक्षेप से मुक्त स्वतंत्र-स्वच्छन्द जीवन जीने की ललक, आजीविका के लिए घर छोड़ने की बाध्यता और परिवार के सदस्यों में परस्पर समायोजन न हो पाने के कारण हमारे संयुक्त परिवार बिखर रहे हैं, जिसके कारण सबसे अधिक असहाय और असुरक्षित हो रहे हैं, हमारे बुजुर्ग जिससे उनके स्वभाव में कड़वाहट और चिड़चिड़ापन आ रहा है।

वृद्ध-जन यदि परिवार में रहते हैं तो

शिशुओं के पालन-पोषण, संरक्षण, संबर्धन और व्यक्तित्व-विकास में वांछनीय सहयोग मिलता रहता है, बेटे-बहुएं भी निश्चिंत होकर जीविको-पार्जन और घर-गृहस्थी के कार्यों में लगे रहते हैं और समय-समय पर उन्हें उनका आवश्यक परामर्श तथा अमूल्य मार्गदर्शन भी मिलता रहता है। इस तरह वृद्ध परिवार के लिए व्यर्थ और अवांछनीय बोझ नहीं अपितु प्रभु-कृपा से प्राप्त वांछनीय वरदान और छत्र-छाया होते हैं।

वृद्ध तीन प्रकार के होते हैं--(१)वयोवृद्ध (२) ज्ञानवृद्ध और (३) तपोवृद्ध। वयोवृद्ध पर विस्तार से प्रकाश डाला जा चुका है। दूसरे प्रकार के वृद्ध ज्ञानवृद्ध होते हैं। इन्हें 'सयाने' (सज्ञान) भी कहा जाता है, जिन्होंने अपने दीर्घ जीवन में जागतिक भोगों की अनित्यता और असारता का व्यवहारिक अनुभव करके वास्तविक ज्ञान पाया है। अवस्था बढ़ने के साथ-साथ जिनके दृष्टिकोण और व्यवहार अनुदिन व्यापक और उद्धार होते रहे हैं, जो "यह अपना है अथवा पराया है" की संकीर्ण मवोवृत्ति से ऊपर उठकर "सारी दुनिया को परिवार मानने" की उच्च-उदात्त भूमा (विस्तृत क्षेम) का वरण कर चुके हैं, वे 'ज्ञानवृद्ध" हैं। "अनुभववृद्ध" भी इसी के अंतर्गत आते हैं। ज्ञानवृद्ध सारे संसार के माता-पिता और संरक्षक हैं। उनका जीवन समष्टि-कल्याण के लिए समर्पित होता है। उनके लिए अवस्था की कोई सीमा नहीं होती। श्री गुरु नानक देव जी, श्री गुरु अमरदास जी, श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी, श्री विवेकानन्द जी जैसे महामानव ज्ञानवृद्ध होकर संसार के लिए ज्योति-स्तम्भ बन गए।

ज्ञान-वृद्धों ने ही विश्व में मानवता का उन्मेष किया है। भक्त सूरदास जी, भक्त कबीर जी, भक्त रविदास जी जैसे महात्मा तथा भक्त इसी कोटि में आते हैं। हम में और इनमें इतना ही फर्क है कि हम अपने अतिरिक्त कुछ सोच ही नहीं पाते और ये अपने लिए कुछ सोचते ही नहीं। हमारी दृष्टि स्थूल भोगवादी है और इनकी आध्यात्मिक। हमारा लक्ष्य स्वार्थ है और इनका लोक-कल्याण। ये सभी के हैं और सब इनके हैं।

प्राचीन भारतीय "वर्णाश्रम व्यवस्था" में ज्ञान की सिद्धि के लिए 'वानप्रस्थ आश्रम' था। वानप्रस्थी 'ऋषि' कहलाते थे। ऋषि दधीचि, बाल्मीकि, व्यास आदि प्राचीन काल के वाणप्रस्थी, मध्य काल या सन्त काल के श्री गुरु नानक देव जी, भक्त कबीर जी, भक्त रविदास जी, भक्त तुलसीदास जी आदि घर-गृहस्थी चलाते हुए भी ऐसे महान पुरुष थे जिन्होंने अपने त्याग और दिव्य ज्ञान से जगत को जगमगा दिया है।

जिन्होंने ज्ञान की अग्नि से अपने समस्त राग-द्वेषों और वासनाओं को जला डाला है, इन्द्रियां जिनकी वशषर्ती हैं, वे "तपोवृद्ध" हैं। तपो-वृद्धता सम्पूर्ण सांसारिक कर्त्तव्यों को पूर्ण कर चुकने के बाद की स्थिति है। ऊपर जिन ज्ञानवृद्धों के नाम गिनाए गए हैं वे आत्म-कल्याण के साथ-साथ जन-कल्याण में भी संलग्न रहे हैं।

यौवन वृद्धावस्था की पूर्व तैयारी है। आज हम प्रमादी हो गए हैं। टालना हमारा स्वभाव बन गया है। यौवन में हम प्राय:

अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करते हैं, कदाचार और दुराचार में हमें आनंद आता है, सदाचार और सत्कर्मों को बुढ़ापे के लिए टालते रहते हैं। टालते-टालते एक दिन मौत आकर हमें दबोच लेती है और संसार में हम अपनी तिरस्करणीय और दुखद स्मृति छोड़ जाते हैं। तब लोग हमारी याद इस रूप में करते हैं कि "अमुक व्यक्ति बड़ा ही दुष्ट और उत्पाती था। जब तक जिया, किसी को चैन की सांस न लेने दी!" इसीलिए मनुष्य स्वयं को अजर-अमर मानकर विद्यार्जन और धनोपार्जन करे और मौत सिर पर मंडरा रही है, ऐसे सोच कर निरंतर धर्मचरण में लगा रहे।

तो भक्त कबीर जी के शब्दों में :

कबीरा गरब न कीजिए काल गहे कर केश।
ना जाने कित मारसी, क्या घर क्या परदेस।

यदि हम जवानी में दुराचारी रहे हैं तो बुढ़ापे में कमजोर होकर हम दूसरों के तानों और उलाहनों के शिकार होते हैं, सम्मान और श्रद्धा के पात्र नहीं बन सकते, हां, दया के पात्र हो सकते हैं।

वृद्ध का जीवन वस्तुत: एक पके हुए फल की तरह है जिसमें स्नेह की मधुरता और यथार्थ अनुभव का पोषक तत्व भी है। उसके ज्ञान और अनुभव के बीजों में अनेक वृक्षों को उत्पन्न करने की शक्ति होती है। अकर्मण्यता या निठल्लेपन में अपने जीवन के इस बहुमूल्य समय को गंवाना उचित नहीं। बहुधा बूढ़े हो जाने पर लोग कहते हैं "भइया! हमने बहुत कुछ कर लिया, बहुत दुनिया देख ली। अब क्या? आज मरे, कल तीसरा है। शरीर कमजोर हो गया है, आंखों की ज्योति जाती रही। कोई हमारी सुनता नहीं! जो होता है हो! हमें तो अब आराम करना है!" यह निराशावादी दृष्टिकोण है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि महान लोगों ने वृद्धावस्था में भी अपने जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण और महान कार्य किए हैं। भारतीय गणतंत्र में रियासतों के विलीनीकरण और अन्य राष्ट्रीय समस्याओं का स्थायी निराकरण इसी अवस्था में किया गया था। श्री गुरु अमरदास जी वृद्धावस्था में ही तीसरे गुरु के गौरव से विभूषित होकर सिक्ख धर्म के संरक्षक बने थे।

हम बुढ़ापे के लिए धन जोड़-जोड़ कर इसलिए रखते हैं कि जब हमारे हाथ-पैर नहीं चलेंगे तब हम बैठकर सुख से खा सकेंगे। उसी तरह अंतिम दिनों में सयाने और वृद्ध बनने के लिए हमें युवावस्था से ही प्रयत्नशील हो जाना चाहिए, बुड्ढे बनकर तो हम अपमानित और तिरस्कृत ही होंगे। हमारा जीवन हमारे और हमारी संतति के लिए भार बन जाएगा। परमात्मा करे! हम ऐसे बुजुर्ग बनें कि लोग हमें सम्मानीय नज़रों से देखें तथा हमारे ज्ञान और अनुभव का प्रकाश औरों के जीवन-पथ को प्रकाशित करे! तब कैसा चिड़चिड़ापन, कैसी कड़वाहट?



बुजुर्ग क्यों उदास हैं?

-डॉ. अन्जूमन*

आज के समय में जब हमारे समाज में हर काम पैसे, ईर्ष्या, कपट से बहुत ही जल्दी-जल्दी हो रहा है वहां समाज का एक बहुत बड़ा अंग अर्थात् हमारे अपने बड़े बुजुर्ग हमसे बहुत दूर होते जा रहे हैं, जैसे कि वे हमारे लिए कुछ भी न हों। घर में कोई पुरानी वस्तु की तरह इनकी जिंदगी बन कर रह गई है, जबकि ये लोग हमारी जिन्दगी का एक अहम हिस्सा हैं। हम सभी ने एक दिन ऐसी ही 'पुरानी वस्तु' बन कर रह जाना है। यदि हम अपनी आने वाली जिंदगी को जिंदादिली से जीना चाहते हैं तो अभी से इन बुजुर्गों का आशीर्वाद लें। हमें इनको अपने छोटे-छोटे कामों, मनोरंजन, आना-जाना, बच्चों के पास बिठाना, उनसे बातें करना आदि जैसे काम करवा कर इनको भी, जो घर इनका ही है, उसका हिस्सा बनाना चाहिए।

बुजुर्गों के उदासीन रहने के कई कारण हैं। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती जाती है जिंदगी के काम भी बढ़ते जाते हैं। पुत्र बड़े हो जाते हैं, उनकी शादी, फिर बच्चे, बच्चों का स्कूल, कॉलेज और उनकी नौकरी आदि। व्यस्तता बढ़ने के कारण पुत्र-बहू इन बुजुर्गों को उतना समय नहीं दे पाते जितना देना चाहिए। ये लोग घर के किसी कोने में चुपचाप पड़े रहते हैं। कुछ खाने को दे दिया तो खा लिया। घर के किसी भी सदस्य से बात करने को भी तरस जाते हैं।

वे बैठे-बैठे हरेक सदस्य के बारे में सोचते रहते हैं। यदि कोई बीमार हो जाए, उनको चिन्ता हो जाती है, लेकिन यदि ये बीमार हो जाएं तो इनकी कोई खास चिन्ता नहीं करता। दुख की एक और बात यह है कि इस अवस्था तक पहुंचते-पहुंचते इनके शारीरिक अंग तो साथ छोड़ जाते हैं, साथ ही इनके हमसफर भी छोड़ जाते हैं और ये बिलकुल अकेले रह जाते हैं।

बहुएं समय पर खाना नहीं देतीं, कपड़े धो या धुलवा कर नहीं देतीं, साफ बिस्तर, कमरा या बाथरूम आदि भी नहीं मिलता। जो घर इन्होंने मेहनत से बनाया होता है बच्चों के साथ रहने के लिए, अक्सर उसी घर से बेघर कर दिये जाते हैं।

भारतीय गांवों में तो फिर भी बुजुर्गों की कुछ कदर है, परन्तु शहरों में इनका कोई भी वाली-वारिस नहीं। इनके दुख कोई दूर नहीं करता, क्योंकि कोई सुनता ही नहीं तो दूर कैसे करेगा! अपना और अपने बच्चों का भविष्य बनाने की लगी होती है। बुजुर्ग इन पर बोझ बन जाते हैं। ऐसी कई बातें हैं जिनके कारण ये बुजुर्ग समाज से उदासीन होने पर मजबूर हो जाते हैं और कोई इनके पास रास्ता भी नहीं होता।

यदि हम सब जिनके घरों में हमारे अपने बड़े बुजुर्ग हैं, वे थोड़ी-सी भी कोशिश करें तो हमारे बड़े बुजुर्ग सदा खुश रह सकते

*W/o S. Baljit Singh, Vill. Dhoulpur, P.O. Talwandi Lal Singh, Teh. Batala, Distt. Gurdaspur (Punjab)

हैं। इनको इज्जत प्यारी होती है। दिन में जब भी इनको खाना या चाय आदि कुछ भी परोस कर दें तो थाली चुपचाप रखने की बजाए साथ में इतना— "बीजी! खाना ले लो" या "पिता जी/बापू जी! खाना खा लो" कहने में कोई समय नष्ट नहीं होता और वे इतने में ही खुश हो जाते हैं। जब कपड़े समेटने लगो तो कहो, "बीजी आ जाएं, साथ में चाय पीते हैं और कपड़े भी समेट लेते हैं।" रात के समय सोने से पहले बच्चों को देखने के बाद अपने बड़ों को भी पूछ लें कि "बीजी या डैडी जी! आपको कुछ चाहिए तो नहीं!" इतना कहने में हमारा कुछ भी नहीं घिस जाएगा और हमारे बड़े हमें इतने आशीर्वाद देंगे जो कि किस्मत वालों को ही नसीब होते हैं। हमारे बड़े समझते हैं कि हमारे पास इतना समय नहीं कि हम हर समय उनके पास बैठे रहें, परन्तु जन्म से लेकर पालने-पोसने तक का सारा समय लगाएं जो उन्होंने हमें दिया और आगे हम अपने बच्चों से भी जितना समय चाहते हैं, कृप्या करके उतना समय अपने बड़ों को जरूर दीजिए।

इस महंगाई के युग में हरेक की सभी इच्छाएं पूरी करना बहुत मुश्किल हो गया है। घरों में दाल-रोटी ही बड़ी मुश्किल से चल रही है तो ऐसी महंगाई में दवाइयों और बच्चों के पालन-पोषण के समय में बुजुर्गों को अपने बच्चों की परेशानियों को समझते हुए, उनको इस कठिनाई भरे समय से निकलने में सहायता करनी चाहिए, क्योंकि :

आसान है जन्म लेना, मुश्किल है मगर जीना।
जीने के नाम से ही, बहता है पसीना।

मैं पूर्ण नम्रता के साथ अपने बड़ों बुजुर्गों के लिए भी कुछ कहना चाहूंगी कि अक्सर हम अपनी बहुओं को उनकी मर्जी से घर नहीं चलाने देते। सास हमेशा कहेगी कि "मैं तो इतनी सफाई रखती थी, इतने पैसों से ही घर चलाती थी, खुद सारा काम करती थी, नौकर नहीं रखती थी, अपने कपड़े खुद सिलती थी, बच्चों को नहीं डांटती थी, . . .।" ऐसी कई बातें हैं जो सास बहू को सुनाती रहती है। पहले-पहले तो बहू चुपचाप सुनती रहती है, परन्तु फिर उसके सब्र का बांध टूट जाता है और वही बहू आगे से जवाब देना शुरू कर देती है। धीरे-धीरे जब सास अधिक बूढ़ी हो जाती है, चलने-फिरने के काबिल नहीं रहती तो फिर बहू मन में कहती है, "अब बैठ, देख और अकेली अपने मन में बातें कर!"

अगर हम शुरू से अपनी बहुओं से वैसा ही तालमेल बनाए रखें जैसा हम बाद में चाहते हैं तो मेरे विचारानुसार इतनी अधिक समस्या न आए जितनी अक्सर आ जाती है। यहां एक बात और कहना चाहूंगी कि बुजुर्ग सास के साथ ही ऐसा होता है, बुजुर्ग ससुर के साथ कम होता है। हम अपने परिवार में देखते हैं कि घर में कोई पति-पत्नी में छोटा-सा झगड़ा हो जाता है, पति काम पर चला गया और औरत सारा दिन उसी झगड़े के साथ जीती रही। शाम को जब पति वापिस आता है उसे उस झगड़े के बारे में कुछ भी याद नहीं होता। आते ही चाय मांगता है, लेकिन पत्नी तो सुबह वाले झगड़े के साथ चाय क्या पानी भी नहीं पूछना चाहती। आज यह हम सभी औरतों का हाल है। मर्दों से हमें यह सीखना चाहिए कि घरों के क्लेश को कैसे खत्म किया जाए। जो बात जिस समय हुई उसे वहीं खत्म कर, नया पल जिंदगी का

जीना चाहिए।

यही हाल घर में रह रही सास-बहू का हो जाता है। वे अपनी-अपनी बात छोड़ना ही नहीं चाहतीं। सास को अपने मुंह मियां मिट्ठू नहीं बनना चाहिए और बहू को, यदि वो ऐसे करती है तो समझाना चाहिए कि अब पहले वाला जमाना नहीं रहा। बच्चों की यूनीफार्म, किताबें तैयार करना, बस में चढ़ाना, घरों में पड़े मार्बल की सफाई, रसोई घर की सफाई, कपड़े धोने, समेटने, प्रेस करने, मेहमानों को संभालना आदि अनगिनत काम होते हैं और इतने कान होने पर भी सुसंस्कृत, सुशील नारी वही है जो घर के बड़े बुजुर्गों को भी अपनी जिंदगी में अपने बच्चों की तरफ हर पल शामिल रखे। जो बुजुर्ग अपना ज्यादा समय पाठ-पूजा में लगाते हैं उनका मन अधिक शांत और प्रसन्न रहता है। इसलिए अपने बड़े बुजुर्गों और उनके परिवार के सभी सदस्यों को यही अनुरोध है कि ध्यान रखें, किसी भी प्रकार से किसी को भी दिल दुखाने वाली बात न की जाए। यदि हम किसी को खुशी नहीं दे सकते को गम की पीड़ा भी न दें। ये सब हमें बनाने वाले हैं और इन्हें हमने अपने दिल में बसा कर ही रखना है। परमात्मा का नाम बड़े-बड़े दुखों को दूर करने वाला है। फिर यह नाम हमारा अकेलापन, उदासी भी दूर कर सकता है। अत: बड़े बुजुर्गों को अपना ज्यादा समय पाठ में लगाना चाहिए और परिवार के सभी सदस्यों को टोकने की बजाए समय की धारा को समझ उनके साथ चलना चाहिए।

ये सब बातें ख्याली नहीं हैं। मेरी नानी-सास हमारे साथ रहती हैं। बाकी काम तो चलो ठीक, जब वे मेरे कमरे में आती हैं तो हम इकट्ठे टी.वी. देखते हैं और मैं उनको टी.वी. पर चल रहे प्रोग्राम के बारे में भी समझाती हूं। फिर शाम को जब भी खाली समय हो हम इकट्ठे बैठते हैं, बातें करते हैं। मेरे बच्चे छोटे हैं, फिर भी सारे काम खत्म कर मैं उनके साथ उनको अच्छी लगने वाली बातें करती हूं। ऐसे ही सारा दिन निकल जाता है। सुबह जब उन्होंने नहाने जाना होता है तो उनके कपड़े बाथरूम में रख देती हूं। उतारे कपड़े धोने के लिए रखने के साथ-साथ अपने काम भी करती जाती हूं। मैंने उनसे पूछा कि "बीजी, क्या आप उदास रहते हो?" तो उन्होंने 'हां' कहा। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि उन्हें अपने पौत्रों की चिंता रहती है कि वे कब बड़े होंगे और नौकरी करेंगे। मैंने उनसे बस इतना ही कहा कि "बीजी आपके सोचने से, चिन्ता करने से कुछ नहीं होगा, आप बस उतना सोचें जो आप कर सकते हो। ज्यादा से ज्यादा समय उस परमात्मा के नाम-सिमरन में बिताया करो, फिर आप की उदासी कम होगी।" मेरे नानी जी को यह सुझाव ठीक लगा। अब वे अपने-आप में मस्त एवं मग्न रहते हैं। खाना खाने के बाद दिन में भी सोना, कभी बैठे रहना, फिर परमात्मा का नाम लेते रहना। इसी तरह से उनका सारा दिन निकल जाता है। उनकी उदासी कम हुई है। परमात्मा से निवेदन करती हूं कि ऐसी कृपा करें कि सारे बुजुर्ग अपने घरों में इज्जत और खुशी से रहें।



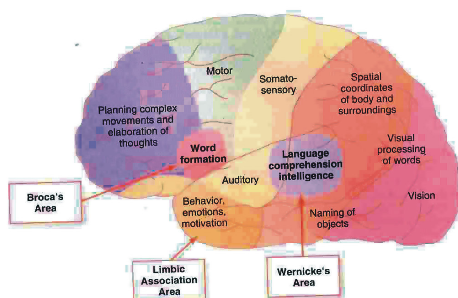
बुजुर्ग अवस्था में होने वाले रोग : सावधानियां एवं डॉक्टरी उपचार

*-डॉ. सविंदर सिंघ (एम. डी.)**

चाहे अभी मेरा डॉक्टरी प्रेक्टिस का तजुर्बा अवधि के हिसाब से अधिक व्यापक नहीं फिर भी अपनी अब तक की डॉक्टरी प्रेक्टिस में मैंने हजारों की संख्या में दिमाग के रोगी देखे-जांचे हैं और उनमें ७० प्रतिशत बुजुर्ग थे।

दिमाग की संरचना

दिमाग अथवा हमारा नर्वस सिस्टम अत्यंत जटिल है। इसमें होश, हंसना, रोना, लिखना, पढ़ना, सोचना-विचारना आदि सब कुछ रहस्यमयी ढंग से छुपा हुआ है। हमारे शरीर के ३५०० जीन्स का तीसरा भाग मात्र नर्वस सिस्टम को ही बनाता है। एक आम साधारण दिमाग १०० बिलियन **neurons** का बना हुआ है। यह कई मिलियन मील **axons** और **dendrites** का बना हुआ है। यह **neurons** एक **sheath** (जैसे बिजली की तारों पर प्लास्टिक चढ़ी होती है) के साथ कवर्ड होता है। यह **sheath** ही इन न्यूरोनों की रक्षा करती है। दिये गए चित्र



को देखकर हम अनुमान लगा सकते हैं कि दिमाग ही एक ऐसी वस्तु है जो शरीर में सर्वोपरि कहलवा सकती है और जहां सभी निर्णय लिये जाते हैं, पूरे करने के लिए आदेश दिये जाते हैं, कई बार बलपूर्वक लागू कराये जाते हैं। दिमाग की स्थिति बिलकुल राजधानी की भांति है। अत: दिमाग के सही रहने से ही आप सही हो नहीं तो शेष शरीर चाहे जितना भी ह्रष्ट-पुष्ट हो उसका आपको अधिक लाभ नहीं हो सकेगा।

दिमाग को ३५० से अधिक बीमारियां मात्र जीन्स के कारण होती हैं और १००० से कुछ कम **neurologic disorders-chromosol** के गलत स्थान पर होने के कारण होती हैं, जैसे **Dementia, cerebral a trophy** दिमाग का छोटा होना आदि। बहुत-सी बीमारियां सोडियम-पोटाशियम-कैलशियम के सही ढंग से पम्प न होने के कारण होती हैं, जैसे कि माईग्रेन, मिरगी, बहरापन, कुछ समय के लिए लकवा आदि। इसके अतिरिक्त बहुत-सी बीमारियां नर्व के **snaptic neurotransmitter** के परस्पर गलत कम्यूनिकेशन के कारण होती हैं, जैसे कि **parkinsonism** अथवा हाथों का हिलते रहना आदि।

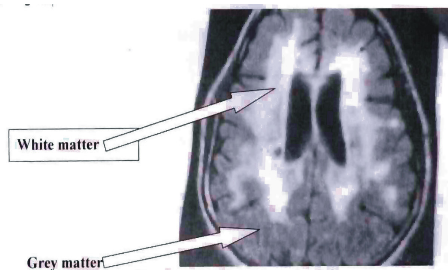
दिमाग के दो भाग होते हैं--एक दायां और एक बायां। दायां भाग शरीर के बायें भाग को कंट्रोल करता है। इसी प्रकार बायां भाग शरीर के दायें भाग को कंट्रोल करता है। अत:

*मैनेजिंग डायरेक्टर, गॉड केयर हास्पिटल, २२१, तेज नगर, मेन बाजार, सुलतानविंड रोड, श्री अमृतसर।

यदि दिमाग के बायें भाग में कोई कलॉट हो जाए या नाली फट जाए तो शरीर के दायें भाग के साथ-साथ जुबान काम करना कम कर देती है क्योंकि बोलने का सेंटर दिमाग की बायीं ओर के भाग में होता है।

इसी प्रकार हमारे दिमाग में एक सफेद भाग **(white matter)** और दूसरा भूरा भाग **(grey matter)** होता है। भूरा भाग में हमारे मुख्य सेंटर होते हैं या यूं कह लें कि शुरुआत यहां से ही होती है, जैसे हाथ, पांव, टांगें, बाजू, जुबान, आवाज़, आंख, घुटना आदि यहां से ही कंट्रोल होते हैं। फिर ये सभी चैनल सफेद भाग में जुड़ते हैं। फिर **Brain stem** के द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में जाते हैं। इसलिए यदि कोई ब्रेन हैम्रेज हो या कलॉट भूरा भाग में आये तो क्षति कम होती है, क्योंकि प्रकृति यहां से अन्य नये चैनल स्वत: बना लेती है जो सफेद भाग में मिल जाते हैं। जब भूरे भाग में नुक्स पड़ जाए तो व्यक्ति की पुन: आवाज निकलने लगती है या उसका एक ओर चलना आरंभ हो जाता है। परंतु यदि सफेद भाग में कोई नुक्स पड़ जाए तो मनुष्य फिर पूरा सही नहीं हो पाता और सदैव के लिए अपाहिज बन जाता है, क्योंकि यहां चैनलों का जोड़ होता है और प्रकृति अन्य जोड़ उत्पन्न नहीं करती।

दिमाग के दो मैटर



White Matter *(सफेद भाग)*

दिमाग के सफेद भाग में बुजुर्गों में परिवर्तन आता है। **M.R.I.** में सफेद प्रकार के छोटे-छोटे से दाग या निशान दिखाई देते हैं। जिनमें ये निशान पाये जाते हैं उनमें **Alzhermer** हो सकता है। परंतु यह पक्का है और देखा गया है कि **Dementia** के होने के चांस अधिक पाये जाते हैं।

सफेद भाग में यह परिवर्तन निम्नलिखित कारणों से आता है :

* ब्लड प्रेशर बढ़ने के कारण
* शूगर होने के कारण
* दिल का कोई अन्य नुक्स होने के कारण
* डी. एन. ए. सेलों की योग्यता को कम करने के कारण।

आओ, यह विचार करें कि बुजुर्ग जिन बीमारियों से पीड़ित रहते हैं वे इनसे कैसे बच सकते हैं और कैसे इस परिपक्व आयु में आनंद का अनुभव कर सकते हैं।

हाई ब्लड प्रेशर

नार्मल हाई ब्लड प्रेशर १२०/८० **mm hg** होता है। हाई ब्लड प्रेशर १४०/९० या इससे ऊपर में आता है। यदि आपको ब्लड प्रेशर १३० तक आता है तो आप ब्लड प्रेशर की परिधि/घेरे में आते हो। चूंकि बुजुर्ग अवस्था में रक्त की धमनियां सिकुड़ जाती हैं और फिर ब्लड का प्रेशर भी बढ़ जाता है। दिमाग में इन धमनियों में या तो कोई कत्था फंस जाता है या ये रक्त के तीव्र प्रवाह से फट जाती हैं।

यहां मैं अपने तजुर्बे में से यह बताता हूं कि लगभग ८० प्रतिशत बुजुर्ग हमारे देश में ब्लड प्रेशर इसलिए चेक नहीं कराते कि यदि उन्होंने चैक कराया तो डॉक्टर उनको टेस्टों, दवाइयों, परहेजों के चक्र में डाल देंगे। कई बार

देखते-सुनने में आता है कि बुजुर्गों को परिवार के सदस्य लक्षण देख कर ब्लड प्रेशर चेक कराने को बहुत कहते हैं परंतु वे किसी की सुनते ही नहीं। वे न परिवार के सदस्यों की सुनते हैं न ही डॉक्टर की। वास्तव में उनकी सोच यह होती है कि बच्चों के पैसे क्यों बर्बाद करने हैं। ऐसी सोच भले ही उनकी ओर से बच्चों के लिए हितकारी समझी जाती है परंतु वास्तव में ऐसा नहीं होता। इसके परिणाम अच्छे नहीं निकलते। माफ करना, बच्चों के थोड़े से पैसे बचाने की सोचते-सोचते ऐसे बुजुर्ग जब दिमाग की नाली फटने के कारण या कत्था या हार्ट अटैक के साथ किसी अस्पताल के आई सी यू में पड़े होते हैं तो उनको तो कोई पता नहीं लगता, चूंकि वे बेहोश पड़े होते हैं, परंतु इन्हीं बुजुर्गों के बच्चे ऐसी स्थिति में उपचार हेतु अपना सब कुछ दांव पर लगा देते हैं। मेरा अत्यंत सनम्र सुझाव है ऐसे बुजुर्गों को कि वे प्रारंभिक अवस्था में आवश्यक उपचार किये जाने से कदापि इंकार न करें। इसी में उनका अपना और उनके बच्चों अथवा समस्त परिवार का हित है। ऐसा न हो कि आप अपने बच्चों के दस, बीस, पचास अथवा सौ रुपये बचाते-बचाते उनके लाखों रुपये लगवा दें जो उनके पास भी न हों और जो वे ऋण उठा कर लगायें, उनके बाद उनके पुत्रों को ऋण उतारते-उतारते कई वर्ष लग जाएं।

हमारे समाज में कई बार पुत्र बुजुर्गों के इलाज पर इच्छा से खर्च नहीं करना चाहते परंतु उनको अपनी 'नाक' रखने के लिए ऐसा करना पड़ता है कि लोग क्या कहेंगे! अच्छा पुत्र है यह, जिसको माता-पिता ने जन्म दिया, पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया, अब यह इन पर पैसा लगाने से कन्नी कतराता है? कई बार बीमारी के जोरदार प्रहार से बुजुर्ग जान से बच जाते हैं परंतु उनका अपने शरीर पर अपना कंट्रोल नहीं रहता, टट्टी-पेशाब की बहुत बड़ी समस्या का सामना करना पड़ता है। जीवन नरक के समान बन जाता है।

जो कोमे में या कोमे से बाहर परंतु अपाहिज हो गए हैं उनका उपचार भी हो सकता है अर्थात् उचित डॉक्टरी इलाज का प्रयास करना चाहिए। जो इस अवस्था से बचे हुए हैं लेकिन जिनको ब्लड प्रेशर की बीमारी है उनको कुछ सावधानियां रखने की आवश्यकता है, वरना उनको हार्ट अटैक या ब्रेन हेमरेज या ब्रेन में कलॉट आना लगभग तय होता है। ये ऐसी स्थितियां हैं जिनका सामना होने पर बहुत धन लग जाता है। आई सी यू में वेंटीलेटर पर ले जाना पड़े तो प्रतिदिन का व्यय ६७०० रुपये या इससे ज्यादा है। दवाइयों, टेस्टों का व्यय शामिल करें तो बीस हजार एक दिन का। यदि ८-१० दिन रह गए तो डेढ़-दो लाख रुपये। ऐसी स्थिति का सामना करके नेक से नेक सपुत्र के मन में भी क्या यह न आयेगा कि बुजुर्ग को तब कहा था कि ब्लड प्रेशर की गोली खा लिया कर, तब मानता नहीं था? अब खुद भी दुखी हुआ और हमें भी कर्ज में फंसा गया!

यदि बुजुर्ग नहीं मानते तो बच्चों अथवा पुत्रों-पुत्रियों को आप साथ जाकर डॉक्टर से बुजुर्गों का ब्लड प्रेशर चेक कराना चाहिए, चूंकि १०० में से ८० बुजुर्गों का ब्लड प्रेशर बढ़ा हुआ ही निकलेगा। डॉक्टर से दवाई लिखाकर तथा लाकर बुजुर्ग को अपने हाथों से खिलाओ। ऐसा करने से दोहरे लाभ होंगे। बीमारी से

पीड़ित होकर जो खीझ बुजुर्ग दर्शाता है वह दूर हो जाएगी। धीरे-धीरे ब्लड प्रेशर या कोई दूसरी बीमारी भी ऐसा करने से दूर हो जाएगी। वही बुजुर्ग अपने परिवार के काम आयेगा। यदि हम बुजुर्गों का इस तरह ध्यान रखेंगे तो उनके मन में भी हमारे प्रति प्यार उमड़ेगा कि मेरे बच्चे मेरा कितना ख्याल रख रहे हैं। यदि आपके पास सचमुच ही वक्त की बहतु कमी है तो आप बुजुर्गों को समय पर दवाई देने की ड्यूटी अपने वफादार सेवक को सौंप सकते हैं, लेकिन जब घर आओ उसी वक्त अवश्य ध्यान दें। बुजुर्ग पिता से उनकी सेहत का हाल-चाल पूछें। नौकर से दवाई दिए जाने के बारे में तसल्ली अवश्य कर लें कि कहीं मिस तो नहीं हो गई। फिर यदि आवश्यक प्रतीत हो तो जिस डॉक्टर से इलाज चल रहा है उसको बुजुर्ग पिता की स्थिति बता कर सलाह लीजिए। कई बार विशेष स्थिति में डॉक्टर बदलना पड़ता है परंतु ऐसा निर्णय जल्दबाजी में न लें। कई डॉक्टर सचमुच ही जरूरत से ज्यादा टेस्टों के चक्र में डालते हैं। ऐसे डॉक्टर को 'बाय-बाय' करके उस डॉक्टर के पास जाइए जो निःस्वार्थी हो, लेकिन दवाई भूल कर भी बंद मत कीजिए। अपने बुजुर्ग के टेस्टों की फाईल संभाल कर रखें।

बुजुर्गों को ब्लड प्रेशर से बचने के लिए निम्नलिखित ढंग अपनाने चाहिएं :

* नमक का प्रयोग सारे दिन में २ ग्राम से अधिक नहीं करना चाहिए।
* चटपटी चीजें, जंक फूड, जैसे कुरकरे, चिप्स, बाजार की बनी हुई चीजों का प्रयोग बिलकुल नहीं करना चाहिए।
* घी, मलाई, दूध का प्रयोग बहुत ही कम करना चाहिए। रीफाइंड तेल भी अधिक अच्छा नहीं होता।
* प्रतिदिन सैर, थोड़ा-बहुत व्यायाम या योगा करना मत भूलें।
* हर वर्ष के पश्चात अपने लिपिड प्रोफाईल **(lipid profile)** अवश्य चेक कराते रहिए।

शूगर

हमारे शरीर में परमात्मा ने कुछ ऐसा सिस्टम फिट किया है कि उस पर कुर्बान जाने को दिल करता है। पेट के बिलकुल बीच तथा नाभि से ऊपर एक छल्ली जैसी **pancreas** लगी होती है, जो शरीर में इन्सूलिन तथा **glucagons** हारमोन्स छोड़ती है, जो कि ग्लूकोज, लिप्ड और प्रोटीन के **metabolism** को नार्मल रखते हैं। इसमें एक भाग **Islets of Langrehans** जो मनुष्य के **Pancreas** में १-२ मिलियन होते हैं, जिसमें निम्नलिखित सैल पाये जाते हैं :

*१. बीटा सैल (**beta cell**)* : बीटा सैल **Islets of Langrehans** टिशू का ६० प्रतिशत भाग होता है। ये सैल ही इन्सूलिन पैदा करके सीधा रक्त में छोड़ते हैं। एक और हारमोन्स **amylin** छोड़ते हैं।

*२. अल्फा सैल (**alpha cell**)* : यह **Islets of Langrehans** टिशू का २५ प्रतिशत भाग होता है। ये **glucagons** हारमोन्स छोड़ते हैं।

*३. डैलटा सैल (**delta cell**)* : यह **Islets of Langrehans** टिशू का १० प्रतिशत भाग होता है। ये **somatostatin** हारमोन्स छोड़ते हैं।

इन्सूलिन पहली बार सन् १९२२ में ढूंढा गया। फिर ज्ञात हुआ कि यह कार्बोहाइड्रेट के

metabolism में सहायता करता है, परंतु फैट के **metabolism** के कारण शूगर वाले मरीजों में ऐसीडोसिस और रक्त के कत्थे बनाने के साथ शूगर वाले मरीज की मृत्यु होती है। पुराना शूगर होने के कारण ये प्रोटीन के **metabolism** को प्रभावित करते हैं तथा टिशू एवं सैलों को **waste** करते हैं। अत: यह अब साफ है कि इन्सूलिन फैट, प्रोटीन और कार्बोहाईड्रेट **metabolism** को प्रभावित करते हैं।

बहुत व्यक्तियों में शूगर का कारण जीन्स और वातावरण होता है। कुछ निम्नलिखित कारण भी होते हैं :

* गुर्दों का खराब होना।
* बिना चोट के टांगों-बाजुओं का किसी अन्य बीमारी के कारण कटना।
* यौवन में अंधापन होना।

शूगर दो प्रकार की होती है।

Type I (IDDM) अर्थात् इन्सूलिन डीपेंडिट डाइबटिक मीलाईट्स। इसमें टोटल इन्सूलिन की कमी हो जाती है। यह अधिक १४ वर्ष की आयु में या इससे पहले होती है। यह जेनेटिक कारणों से अधिकतर होती है।

Type 2 : इसमें इन्सूलिन की कमी या उनका अच्छी तरह काम न करना या शरीर में शूगर का अधिक पैदा होना। इस प्रकार की शूगर अधिकतर बुजुर्गों (५०-६० वर्ष) में पाई जाती है। यह निम्नलिखित कारणों से होती है:

* मोटापा
* कम व्यायाम करना
* हाई ब्लड प्रेशर
* **HDL cholestrol** का बढ़ना
* **triglycerides** का बढ़ना
* स्त्री की **ovary** में खराबी होना
* रक्त की धमनियों में खराबी होना इत्यादि।

हमारा दिमाग भी ग्लूकोज का प्रयोग करता है। जब ग्लूकोज का लेवल २०-५० मिलीग्राम/१०० मिलीलीटर रह जाता है तो **Hypoglycaemic** हो जाता है जो दिमाग के नर्वस सिस्टम को प्रभावित करके मनुष्य को नीम बेहोशी में ले जाता है। कई बार मरीज को दौरे पड़ते हैं, यहां तक कि कोमे में भी ले जाता है।

बुजुर्गों को शूगर से बचने के लिए निम्नलिखित ढंग अपनाने चाहिएं :

* मोटापे से बचने के लिए फैट वाली चीजों का कम प्रयोग करना चाहिए।
* प्रतिदिन सैर या हल्का व्यायाम या योगा करना चाहिए।
* एक दिन अर्थात् २४ घंटे में चीनी आदि मीठा ५ ग्राम से अधिक नहीं लेना चाहिए। कोशिश करो कि मीठा फलों आदि से ही लिया जाए।
* कड़ाह, घी का प्रयोग बहुत कम करना चाहिए।
*शराब, सिगरेट आदि किसी भी नशे का प्रयोग नहीं करना चाहिए। शराब पीने से **Pancreatitis** नामक बीमारी हो जाती है जिसके कारणवश मरीज की मृत्यु भी हो सकती है।
* ब्लड प्रेशर को कंट्रोल में रखना चाहिए।
* हरेक तीन महीनों के बाद अपना ब्लड प्रेशर, अपनी शूगर चैक कराते रहें।
* मोटापे से बचने के लिए हल्की-फुल्की चीजों का प्रयोग करें। मोटापे के कारण हमारे शरीर पर **strain** पड़ता है जिसके साथ ही ब्लड

प्रेशर, शूगर और दिल की बीमारी होती है।
* मोटापे से बचने के लिए खादों से उगी सब्जियां न खाएं। यह ढंग अपनायें--**Pay more, Eat less.**
* अधिक पत्तों वाली सब्जियां खाएं क्योंकि ये ऐंटी आक्सीडेंट होती हैं। इनमें उमेगा ३-फैटी ऐसिड और फाईबर होते हैं। यह ३-फैटी ऐसिड, अखरोट, **seed nuts, olive oil** में पाया जाता है, जो कैलेस्ट्रोल को कम करता है।

यौवन अवस्था में मीट खाने वाले व्यक्ति वृद्ध अवस्था में मीट बहुत ही कम खाएं और सब्जियों आदि का प्रयोग करें। नयी सब्जियों का प्रयोग भी करें।

बुजुर्गों के दिमाग के लिए बढ़िया खुराक

जो भोजन आप खाते हैं, आपके शरीर और दिमाग को प्रभावित करता है। आपको बढ़िया खुराक चाहिए इसलिए कि दिमाग को बढ़िया पोषण मिले। तभी आपके दिमाग को नियमित रूप से आक्सीजन और रक्त की बढ़िया सप्लाई होती रहेगी। इस तरह आपके दिमाग की पावर ठीक रहेगी।

नीचे कुछ टिप्स हैं, जो आपके दिमाग की पावर को बढ़िया रख सकते हैं :

पानी : यह शरीर का मुख्य तत्व है जो शरीर में २/३ से अधिक पाया जाता है। इसके पीने से दिमाग के तंतुओं का सेंट्रल नर्वस सिस्टम के साथ बढ़िया लिंक बनाता है, क्योंकि बिजली और यह केमीकल एनर्जी का अच्छा संचालक है। एक नर्व से दूसरे नर्व तक करंट पैदा होकर ही आगे क्रिया चलती है। यह करंट पानी पीने से बढ़िया होता है। रोज़ाना पानी कम से कम ७-८ गिलास पीयें। पानी रूम टेंपरेचर वाला ही पीना चाहिए। थोड़ा-थोड़ा करके पानी सारे दिन में पीओ।

दिमाग के विरुद्ध भुगतने वाले फूड्ज ***(Anti-Brain Foods)***

बहुत-सी मछलियों में बुरे समुद्री तत्व पाये जाते हैं जिनको पहले साफ कर लेना चाहिए। सूअर तथा अन्य (मोटा) मीट पाचन के लिए बहुत समय लेता है और आपको नींद में ले जाता है। इसलिए इसका प्रयोग न करें।

जब आप अधिक मीठा लेते हो तो रक्त में इन्सूलिन की कमी हो जाती है तथा शूगर और अधिक होकर आपको डिप्रेशन में ले जाती है।

कॉफी और चाय आपको चुस्त रखती है परंतु सीमा से अधिक चाय या कॉफी आपके शरीर पर **diuretic** की तरह प्रभाव डालती है, जिससे आपके शरीर के महत्वपूर्ण तत्व, जैसे पोटेशियम, मैग्नीशियम और कैलशियम गुर्दे के रास्ते बाहर निकल जाते हैं। कैफीन (**caffeine**) आपको चुस्त रखते हैं और ब्लड प्रेशर बढ़ाते है। इसलिए बुजुर्गों को चाय और कॉफी का जहां तक संभव हो सके परहेज करना चाहिए।

बुजुर्गों में अन्य बहुत-सी बीमारियां जैसे अधरंग (लकवा), सठिया जाना (**Dementia**), दिमाग का सिकुड़ जाना (**Cerebral Atrophy**), हाथों का हिलते रहना (**Parkinsonissm**) और अन्य बहुत-सी बीमारियां भी साधारणत: पाई जाती हैं जो आगामी अंकों में बयान करूंगा।



बुजुर्ग अवस्था की शारीरिक तथा मानसिक कमजोरियां और उनका समाधान

*-स. गुरदीप सिंघ**

हर इंसान के जीवन में तीन प्रकार की अवस्थाएं आती हैं--बाल अवस्था, युवा अवस्था और बुजुर्ग अवस्था। नौवें पातशाह जी की पावन पंक्ति है :

बाल जुआनी अरु बिरधि फुनि तीनि अवसथा जानि॥
(पन्ना १४२८)

बुजुर्ग अवस्था--बुढ़ापा कोई रोग नहीं है, यह शरीर की एक प्रक्रिया है। इस अवस्था विशेष में लोग सुंदर नहीं दिखते और न ही सक्षम। होठों पर रेखाएं उभर आती हैं, पलकें अंदर धंस जाती हैं, गाल पिचक जाते हैं, दांत कमजोर पड़ जाते हैं, सिर के बाल सफेद एवं हल्के पड़ जाते हैं, माथे पर झुर्रियां पड़ जाती हैं। बुढ़ापा आ जाने पर मनुष्य का शरीर कांपने लगता है, चलते हुए कदम डगमगाने लगते हैं, आंखों की ज्योति कम होने लगती है। ऐसी दशा हो जाती है बुढ़ापा आने पर! नौवें पातशाह जी का फरमान है :

सिर कंपिओ पग डगमगै नैन जोति ते हीन ॥
(पन्ना १४२८)

बाबा फरीद जी फरमाते हैं कि यौवन काल में इन छोटी-छोटी टांगों के सहारे मैं धरती पर, पहाड़ों तक जाकर घूमता-फिरता रहा, पर बुढ़ापा आ जाने पर अब मुझे शारीरिक और मानसिक कमजोरियों ने घेर लिया है और इतना कमजोर हो गया हूं कि थोड़ी दूर पर पड़ा यह लोटा मुझे सौ कोस दूर पड़ा दिखाई देता है :

फरीदा इनी निकी जंघीऐ थल डूंगर भइओमि ॥
अजु फरीदै कूजड़ा सै कोहां थीओमि ॥(पन्ना १३७८)

कोई भी मनुष्य लंबी आयु का वास्तविक आनंद तभी भोग सकता है जब वह शारीरिक और मानसिक रूप में पूरी तरह से स्वस्थ हो, नहीं तो हजारों, लाखों बड़ी उम्र के लोग किसी न किसी बीमारी से ग्रस्त होने के कारण अस्पतालों में, घरों के किसी कोने में, वृद्धाश्रम में या धार्मिक स्थानों में पड़े अपाहिजों-सा जीवन जी रहे हैं।

उम्र बढ़ने के साथ ही हमारे शरीर के अंग अपनी क्षमता खोने लगते हैं। इस प्रक्रिया को ही (एजिंग) बुढ़ापे का आना कहते हैं। अनेक प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक कमजोरियां आनी शुरू हो जाती हैं। शरीर के विभिन्न अंगों पर बुढ़ापे का असर पड़ता है, जैसे:-

हृदय : हृदय हमारे शरीर का पंपिंग स्टेशन है। बुढ़ापे में इसकी पंपिंग क्षमता कम हो जाती है। इसके चलते व्यक्ति जल्दी थक जाता है और थकान दूर होने में समय लग जाता है।

नर्वस सिस्टम : उम्र बढ़ने के साथ नर्व सेल्स का द्रव्य (मांस) कम हो जाता है, नर्व सेल्स की संख्या भी कम हो जाती है। इसके चलते नर्व कार्ड, जो दिमाग-संचार-प्रणाली का मुख्य हाईवे है, पर ट्रेफिक गड़बड़ा जाता है। इससे दिमाग तक संदेश पहुंचाने की क्रिया धीमी पड़ जाती है।

पाचन-तन्त्र : पेट में पाचक अमल बनने की प्रक्रिया धीमी पड़ जाने से भोजन में मौजूद विटामिन बी-१२ के अवशेषण में मुश्किल आती है।

हड्डियां : उम्र बढ़ने के साथ हड्डियों का लचीलापन कम हो जाता है, हाथ-पैर के जोड़

**३०२, किदवाई नगर, लुधियाना। मो: ९८८८१-२६६९०*

कड़े हो जाते हैं। हड्डियों के बीच कुशन का काम करने वाला कार्टिलेज टूटने से आर्थराइटिस और जोड़ों के दर्द की समस्या शुरू हो जाती है। हड्डियों के मिनरल कंटेंट का भी क्षरण होने लगता है, जिससे हड्डियां कमजोर हो जाती हैं। इससे पीठ झुकने लगती है।

सही भोजन, संतुलित लाइफ स्टाइल, व्यायाम, सक्रिय जीवन-शैली, सकारात्मक सोच आदि के जरिए बुढ़ापे की ऐसी कमजोरियों का सही प्रकार से सामना किया जा सकता है। इस संबंध में कुछ सुझाव जो डॉक्टरों एवं मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिये गए हैं, का उल्लेख किया जा रहा है:-

बुजुर्ग अवस्था में शरीर को भरपूर कैलोरी की जरूरत होती है, इसलिए खाने में वसायुक्त अनाज, भोजन, स्टार्च के बने पदार्थों की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। दूध और दूध से बने पदार्थ (दही, पनीर), ताजा फल, हरी और पत्तेदार सब्जियों का अधिकाधिक सेवन करना चाहिए। इससे प्रचुर मात्रा में विटामिन और खनिज लवण मिल जाते हैं। शरीर को चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए कैल्शियम की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए।

अक्सर उम्रदराज लोग बाहर घूमना-फिरना बंद कर देते हैं, जिससे स्वच्छ हवा और धूप नहीं मिल पाती। धूप से हमें विटामिन-डी प्राप्त होता है, जिससे हड्डियां मजबूत बनती हैं। अत: शरीर के लिए धूप उतनी ही जरूरी है जितना कि पानी। खाने में सैचुरेटेड वसा बिलकुल नहीं लेनी चाहिए, क्योंकि इससे शरीर में अनावश्यक चर्बी जमा हो जाती है। सनफ्लोर या सोयाबीन तेल का इस्तेमाल करना चाहिए। इससे हाइपरटेंशन और कार्डियोवस्कुलर जैसी बीमारियों से बचा जा सकता है।

बढ़ती उम्र में शूगर की मात्रा कम लेनी चाहिए अन्यथा डॉयबिटीज जैसी बीमारी का खतरा बढ़ जाता है। भोजन में शूगर-फ्री पदार्थों का सेवन करना चाहिए। भोजन में फाइबर अवश्य लेना चाहिए। फाइबर कब्ज जैसी बीमारी में लाभदायक होता है।

बुजुर्ग अवस्था तक आते-आते व्यक्ति की पाचन-शक्ति कमजोर हो जाती है। अत: एक साथ भोजन न करके समय-समय पर भूख के अनुसार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में भोजन लेते रहना चाहिए। पेय पदार्थ अधिक मात्रा में लेना जरूरी है। पानी खूब पीएं। जूस, दही, लस्सी आदि को भी भोजन का हिस्सा मानना जरूरी है।

बुढ़ापे में उत्पन्न मानसिक विकार—अल्जीमर्स—यह विकार किसी भी बुजुर्ग को अपनी चपेट में ले सकता है। याद-शक्ति का कम होना, जिसे अक्सर बढ़ती उम्र के साथ जोड़कर देखा जाता है। अल्जीमर्स का पहला लक्षण है भूलना। कुछ मिनट पहले किया गया कार्य व्यक्ति भूलने लगता है, जैसे अपनी चाबी कहीं रख कर भूल जाना, रास्ता भूल जाना, दो अलग-अलग रंग के मोजे पहन लेना, किसी सामान को गलत स्थान पर रख देना, सड़क पर चलते समय किसी गलत मोड़ पर मुड़ जाना आदि। ऐसे व्यक्ति को दिमागी तौर पर व्यस्त रखने का प्रयास करना चाहिए।

डिप्रेशन से दूर रहो। डिप्रेशन में हों तो चिंता से मुक्त होने के लिए मन जोड़कर नाम जपना चाहिए, कीर्तन सुनना, डीप ब्रीथिंग या पाठ करना चाहिए। मानसिक परेशानियों, तनाव आदि से ग्रस्त कई व्यक्तियों ने अपना अनुभव बताया कि "सुखमनी साहिब" का पाठ करने से उनको बहुत शांति मिलती है।

क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष की भावना ऐसे लक्षण हैं जो मानसिक तंदरुस्ती को बिगाड़ते हैं। मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति शारीरिक तौर पर भी तंदरुस्त नहीं रह सकता। अत: मन और शरीर दोनों को तन्दरुस्त रखकर सहज जीवन जीना चाहिए।



भक्त भीखण जी द्वारा सुझायी बुढ़ापे में प्रभु-नाम की औषधि

-डॉ. सुरिंदरपाल सिंघ*

मनुष्य-जीवन के संबंध में विद्वान-जनों ने बहुत सक्षम विचारें की हैं, जिनमें इस जीवन के अर्थ भी समझाये हैं और इसके उद्देश्य, प्रयोजन के बारे में भी दिशा, समझ बनाई गई है। यहां बचपन को भोला, जवानी को मदमस्त और बुजुर्ग अवस्था को साधारणत: लाचार बताया है। साधारण सामाजिक तथा पारिवारिक स्थितियों में जहां बुजुर्गों की कोई कद्र नहीं की जाती उस बेकद्री में से ही उनकी लाचारी उपजती है।

नवम पातशाह ने जीवन-प्रवाह के सबसे बिखड़े पड़ाव बुजुर्ग अवस्था को अपने बहुमूल्य पावन शबदों के द्वारा इसका बहुत भयानक तथा डरावना चित्र पेश किया है, परंतु यह चित्र उनका ही है जो हरि-रस से रहित हैं, जिन्होंने अपने मन-मस्तिष्क में सत्य-नाम को नहीं बसाया :

सिरु कंपिओ पग डगमगे नैन जोति ते हीन ॥
कहु नानक इह बिधि भई तऊ न हरि रसि लीन ॥ *(पन्ना १४२८)*

बुजुर्ग अवस्था अविकसित समाज में एक अभिशाष जैसी बन कर रह जाती है, जहां फिर कोई भी उसे सहारा नहीं देता बल्कि सभी उससे किनारा करके ही छुटकारा पाना अच्छा समझते हैं। इस दयनीय अवस्था का बहुत दर्द भरा चित्र पेश किया गया है भक्त भीखण जी की बाणी में। यह देखने योग्य भी है और विचार करने के योग्य भी। आप जी फरमान करते हैं :

नैनहु नीरु बहै तनु खीना भए केस दुध वानी ॥
रूधा कंठु सबदु नही उचरै अब किआ करहि परानी ॥ *(पन्ना ६५९)*

आंखों में से आंसू बह निकलते हैं। तन दुर्बल हो जाता है तथा केश सफेद दूध जैसे हो जाते हैं। यहां ही बस नहीं, गला कुछ बोलने से असक्षम हो जाता है तथा प्राणी लाचारी के आलम में खो जाता है।

इसके अलावा भक्त जी ने इस अवस्था की अन्य परतें भी खोली हैं कि इस हालत में और क्या कुछ घटित होता है और क्या कुछ देखने को मिलता है :

माथे पीर सरीरि जलनि है करक करेजे माही ॥
ऐसी बेदन उपजि खरी भई वा का अउखधु नाही ॥ *(पन्ना ६५९)*

सिर में पीड़ा तथा सारे शरीर में जलन व्याप्त हो जाती है। ये ऐसी शारीरिक व्याधियां हैं जिनका औषधि उपचार कर सकना मानस मन की शक्ति से बाहर हो जाता है। जो पीड़ा, जो वेदना दिल में होती है उसका निवारण संसार में असंभव हो जाता है।

हमारे समाज में कई प्रकार के मनुष्य होते हैं परंतु इनमें से यदि कोई वर्गीकरण करके एक दिशा बनाने के लिए यत्नशील हो तो इस प्रकार का विचार सामने आता है। एक वे हैं जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार

***पत्तन वाली सड़क, पुराना शाला, गुरदासपुर। मो: ९४१७१-७५८४६*

में फंसे हुए दुखित होकर समय गुजार रहे हैं। वे झूठ, अपराध कमाते और ऐश्वर्यों का जीवन जीते नज़र आते हैं। उनके जीवन में न कहीं संयम है, न ही विचारशील भोजन, न ही सही पहरावा। वे मदिरापान करते, चर्स, गांजा उड़ाते हुए अपना अमूल्य जीवन नष्ट किये जा रहे हैं।

दूसरी ओर कुछ नियमबद्ध जीवन जीने वाले हैं, जो महापुरुषों के बताये, गुरु साहिबान द्वारा सुझाये जीवन-उसूलों का पालन करते हुए हर सुबह से हर शाम तक सच्चा व निर्मल जीवन निर्वाह करते हैं। वे हक-सच का रास्ता अपनाते हुए सारा जीवन परम उत्तम गुरबाणी के सिद्धांत को मन में बसाकर उसी के अनुसार कार-व्यवहार करते हैं, उसी के अनुसार खान-पान करते और रिश्ते-नाते सृजन करते हैं। उनके जीवन में कुछ भी अनकमाया नहीं होता। वे कड़ी सच्ची मेहनत की रोटी खाते हैं। यहां ही बस नहीं, वे अपनी मेहनत की कमाई में से कुछ सेवा-भावना हेतु भी देते हैं।

ये दोनों रास्ते बहुत स्पष्ट हैं। एक मनमुखी और दूसरा गुरमुखी है। प्राय: मनमुख का बुढ़ापा ही कष्टदायक होता है। उसका सिर कांपता और पैर डगमगाते हैं और नयन ज्योति-से हीनता की स्थिति वाले हो जाते हैं। सारा तन-मन रोगी हो जाता है। परंतु गुरमुख प्राणी का बुढ़ापा भी मन में नाम-धुन संचारित रहने वाला, शांतचित्त, जाप-आराधना वाला देखने में आता है। गुरमुख हस्ती वह है जिसने सारा जीवन सिद्धांत सिद्ध जीया है, नाम-बाणी की कमाई की है। उसके मन में दुख एवं चिंता अधिक नहीं पड़ेगी बल्कि रूहानी विगास रहता है। उस पर एक अद्वितीय विगास रहता है। बात मात्र जीवन-राह को अपनाने की है। वह जिस रास्ते पर चलता है उसी का फल प्राप्त करता है।

बुजुर्ग अवस्था का बयान करते हुए भक्त भीखण जी ने समाज में रहने वाले सर्व साधारण मनुष्य को सचेत किया है। इसके साथ ही उन्होंने प्रभु-नाम की औषधि का भी बहुत बलवान प्रसंग दिया है और इसको अमृत-जल होने की ऊंची पदवी दी :

हरि का नामु अंम्रित जलु निरमलु इहु अउखधु जगि सारा ॥ *(पन्ना ६५९)*

आप जी ने नाम-आराधना को सारे संसार की औषधि के तौर पर प्रस्तुत किया है, जो बुजुर्ग अवस्था का कल्याण तो है ही इसके साथ ही सारी आयु के कलेशों का भी नाश करने वाला है। यह अमृत-जल मन को निर्मल, निरोग करता है और जब मन निरोग हो जाता है तो तन की शुद्धि स्वत: हो जाती है, क्योंकि मन आधार तथा तन इसका उसार है। जब आधार निरोग हो जाता है तो उसार भी रोग रहित हो जाता है, जैसे वृक्ष की जड़ों में से रोग निकल जाए तो फिर वृक्ष पूर्ण रूप में हरा-भरा हो जाता है।





बदली स्थिति में बुजुर्ग सही व संतुलित रोल निभायें!

*-डॉ. कीर्ति केसर**

किसी भी समाज की संस्कृति से उसकी पहचान बनती है। समूह में रहने के कारण हर समाज के कुछ रीति-रिवाज, पहनावा, धर्म, धार्मिक विश्वास, शिक्षा विचार और नियम होते हैं। इन्हीं तत्वों से साहित्य-कला और इतिहास की रचना होती है। समाज के सभी लोग और वर्ग भाईचारे के साथ जीयें, इसके लिए कुछ नियम भी बन जाते हैं। ये सारे ही तत्व मिलकर संस्कृति का स्वरूप तय करते हैं परन्तु इनकी आधारभूत शक्ति समाज के जीवन-मूल्य होते हैं। इन्हीं मूल्यों से समाज के नैतिक मूल्य तय होते हैं। कानून वह काम नहीं कर सकता जो नैतिक मूल्य करते हैं।

भारतीय संस्कृति पर धर्म की पकड़ ज्यादा रही है। धर्म ईश्वर के इर्द-गिर्द घूमता है। उसकी सर्वव्यापी छवि इतनी प्रबल है कि एक भारतीय संस्कार का व्यक्ति ईश्वर के न्याय, उसकी कृपा, उसकी उदारता पर गहरा विश्वास रखता है यानि भारतीय संस्कृति आस्थामूलक है। व्यक्ति कानून को धोखा देने के सारे तरीके इस्तेमाल कर लेता है, पर डरता है, क्योंकि ईश्वर की आंखों से बच नहीं सकता। अनेक डेरे, मठ, पीठ और संस्थान अपना कारोबार चला रहे हैं। इस देश का आम-जन गरीब से और गरीब, बद से बदतर होता जा रहा है। आम-जन को चमत्कार, ज्योतिष, वास्तु, तंत्र-मंत्र के नाम पर ठगा जा रहा है, लूटा जा रहा है। आम-जन बेचारगी, लाचारी को अपना भाग्य और पिछले जन्मों के कर्मों का फल मानकर संतोष कर लेता है। खाने को रोटी हो न हो, ग्रह-शांति, वास्तु-दोष, राशि-दोष और कई तरह वहम-भ्रम के लिए वह पैसा जुटा ही लेता है। सो हमारी संस्कृति का यह पाखंड का धंधा किसी कानून को भी नहीं मानता। सरकारें भी यहां नत्मस्तक होती हैं और कानून लाचार खड़ा रहता है। इनको गुस्सा आ जाए, ये शोक में हों तो करोड़ों-अरबों रुपए की राष्ट्रीय संपत्ति फुंक जाती है। तथाकथित 'धर्म-गुरु' संस्कृत के तथाकथित रक्षक राष्ट्रीय पाप को रोकने का कोई उपाए नहीं करते हैं। इन तथाकथित धर्म-गुरुओं, बाबाओं, बापुओं की बड़ी शक्ति आम-जन हैं। उसका इन पर अंधा विश्वास है। शिष्यों के माइंडसेट का रिमोट इनके पास रहता है इसलिए वोट की शक्ति को भी ये लोग नियंत्रित करते हैं। भावनाशील आम-जन आस्था के सहारे चलता है, अत: भारतीय संस्कृति को खतरे भी इसीलिए ज्यादा हैं। सारी संस्कृति का मूल ढांचा तथाकथित पंडितों और ज्योतिषियों के बताये कर्मकांड के सहारे चलता है जिसमें चमत्कार का बड़ा आकर्षण है। वर्ण-व्यवस्था ने भारतीय समाज को ही कमजोर नहीं किया बल्कि संस्कृति को भी खोखली कर दिया है और संस्कार को जातिवाद में बांट दिया है। ऐसा जातिवाद, जिसमें लगभग ६० प्रतिशत व्यक्तियों को शूद्र, नीच, अस्पृश्य का दर्जा देकर मनुष्यत्व के दर्जे से ही गिरा दिया। उन्हें ज्ञान, ध्यान और विचार से सदियों से वंचित रखा

**१०८६/ई, गोबिंदगढ़, जालंधर-१४४००१ मो: ९८७८७-८४०१६*

हुआ था। इन तथाकथित नीच जातियों को शस्त्र और शास्त्र का अधिकार नहीं था। रक्षा और प्रशासन का अधिकार केवल क्षत्रियों का था। दलित सिर्फ सेवा करें, राजा कोई भी हो। इसीलिए यह देश आक्रमणकारियों द्वारा लूटा गया और जो यहां बस गए उनका गुलाम हुआ। जैन, बौद्ध, इस्लाम (सूफीवाद), सिख धर्म ने इसे बदलने का प्रयास किया है। भारत में आकर इस्लाम भी इसके प्रभाव से बच न सका। भारतीय संस्कृति में अपनी बहुत-सी कमजोरियां हैं, कर्मकांड बहुत प्रबल हैं। सिख गुरु साहिबान ने कर्मकांडों और भ्रमों को समाप्त करने और आस्था को मनुष्योन्मुख, आचरणमुखी बनाने के लिए ३०० साल तक मेहनत की, खून बहाया, कुर्बानियां दीं, सिद्धांतों को जीकर दिखाया। सिख धर्म को मनुष्य समाज के मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक अनुभवों, मनुष्योन्मुख विचारधाराओं के सारतत्वों को एकत्र करके 'सरबत्त के भले के लिए' सिद्धांतों को आचरण की प्रयोगशाला में परख कर दस गुरु साहिबान ने अपने पुण्यों और सदकर्मों से ३०० वर्षों में इसे सिद्ध किया है, लेकिन इसे भी कर्मकांड में उलझाने की कोशिशों और को उपभोक्तावादी संस्कृति का आक्रमण झेलना पड़ रहा है। आंधी और बाढ़ जैसा यह संक्रमण बहुत कुछ उड़ाकर, बहुत कुछ बहाकर ले जाएगा। बहुत से समाजशास्त्री ऐसी आशंकाएं व्यक्त कर रहे हैं, चिंतक ऐसा होता हुआ देख रहे हैं और बचाव के लिए यत्नशील भी हैं।

भारतीय समाज का लाइफ-स्टाइल बहुत तेजी से बदल रहा है। पहले यह बदलाव शहरों तक ही सीमित रहता था, क्योंकि अब बदलाव का कारण राजनैतिक और सांस्कृतिक न होकर अर्थ-तत्व यानी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के कारण आया है। इसकी पहुंच उपभोक्ता के दिल-दिमाग से होती हुई उसके जीवन के हर कोने तक हो गई है। ध्यान से देखा जाए तो जीवन की गाड़ी की ड्राइविंग फोर्स पूंजी है और आदमी के जीवन की गाड़ी की ड्राइविंग सीट पर 'जरूरत' बैठी है। 'जरूरत' ने रिश्तों, भावनाओं, चाहतों और सदाचार को एक नया आयाम दिया है 'फायदा'। यानि अब रिश्ते न दिल से चलते हैं, न परंपरा से चलते हैं, उसे 'जरूरत' और 'फायदा' चलाता है। बड़े शहरों में तो यह मानसिकता कई दशकों से चल रही थी पर अब उपभोक्ता संस्कृति और बाजार, गांवों में भी अपने पांव पसार चुका है। लोगों पर कंट्रोल टीवी चैनलों के विज्ञापनों और सनसनीखेज सीरियलों का है और दिल अब दिमाग से चलता है। सरकार को भी पूंजी चलाती है और धर्म तथा आस्था भी पूंजी से पूंजी के लिए चलते हैं। सो, इतना बड़ा व्यापक, विस्तृत और पक्का मायाजाल कि आदमी को आदमी बनाने वाले भावों और अहसासों का भी बाजार में दोहन होने लगा है।

ऐसे में यह सोचना कि इस बदलाव की आंधी और बाढ़ में से बुजुर्ग लुप्त होती संस्कृति को बचा लेंगे या बचा सकते हैं, यह सवाल इतना साधारण नहीं है कि कोई ऐसा उत्तर दिया जा सके जैसे २+२ नतीजा ४ होता है। कारण मिलाकर देखें तो बुजुर्गों की आबादी का १० से १५ प्रतीशत ऐसा हिस्सा है जो समय के बदलाव की गति के साथ चल सकता है और पूरे कारण+कार्य का विश्लेषण करके बदलाव को कोई दिशा देने की क्षमता रखता है। वह ऐसा कर भी रहा है। यह हिस्सा उच्च मध्यम वर्ग और मध्यम वर्ग से संबंध रखता है। बाकी बुजुर्ग रीति-रिवाज, परंपरा, विरासत के नाम पर "ये करो, वो न करो" के निर्देश ही दे सकते हैं। बच्चे, किशोर सवाल पूछते हैं, "ये

क्यों न करो? और वो क्यों करो?" इसका संतोषजनक उत्तर उनके पास नहीं है, शिक्षकों के पास नहीं है। उदाहरण के लिए कभी यह जीवन का मंत्र था--"ईमानदार रहो, सच बोलो, कर्म करो, फल की चिंता भगवान पर छोड़ दो।" अब इन मंत्रों पर आचरण करने वाले की अक्सर दुर्गति होती है। भ्रष्ट सिस्टम में, शोषणवादी व्यवस्था में कर्म करके फल की इच्छा न करने वाला व्यक्ति हमेशा ठगा जाता है। ईमानदारी उसे प्राय: बोनलैस केंचुआ बना देती है। सच बोल कर कभी आदमी ऐसा फंसता है कि निकलने का कोई रास्ता उसे नहीं मिलता। उसकी मदद के लिए भी कोई आगे नहीं आता। अत: इन गुणों के साथ एक शब्द और जुड़ता है "स्मार्ट-अलर्ट और अवेयर"। आखिर जिंदा रहना सबसे पहली जरूरत है। "कर्म करो, अपने कर्मफल की रक्षा करना सीखो", आज की सीख यह है। "झूठ बोलने से किसी बड़े सच की रक्षा होती है तो झूठ बोलो और उसे सच की तरह बोलो", आज की सीख यह है। आज के बच्चे खुद सीखते हैं। पुराने ढंग की बातें बुजुर्गों से सीखने की बजाए वे इंटरनेट की वेबसाइट और बड़े लोगों के बलौग से सीखना पसंद करते हैं। वे प्रयोगशील हैं और जिदंगी उनके लिए प्रयोगशाला है। आजकल अक्सर देखा जाता है कि जो जीवन का कुरुक्षेत्र हारता है वह इच्छा-मृत्यु चुन लेता है। जैन धर्म में 'संथारा' शरीर त्यागने का विकल्प है। संभव है, आने वाले दशकों में इसे अधिकार रूप में मांगा जाए। यह एक बड़ा सुखदायक बदलाव है। बड़ी प्रचलित कहावत है कि "जीत हमेशा सच की होती है।" आज सच इतनी परतों में दबा होता है कि कोई उसकी तरफ ध्यान ही नहीं देता। हमारे बहुत से विश्वास वास्तव में भ्रम मात्र हैं। हमारी संस्कृति में झूठ, पाखंड का इतना बोलबाला है कि आज के नौजवान उसके सामने अपने आप को इतना विवश पाते हैं कि भाग खड़े होते हैं। बुजुर्ग-पीढ़ी और युवा-पीढ़ी के बीच बदलाव का इतना बड़ा पाट है कि उसे भरा नहीं जा सकता। पाठकों का ध्यान उन "प्रतिष्ठा-हत्यायों" की तरफ दिलाना चाहूंगी जो बुजुर्गों की हठधर्मी, जिद और अड़ियलपन के कारण होती हैं। आज भी कुछ निष्ठुर माता-पिता, दादा-चाचा अपने बेटे-बेटियों के अरमानों का गला घोटते हैं। ऐसे बुजुर्गों का युवा पीढ़ी की संस्कृति में कोई योगदान नहीं हो सकता।

अपने अनुभव से कह सकती हूं कि बहुओं का उत्पीड़न, बेटियों का अनादर, कन्या-भ्रूण हत्याओं में अड़ीयल स्वभाव के बुजुर्गों की बहुत बड़ी भूमिका रहती है। हमारी संस्कृति परिवार की हो, समाज की हो या सम्प्रदाय की "अहंकार" उसमें कूट-कूट कर भरा है।

प्रजातंत्र में व्यक्ति का महत्व होता है, हर इकाई का अपना अस्तित्व बनता है। इसका अच्छा प्रभाव हमने कम लिया है, इसीलिए अहंकार भी बलवान हो गया, तनाव, हिंसा, तोड़-फोड़, मारपीट, हत्या, आगजनी, सामान्य-सी बात हो गई है। किसी की धार्मिक भावना को ठेस पहुंचती तो निशाने पर सार्वजनिक सम्पत्ति होती है। अपनी ही चीजों को लोग आप नष्ट करने लगते हैं। क्या इस संस्कृति को बचाने की चिंता हम कर रहे हैं? यह अपने बोझ से आप ही दब जाएगी। यह तो चिंतक चिंता करते हैं, साहित्यकार लिखते हैं, कथित धर्म-गुरु उपदेश देते हैं, पर असर किसी पर कोई नहीं होता। अब तो "संतों" के अकाल चलाणा करने का शोक भी ऐसी जालिम हिंसा के साथ ही मनाया जाता है।

आज से कई साल पहले मैंने एक प्रवचन

में सुना था कि "धर्म की आत्मा तो कब की निकल चुकी है, हम तो उसका शव लेकर बैठे हैं।" आज यह कथन पूरी तरह सत्य घटित होता दिखाई दे रहा है। स्थिति ठीक उस कथन जैसी ही है। हमारी सांस्कृतिक महानता ओढ़ा मुखौटा है, फ़रेब है।

अब भी सब कुछ नहीं मरा, बहुत कुछ जिंदा है और वह जिंदा रहेगा! पुरानी संस्कृति का स्थान नई संस्कृति लेगी! जो शश्वतसार है वह पावन ग्रंथों में जीवित रहेगा, बहुत-से लोगों में भी जीवित रहेगा। सृष्टिकर्ता का अपना रचना-विधान है। पुराने पत्ते झड़ते हैं, नयी कोंपलें फूटती हैं। बूढ़े पेड़ गिरते हैं, नये पेड़ उगते हैं। प्रलय में कुछ द्वीप डूबते हैं, कुछ ऊपर निकल आते हैं। प्रकृति सदा अपने आप को 'नूतन' बनाए रखती है। अधिक निराश होने की कोई बात नहीं।

ग्लोबलाइजेशन का दौर है। दूरियां मिट गई हैं। संस्कृतियों का आदान-प्रदान इस प्रकिया का हिस्सा है। पश्चिम में बहुत कुछ अच्छा है। यदि हमारा कुछ अच्छा है तो बहुत कुछ बुरा भी है। हमारी संस्कृति को ही खतरा पैदा नहीं हुआ पश्चिम की संस्कृति को हमसे भी कई खतरे हैं। उनकी संस्कृति को हमारी संस्कृति से कई खतरे हैं। जिस तरह यू पी, बिहार से जादू-टोने, गंडे-तावीज़, तंत्र-मत्र, ज्योतिष, चमत्कार दिखाने वाले तांत्रिकों, साधुओं और बाबाओं ने पंजाब में अपना धंधा जमा कर लोगों को लूटने का कारोबार शुरू कर रखा है ऐसा ही जाल इन्होंने विदेशों में भी फैला रखा है। वहां ये बड़े हाइटैक होकर रहते हैं। देखने की बात है कि पंजाब में हमारे सीधे-सादे बुजुर्ग और औरतें ही इनके जाल में ज्यादा फंसते हैं। बड़ा दुख हुआ, एक बुजुर्ग अपने पोते को डाक्टर बनाना चाहते थे। तीन साल हो गए एक ज्योतिषी उसका 'भाग्य बदल रहा था' और एक लाख रुपए ऐंठ चुका था, पर 'भाग्य नहीं बदला'। सिक्ख धर्म इनसे बचने की शिक्षा देता है। यह चमत्कारों में विश्वास नहीं करता, फिर भी अधिकांश सिक्ख परिवारों में न जाने क्यों इन पाखंडियों ने अपना प्रभाव बना लिया है! बुजुर्ग यह सब देखते हैं पर कुछ नहीं करते। कारण--धर्म के संस्कार हैं, विचार या बोध नहीं है। धर्म को मात्र एक विरासती रिवाज बनाने का यत्न हो रहा है। गांवों में, शहरों में युवा पीढ़ी को नशे घुन की तरह खा रहे हैं, घर के बुजुर्ग बेबस, लाचार हैं। आखिर प्रशासन, एन. जी. ओज़ कुछ वलंटीयर, एन. आर. आई पंजाबी ही इसके खिलाफ मोर्चा खोलते हैं। सबसे बड़ी विवशता है बुजुर्गों का समय से पिछड़े होना और विकल्पहीनता। थोड़े से बुजुर्ग हैं जो बदलाव की हवा का रुख सही दिशा में मोड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। पंजाब के बुजुर्गों की एक मुश्किल और भी है कि वे सदा युद्धों, मोर्चों और सरहदों पर हथियारों से लड़ाई लड़ते रहे हैं, पर अब जो संस्कृति की लड़ाई है, इसकी नयी चुनौतियां हैं। यह लड़ाई अपने घरों में, खेतों, बाजारों में है। इसे बहुत-से लोग अपने-अपने तरीकों से लड़ रहे हैं। संस्कृति की लड़ाई में कोई पहचाना हुआ निश्चित दुश्मन भी नहीं है। बदलाव का सूप अपने आप फटकेगा, चुनेगा, थोथा उड़ेगा, सार-सार बच रहेगा। भारतीय संस्कृति गंगा की तरह है। इसमें कई दिशाओं से कई नदियां आकर मिलती हैं। संस्कृति तो रहेगी, क्योंकि बिना विचारों, आदर्शों और जीवन-मूल्यों के मनुष्य समाज अपना अस्तित्व नहीं बचा सकता। उसका स्वरूप शायद ज्यादा बड़ा, व्यापक और वैश्विक होगा। अत: बदलाव तो आकर रहेगा, समस्या रोकने की नहीं, दिशा देने की है। 

कविताएं

सत्कार बुजुर्गों का

*-इंजी. कर्मजीत सिंघ नूर**

एक बड़ा ही अनोखा, चक्कर है ज़िंदगी का।
बनता है ख़ाक से ही, पुतला यह आदमी का।
पहले तो ख़ाक से है, होती खुराक पैदा।
लहू, मांस, बिंद (वीर्य) बनती, होता बच्चा पैदा।
जन्मों से ज़िंदगी का, चक्कर यह चल रहा है।
एक पुतला बन रहा है, एक पुतला जल रहा है।
बचपन से शुरू होती, है सहर ज़िंदगी की।
आती है फिर जवानी, दोपहर ज़िंदगी की।
आने लगा बुढ़ापा, अब शाम होने को है।
इस ज़िंदगी का किस्सा, तमाम होने को है।
बचपन आगाज़ है तो अंजाम है बुजुर्गी।
बचपन है अगर सवेरा तो शाम है बुजुर्गी।
जीवन बुजुर्ग का है, जीवन का सार होता।
अनुभवों का, तजुर्बों का, इक भंडार होता।
वो भी समाज का ही, हिस्सा हैं ज़रा सोचो!
गुज़रे हुए वक्त का किस्सा, हैं ज़रा सोचो!
रुतबा समाज में है, सम्मानयोग्य उनका।
करते हैं क्यों अपमान, उनके ही लोग उनका?
हर एक घर में ऐसे, दो-एक शख़्स होंगे।
कि झुर्रियों में जिनकी, जीवन के अक्स होंगे।
बच्चे जवां हुए हैं, जिनकी दुआएं लेकर।
पाला, बड़ा किया है, सौ-सौ बलाएं लेकर।
आंखों ने जिनकी देखे, कई ज़िंदगी के मेले।
बच्चों के राज में वो, हैं पड़ गए अकेले।
बच्चे हैं बाप अब तो, कैसा अनर्थ देखो!
कितने बदल गए हैं, रिश्तों के अर्थ देखो!
आंखें मिलाएंगे जब, जेबों में माल होगा।
आंखें दिखाएंगे जब, ठन-ठन गोपाल होगा।
बढ़ गई ज़िंदगी में है, दौड़-धूप कितनी!
तस्वीर ज़िंदगी की, हो गई करूप कितनी!
मनुष्य आजकल का, मशीन हो गया है।
रिश्तों के मायनों से, उदासीन हो गया है।
हक है बुजुर्ग का भी, इज्ज़त के साथ जीना।
इज्ज़त के साथ खाना, इज्ज़त के साथ पीना।
बापू तो जान देता, अपनी औलाद पर है।
बेटों की नज़र उसकी, बस जायदाद पर है।
घर, ज़र, ज़मीन सब कुछ, बच्चों के नाम करके।
हो जाओ सुरखरू तुम, खाली तमाम करके।
जब लिखी गई वसीयत, लगवा लिया अंगूठा।
उस दिन से हाथ उसके, पकड़ा दिया है ठूठा।
अब ज़िंदगी पे बच्चों का, राज हो गया है।
अपने ही घर में सबका, मोहताज हो गया है।
हर रोज़ यही झगड़ा, होता है भाइओं का।
अब करे कौन खर्चा, मां की दवाइयों का?
बाज़ार जाए बापू, सौदा भी लाए बापू।
मां-बाप जाएं दफ्तर, बच्चे खिलाए बापू।
आते हैं काम जब तक, सत्कार उनको देते।
जब काम कर न पाएं, फटकार उनको देते।
फटकार खाकर फिर भी, देते हैं वो आशीषें।
मुंह से कभी भी उनके, निकलें न बद-आशीषें।
हर जगह अपने बच्चों की, जो मिसाल देते।
वही एक रोज उनको, घर से निकाल देते।
सारी उम्र गुज़ारी, जिसने धर्म-कर्म में।
बाकी की अब कटेगी, किसी वृद्ध आश्रम में।
अपमान मां-बाप का, करते हैं जो भी बच्चे।
सम्मान नहीं करते, उनका भी उनके बच्चे।

**३/६१, गार्डन कालोनी, गुरु तेग बहादर नगर, जालंधर। मो ९८१५०-२३९७०*

हमको भी एक दिन है, आखिर बुजुर्ग होना।
मिट्टी में मिट्टी एक दिन, मिट्टी का दुर्ग होना।
लेखा जन्म-जन्म का, कैसे समेटना है?
क्या पता किसको किस दिन, भूमि पे लेटना है!
इक तरफ आत्मा हम, उनकी दुखा रहे हैं।
इक तरफ हम बुजुर्गों का, दिन मना रहे हैं।
इन देवताओं की गरचे, सेवा समाज करता!
तो देश अपना सारी, दुनिया पे राज करता!
बूढ़ों को 'नूर' दर-दर, धक्के न खाने पड़ते!
यह वृद्ध आश्रम न, हरगिज़ बनाने पड़ते!



वर्तमान

*-श्री सुरजीत 'दुखी'**

मैंने एक बुजुर्ग को धूप में बैठे,
सिर झुकाए देखा है।
आंखों में दम नहीं,
चेहरे पे ढलती हुई इक रेखा है।
मुझे लगा, कोई सोच दिलो-दिमाग पे
उसके छाई है।
याद शायद वृद्धावस्था में,
जवां दिनों की आई है।
दिन-रात एक कर मैंने,
मेहनत से हर काम किया था।
घर-परिवार की पालना खातिर,
ओवरटाईम भी बहुत किया था।
क्या सिला मिला मुझे, खुद को यूं रुलाने का?
हर लम्हा उनके लिए लगाकर,
उजरत लाने का?
जिन्दगी की ढलती हुई धूप में,
मेरी आवाज सुनने वाला कोई नहीं है।
तसव्वुर मुझे गुजरे दिनों से मिला रहा है,
ग़लत किया क्या, क्या किया सही है?
पश्चाताप की आग में जलता हूं मैं।
अपने किए पे हाथ मलता हूं मैं।
वक्त तेजी से गुजरता जा रहा है।
मुझको मौत के और करीब ला रहा है।
सब कुछ खोया, न कुछ भी बाकी है।
सुख की नींद न सोया, न कुछ भी बाकी है।
जिन्दगी के बारे में जवानी में
चाहिए था सोचना।
इसका रुख किसी और तरफ
चाहिए था मोड़ना।
सोचते कुछ इस तरह, दम कई हैं तोड़ देते।
ग़िलों का पुलंदा लिए, दुनिया से मुंह मोड़ लेते।
क्या इनकी जिन्दगी में, कोई रंग भर पाएगा?
सन्तानों का रुख क्या, इनकी ओर मुड़ जाएगा?
लगा दिया जीवन बुजुर्गों ने, आपको बनाने में।
खुद भूखे रहकर, आपको खिलाने में।
उनके किये का कुछ तो तुम ख्याल कर लो।
ढलती हुई उनकी धूप में, कुछ रंग भर दो।
वर्तमान उनका जो खो चुका, तभी मुड़ पाएगा।
उनका मुरझाया हुआ चेहरा भी मुस्कराएगा।
भूत और भविष्य का ख्याल छोड़ कर 'दुखी',
हर बुजुर्ग आज के ख्याल में रंग जाएगा!



**३३२/९, गली जट्टां, अंदरून लाहौरी गेट, श्री अमृतसर।*

क्यों बेहाल हैं बुजुर्ग लेखक?

*-डॉ. महीप सिंघ**

कई वर्ष पहले मैंने मराठी का एक नाटक देखा था, नाम था 'संध्या छाया'। वह नाटक जयंत दलवी का लिखा हुआ था। पति-पत्नी बूढ़े हो गए हैं। संतान विदेश में जा बसी है। जो घर एक समय किलकारियों और हंसी-ठहाकों में गूंजता था वहां सन्नाटा छा गया है। पुरुष को थोड़ी-सी पेंशन मिलती है। बूढ़े पति-पत्नी का इसी से निर्वाह होता है। उनके जीवन की सभी रुचियां शिथिल हो गई हैं। खाने-पीने के शौक भी समाप्त हो गए हैं। पति-पत्नी का एक-दूसरे के होने का अहसास, उनकी आहट सुन कर होता है। दोनों के पास अब बातचीत का कोई विषय नहीं रह गया है, सिवाय इसके कि टमाटर कितने महंगे हो गये हैं! विदेश में जा बसे बेटे का कभी-कभी पत्र या फोन आ जाता है। उनके दो बच्चे स्कूल जाते हैं। पति-पत्नी दोनों काम करते हैं, फिर भी गुजारा बड़ी मुश्किल से होता है। अर्थ यह है कि बूढ़े मां-बाप को उनसे कुछ विशेष आशा नहीं करनी चाहिए।

आज के युग में यह कहानी किसी एक परिवार के वृद्ध-जनों की नहीं है। व्यक्ति की औसत आयु बढ़ती जा रही है। भारत जैसे देशों में वृद्ध-जनों के लिए आर्थिक संकट तो है ही, जिन देशों में सरकारों की ओर से उन्हें इस प्रकार की सुरक्षा मिली हुई है वहां वे मानसिक असुरक्षा और अकेलेपन से बुरी तरह पीड़ित हैं। भारत में भी यही सब है। ऐसा कौन-सा दिन है जब अखबारों में यह खबर नहीं आती कि अमुक क्षेत्र में किसी वृद्ध महिला या पुरुष अथवा दोनों की नृशंस हत्या कर दी गई!

'संध्या छाया' की गिरफ्त में आए लेखकों की चिंताएं, मन:स्थितियां और समस्याएं कुछ भिन्न प्रकार की हैं। आम लोगों की औसत आयु बढ़ी है तो उसी अनुपात में बुजुर्गों की भी आयु बढ़ी है। कुछ दशक पूर्व बहुत कम लेखक ऐसे थे जो साठ की आयु पार करते थे। प्रेमचंद को ५६ वर्ष की आयु प्राप्त हुई थी तो जयशंकर प्रसाद ५० वर्ष भी पूरे नहीं कर सके थे। आज किसी लेखक का ७० वर्ष की आयु पार कर जाना किसी को अचंभित नहीं करता। हमारे लेखक मुख्य रूप से दो-तीन व्यवसायों में से आते हैं--अध्यापन, पत्रकारिता, वकालत या इस प्रकार की कोई नौकरी, जिसमें उन्हें लिखने के लिए कुछ समय मिल सके। लेखिकाओं की स्थिति भी लगभग ऐसी ही है। कुछ गृहणियां बड़ी अच्छी लेखिकाएं हैं, क्योंकि घर की आर्थिकता का बोझ उनके पति संभाले रहते हैं। स्वतंत्र लेखन से आजीविका चलाने वाले लेखक तो उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। मेरा अनुमान है कि हिंदी के ८० प्रतिशत से अधिक लेखक अध्यापन कार्य से जुड़े होते हैं और उसी से सेवा-मुक्त होते हैं।

****H-108**, शिवाजी पार्क, पंजाबी बाग, नई दिल्ली-११००२६*

सरकारी या अन्य किसी प्रकार की सेवा से मुक्त व्यक्ति या तो अपनी पेंशन से जीवन की संध्या काटते हैं या सेवा-मुक्ति के पश्चात मिलने वाले प्राविडेंट फंड और ग्रेच्युटी की एकमुश्त रकम को बैंक में जमा करा कर उससे प्राप्त होने वाले ब्याज से। सेवा-मुक्ति के पश्चात ऐसे लोगों के पास कोई समयबद्ध कार्य नहीं रहता, इसलिए उनके बूढ़े होने की गति अधिक तेज हो जाती है। लेखक के सम्मुख सामान्यत: ऐसी स्थिति नहीं उत्पन्न होती। जब तक वह सेवारत रहता है लिखता रहता है, जब वह सेवा-मुक्त हो जाता है तो अधिक मुक्तभाव से लिखता है, बशर्ते वह अपने ही लेखन से थक या ऊब न गया हो। मेरा विश्वास है कि इस आयु में आकर लेखक बहुत सार्थक लेखन कर सकते हैं। इस दृष्टि से केंद्र सरकार तथा राज्य सरकारें कुछ महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं। इस आयु की सबसे बड़ी समस्या स्वास्थ्य है। बहुत कम ऐसे लेखक हैं जो ऐसी सेवा से मुक्त हुए हैं जिनमें इलाज संबंधी सभी खर्च सरकार सहन करती है। इस आयु में लेखकों की आय बहुत कम हो जाती है और आर्थिक संकट उन्हें सदैव घेरे रहते हैं।

आज की चिकित्सा इतनी महंगी है कि सामान्य व्यक्ति की सीमा से वह परे है। बीमा कंपनियां भी इस आयु में आए किसी व्यक्ति का स्वास्थ्य बीमा नहीं करती हैं। मैं समझता हूं कि संस्कृति मंत्रालय को ऐसे लेखकों की सूची बनानी चाहिए और उनके स्वास्थ्य पर व्यय होने वाले धन का बोझ वहन करना चाहिए। साहित्य अकादमी को यह दायित्व सौंपा जा सकता है। पारिवारिक दृष्टि से भी इस आयु के लेखक को कुछ विचित्र समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। वह पुत्र-पौत्रों के साथ रहता हो तो परिवार बहुत बड़ा हो जाता है। यदि संतान किसी अन्य नगर या देश में बस गई हो तो वह नितांत अकेला रह जाता है। बड़ा परिवार हो तो पुस्तकों से लदा हुआ उसका लिखने का कमरा सभी की आंखों में खटकने लगता है।

बहुत-सी सरकारी और गैर सरकारी संस्थान हैं, जिनके अनेक रमणीक स्थानों पर सभी सुविधाओं से युक्त अतिथि गृह होते हैं। कितनी विचित्र और दुखद बात है कि भारत में शायद ही किसी स्थान पर लेखकों के लिए कोई अतिथि गृह हो। दिल्ली जैसे महानगर में एक भी स्थान ऐसा नहीं है जहां लेखक इकट्ठे होकर अपनी साहित्यिक गोष्ठियां कर सकें। लेखकों की जैसी दयनीय स्थिति इस देश में है शायद ही संसार के किसी अन्य देश में हो। कुछ दशक पहले जब गुजराती के प्रतिष्ठित कवि उमाशंकर जोशी साहित्य अकादमी के अध्यक्ष थे, तब मैंने अनेक लेखक मित्रों सहित कई बार उनसे मिल कर इस बात का आग्रह किया था कि देश के कुछ भागों में लेखकों के लिए 'अतिथि गृह' बनने चाहिए। कम से कम उन स्थानों पर तो अतिथि गृह बनने ही चाहिए जहां साहित्य अकादमी के अपने क्षेत्रीय कार्यालय हैं। उन्होंने हमें इस दृष्टि से अनेक आश्वासन भी दिए थे, किंतु इस दृष्टि से कोई प्रगति नहीं हुई।

संस्कृति मंत्रालय प्रति वर्ष कुछ लेखकों-कलाकारों को कुछ क्षेत्रों में काम करने के लिए वरिष्ठ और कनिष्ठ शोध वृत्तियां देता है। यह बहुत उपयोगी योजना है। मैं समझता हूं कि इस योजना का विस्तार किया जाना

(शेष पृष्ठ ११७ पर)

अत्यधिक पीढ़ी-अंतराल कैसे कम हो?

-डॉ॰ निर्मल कौशिक*

चाणक्य-नीति में लिखा गया है, 'ते पुत्रा ये पितृभक्ता पिता यन्तु पोषक:' अर्थात् पुत्र वह है जो पितृ-भक्त हो और पिता वह है जो पुत्र का पालन-पोषण करे। यह बात पिता-पुत्र सम्बंधों की प्रगाढ़ता और निकटता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आज प्राय: यह देखने-सुनने में आता है कि नई पीढ़ी बड़ों का सम्मान नहीं करती। क्यों नहीं करती? यह एक विचारणीय प्रश्न है। अगर कोई बच्चा अच्छे कार्य करके अपने माता-पिता, अपने परिवार का नाम रोशन करता है तो हम उसका श्रेय उसके माता-पिता और उसके अच्छे पालन-पोषण अथवा अच्छे संस्कारों को देते हैं, लेकिन अगर कोई बच्चा दुष्कर्म करता है, समाज के लिए घातक सिद्ध होता है, तो उसके लिए माता-पिता को नहीं बल्कि बच्चे की संगति, समाज, परिवेश को दोष देकर हम उससे सम्बंध विच्छेद कर लेते हैं या फिर बच्चे को भाग्य के खूंटे से बांध कर संतोष कर लेते हैं। बाबा फरीद जी ने अपनी बाणी में एक श्लोक के माध्यम से मानव के कर्मफल की ओर संकेत करते हुए इस बात की ओर संकेत किया है कि मनुष्य अपने जीवन में जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल मिलता है :

फरीदा लोड़ै दाख बिजउरीआं किकरि बीजै जटु ॥
हंढै उंन कताइदा पैधा लोड़ै पटु ॥ (पन्ना १३७९)

किसान बबूल बोकर अंगूर (दाख) की कामना नहीं कर सकता। ऊन कात कर रेशमी वस्त्र नहीं पहना जा सकता अर्थात् जो बोओगे वही काटोगे। बच्चों को बचपन में जैसा परिवेश मिलेगा, जैसी परवरिश होगी वैसा ही व्यवहार वे बड़े होकर करेंगे। जीवन में आचरण का बहुत महत्त्व है और आचरण की नींव बचपन में ही डाली जाती है। हमें दूसरों से वैसा ही आचरण करना चाहिए जैसे आचरण की अपेक्षा हम दूसरों से करते हैं। जो माता-पिता परिवार में अपने बड़े बुजुर्गों का सम्मान करते हैं, अतिथियों का सम्मान करते हैं उनके बच्चे भी यह सब देखते हैं। उन्हें यह सब कुछ बताने की, सिखाने की आवश्यकता नहीं होती। वे भी बड़े होकर अपने माता-पिता का सम्मान करते हैं। जिस परिवार में बड़ों का अपमान होता है उस घर के बच्चे बड़ों का सम्मान करना कैसे सीख सकते हैं?

नई पीढ़ी को अच्छे संस्कार देना माता-पिता का दायित्व है, मगर अच्छे संस्कार वही माता-पिता दे सकते हैं जिनके अपने संस्कार अच्छे होंगे। आप बच्चों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करें। जैसा आप उन्हें बनाना चाहते हैं वैसा स्वयं बनें, जैसा व्यवहार उनसे पाना चाहते हैं वैसा व्यवहार उनसे करें। कवि तुलसीदास ने कहा है :

गुरु पितु मातु स्वामी हित बानी।
बिनु बिचारि करिअ भलि जानी।

गुरु माता-पिता और स्वामी की बात सदैव हितकारक होती है, अत: इसे बिना भले-बुरे का विचार किए अपना लेना चाहिए। यह तभी सम्भव है अगर माता-पिता इसका उदाहरण स्वयं प्रस्तुत करें। बच्चे परिवार और समाज से ही सब कुछ ग्रहण करते हैं और उसे उसी रूप में परिवार और समाज को सूद सहित लौटा देते हैं। अचार्य भर्तृहरि अपने 'नीतिशतक' में लिखते हैं :
येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञान न शीलं गुणो न धर्म: ।

*विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सरकारी बृजेन्द्रा कॉलेज, फरीदकोट-१५१२०३ (पंजाब)।

ते मर्त्य लोके भुवि भारभूता मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।

अर्थात् जिस व्यक्ति के पास न विद्या है, न तप है, न दान है, न पुण्य है, न ज्ञान है, न शीलादि गुण है, न धर्म है, वह मनुष्य-रूप में पृथ्वी पर पशु विचर रहा है। ये सब गुण सुचेत और अचेत रूप से हमारे द्वारा बुजुर्गों से ग्रहण किये जाते हैं। अगर पीढ़ी-अन्तराल को समाप्त करना है तो ये सब बातें बच्चों को परिवार प्रदान करे। अब प्रश्न यह है कि पीढ़ी-अन्तराल कब नहीं था? युगों-युगों से नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में मतभेद रहे हैं। नई पीढ़ी की सोच सदैव अग्रगामी और अत्याधुनिक होती है। वैज्ञानिक प्रगति ने उन्हें सदा नया वैचारिक धरातल प्रदान किया है और उनके सामने नई चुनौतियां खड़ी की हैं। ऐसी परिस्थिति में उनका पुरानी पीढ़ी से अन्तराल स्वाभाविक है। अन्तराल तो रहेगा ही। इसे कम करने का प्रयास किया जा सकता है। टकराव और तनाव को कम किया जा सकता है। दो व्यक्तियों के दृष्टिकोण में अन्तर होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। किसी भी कार्य की प्रतिक्रिया भी स्वाभाविक क्रिया है। इसके लिए नई पीढ़ी को बड़ों का सम्मान करना चाहिए जिसकी आदत उन्हें बचपन से ही डालनी चाहिए। अच्छा आचार-व्यवहार ही युवा पीढ़ी को सही मार्गदर्शन और देश को अच्छे नागरिक प्रदान कर सकता है। वैसे भी आचार-व्यवहार से ही मनुष्य की पहचान होती है। अगर हम अपने बड़ों का सम्मान करते हैं तो हमारा भी गौरव उन्नत होता है, समाज में हमारी प्रतिष्ठा बढ़ती है। बड़े लोग जैसा संदेश, परिवेश और देश प्रदान करेंगे युवा पीढ़ी वैसी ही बनेगी। युवावर्ग इस पीढ़ी-अन्तराल के लिए उतना उत्तरदायी नहीं है जितनी कि बुजुर्ग पीढ़ी।

संसार में श्रेष्ठ लोग/महान लोग/बड़े लोग जैसा आचरण करते हैं वह प्रमाणित होकर लोगों के लिए अनुकरणीय हो जाता है। अतः बुजुर्ग पीढ़ी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आने वाली पीढ़ी उनकी बातों को प्रमाणित मान कर अनुसरण करेगी। उन्हें अपना आचरण युवा पीढ़ी के हितकारक बनाना चाहिए।

बुजुर्ग पीढ़ी की विडंबना यह है कि वह अपनी बात को मनवाने में अपनी प्रतिष्ठा को दांव पर लगा देते हैं जो कि अनुचित है। यह जरूरी नहीं है कि आप ही सदा सही हों। भावी पीढ़ी को तर्कसंगत बातों से, अपनी बात से सहमत किया जाना चाहिए, हठ या बलपूर्वक नहीं। आज विज्ञान का युग है। बुजुर्ग पीढ़ी के दृष्टिकोण को भी आधुनिक और वैज्ञानिक बनाने की जरूरत है। अपने जमाने की दुहाई देना बहुत ज्यादा बुद्धिमता नहीं है। बुजुर्गों को भी नए जमाने की सुख-सुविधाओं का लाभ लेना चाहिए। इससे युवा पीढ़ी का भी मनोबल बढ़ेगा, वे भी बुजुर्गों के इस प्रयास से उत्साहित होंगे और इससे टकराव, तनाव तथा अन्तराल कम होगा। बुजुर्गों को चाहिए कि वे युवा पीढ़ी को कुछ स्वतंत्र विचार-शक्ति के लिए अवसर प्रदान करें, अपने सिद्धांतों, निर्णयों को उन पर थोपें नहीं, निर्णायक न बनकर केवल उनके मार्गदर्शक बनें। उन्हें केवल संदेश दें, आदेश न दें।

बुजुर्गों को चाहिए कि वे युवा पीढ़ी को बड़ों का आदर करना सिखाएं आज्ञाकारी वे स्वयं बन जाएंगे। समय की नजाकत को समझते हुए बुजुर्ग स्वयं को बदलने का भी प्रयास करें। बच्चों के कामों में अनावश्यक दखलंदाजी न करें। बड़ों को चाहिए कि वे संयम से काम लें। आप वाणी से नहीं अपने व्यवहार से उन्हें समझाने का प्रयास करें। अपने आप को युवा वर्ग से अलग रखने की बजाय युवा पीढ़ी के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करें। परिवर्तनशील परिवेश में स्वयं को ढालने का प्रयास करें। यह पीढ़ी प्रकृति का शाश्वत नियम है। इसे स्वीकार करने में ही मानव का हित है। कहा भी है कि "फल वाले वृक्ष झुक जाते हैं"। गुरबाणी में भी कहा है : *"मिठतु नीवी नानका गुण चंगिआईआ ततु ॥"*

अपनी जीवन-शैली में विनम्रता लाएं। युवा पीढ़ी के लिए प्रेरक बनें। भारतीय संस्कृति के अमूल्य संदेश को अपने जीवन में धारण करें। बुजुर्ग प्राचीन काल से जाने-माने गए ऊंचे और इस प्रकार ये आदर्श नयी पीढ़ी को सिखायें।

वृद्धावस्था में जो बुजुर्ग आत्म-सम्मान से जीना चहते हैं उन्हें बच्चों पर निर्भर रहने की धारणा का परित्याग करना होगा। वे स्वाभिमान से जीना सीखें। बच्चों पर बोझ बनने की परिपाटी को तिलांजलि देने का युग आ गया है। विचारधारा में परिवर्तन ही जिन्दादिली है। इस संदर्भ में एक कवि की पंक्तियां अत्यंत सार्थक हैं:

विश्व में परिवर्तनों का नाम केवल जिंदगी,
रात की इन तड़पनों का नाम केवल जिंदगी,
हो गया जो थिर उसे पाषाण कहना चाहिए।
एक गतिमय जीव को इंसान कहना चाहिए।
जिन विचारों को बदलने की कभी आदत नहीं,
उन विचारों को सदा शमशान कहना चाहिए।

भारतीय संस्कृति में सदैव बुजुर्ग पीढ़ी ने भावी पीढ़ी का मार्गदर्शन किया है, लेकिन परिवेश को ध्यान में रख कर युवा वर्ग को उत्साहित करने का दायित्व भी उन्हीं का है। सार्थक और रचनात्मक विचारधारा वाले बुजुर्ग ही पीढ़ी-अन्तराल को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।



कविता

बुढ़ापे की पुकार

*-स. चरण सिंघ चंन बोलेवालिया**

है मंदा हाल बुढ़ापे का, कभी इस कोने कभी उस कोने।
झोड़ा हुआ अकेलेपन का, कभी इस कोने कभी उस कोने।
वह कहां वक्त भूलता है, इतने सुंदर अनुपम यौवन का,
किसी बात की फिक्र-परवाह न थी, मजबूत चौखटा था तन का,
कहां गया यौवन, फिरता ढूंढता हूं, कभी इस कोने कभी उस कोने।
जी करता था कभी न जाये, प्यारा सा वक्त वो बचपन का,
मां की गोद नसीब तभी थी, वह बोलना तोतलेपन का,
वही बचपन ढूंढ रहा हूं, कभी इस कोने कभी उस कोने।
कई बार कहा लड़कों को, आंखों का इलाज करा दें,
कानों से ऊंचा सुनता है, किसी डॉक्टर से चैक करा दें,
व्यथा न सुने कोई, फिरता हूं, कभी इस कोने कभी उस कोने।
बिटिया मास में एक-दो बार, पास बाबुल आकर हो जाती है,
दुख-सुख सांझा कर जाती है, गले लगकर रो जाती है,
फिर भी आये, यह चाह रहा हूं, कभी इस कोने कभी उस कोने।
न रोटी-पानी का फिक्र किसी को, मिलती लंगड़े डंगी है,
पशुओं वाले छप्पर में, अब बूढ़े की मंजी है,
'बोलेवालिया' कहे, जो जग में हो रहा, कभी इस कोने कभी उस कोने।



**श्री हरिगोबिंदपुर रोड, गांव व डाक उमरपुरा, बटाला-१४३५०५ (गुरदासपुर) मो : ९३५७२-९४२१२*

वर्तमान पीढ़ी तथा उसके बुजुर्गों के प्रति कर्त्तव्य

*-स. गुरमुख सिंह राही**

बचपन, यौवन और बुजुर्ग अवस्था मानवी जीवन के तीन पड़ाव हैं। माता-पिता बड़ी मन्नतें मानकर वाहिगुरु से पुत्र की दात मांगते हैं। जब पुत्र पैदा होता है तो उसकी परवरिश बहुत चावों व खुशियों तथा बड़े लाड़-प्यार के साथ की जाती है। बहुत ही बड़ी-बड़ी आशाएं लगाई जाती हैं कि पुत्र बड़ा होकर बुढ़ापे में हमारा सहारा बनेगा। माताएं लाखों ही दुख सहन् कर लेती हैं परंतु अपने पुत्र का दुख नहीं सहन् कर सकतीं।

माता-पिता स्वयं भूखे रहकर भी पुत्र की हरेक मांग पूरी करते हैं। अच्छा पढ़ाया-लिखाया जाता है। ऋण उठाकर भी महंगे से महंगे स्कूलों में ऊंची शिक्षा दिलाई जाती है। क्यों? क्योंकि उन्होंने कई प्रकार के सपने बुने होते हैं, अनेक प्रकार की आशाएं लगाई होती हैं। जब पुत्र पढ़-लिख जाता है तो एक नयी रौशनी जन्म लेती है। पुत्र का विवाह ऊंचे से ऊंचे खानदान में करने की योजनाएं तैयार होने लगती हैं। अंत में वह दिन आता है जब बहू घर में पैर डालती है। माता-पिता बहुत गर्व से बताते हैं कि हमारी बहू इतना रुपया कमाती है। वह फलां कार्यालय में सरकारी आफिसर है।

परंतु कुछ समय बाद ही कहानी सारी की सारी उलट जाती है। माता-पिता खुद को दुखी महसूस कर रहे होते हैं। पुत्र और बहू को उनकी कोई परवाह नहीं होती। पौत्र टी.वी. पर गेम में मस्त होता है। उनके पास माता-पिता की सेवा तो दूर उनके पास बैठने तक का समय नहीं होता। जो आशाएं लगाई हुई थीं सभी ध्वस्त हो जाती हैं। सपनों के महल ढह-ढेरी हो जाते हैं। बुजुर्ग माता-पिता बैठे मात्र चिंतामग्न देखे जाते हैं।

प्रिंसीपल तेजा सिंघ के कहे अनुसार-- "घर ईंटों या पत्थरों के बने कोठे को नहीं कहते। घर से भाव वह स्थान है जहां मनुष्य का प्यार और रीझें पलती हैं, जहां बचपन में मां, बहिन एवं भाई से प्यार लिया होता है, जहां जवानी में सारे जहान को गाह (घूम-फिर) कर, लिताड़ कर, कमाई करके वापस आने को जी करता है, जहां बुढ़ापे में बैठकर सारे जीवन के झमेलों से मिले अवकाश को आराम के साथ काटने में यूं स्वाद आता है जैसे बचपन में मां की झोली में आता था।"

यदि मनुष्य को घर में से वह प्यार, सकून न मिले जिसको कि उसने घर बनाते समय सोचा था तो जीवन एक बोझ बनकर रह जाता है। मनुष्य की सारी आयु तो घर बनाते हुए ही व्यतीत हो जाती है और अंत में उसको घर में बोझ समझा जाता है। कोई उसको उचित ढंग से रोटी-पानी भी नहीं पूछता। यह स्थिति किसी एक घर की नहीं, बल्कि अधिकांश घरों में बुजुर्गों के साथ ऐसा व्यवहार होता है। अंत में बुजुर्ग 'जो सुख छज्जू दे चुबारे ओह सुख बलख ना बुखारे'

**परूफ रीडर, गोल्डन आफसेट प्रेस, रामसर रोड, श्री अमृतसर, मो: ९८८८४-५४५९३*

जैसी कहावतों को स्मरण कर-कर के चिंता करते रहते हैं, क्योंकि अब तो उनको दुख ही दुख दिखाई देते हैं।

अपने समाज में कई तो इस तरह के पुत्र भी हैं जो बुजुर्गों को वृद्ध-घरों की ओर धकेल देते हैं। वे समझने लग जाते हैं कि ऐसा करके शायद हम सुखी हो जाएंगे, हमें घर में कोई रोकने-टोकने वाला नहीं रहेगा, जहां जी करेगा वहां जायेंगे, अपनी मनमर्जी करेंगे, हमें पूर्णतः छूट होगी, रज-रज कर जवानियां मानेंगे, लुत्फ लेंगे। परंतु सोचने वाली बात यह है कि हमने भी कोई सदैव काल के लिए जवान नहीं रहना, यह यौवन सदैव नहीं रहना। हमने भी अंत में बुजुर्ग अवस्था में आना ही है। ये केश जो आज काले हैं ये सदैव काले नहीं रहेंगे। पंजाबी कवि शाह मुहम्मद कुछ इस प्रकार कहते हैं:

सदा नहीं जवानी ते ऐश माणे,
सदा नहीं जे बाल वरेस मीआं!
सदा नहीं जे दौलतां फील घोड़े,
सदा नहीं जे राजिआं देस मीआं।
'शाह मुहम्मदा' सदा न रूप दुनीआं,
सदा रहिण ना कालड़े केस मीआं।

बुढ़ापा एक बोझ नहीं, इसको आसानी से काटा जा सकता है। परंतु इस दंपत्ति परिवार की भांति नहीं जिसकी मैं बात करने जा रहा हूं।

कहते हैं कि यह पुत्र अपनी घरवाली का कहा मानकर अपने बुजुर्ग पिता को कंधों पर उठा कर चल पड़ा तथा पीछे-पीछे चल पड़ी उसकी घरवाली। नदी में जाकर थोड़ा गहरा पानी देखकर बुजुर्ग को फेंकने लगा तो बुजुर्ग बोल उठा--

बुजुर्ग- पुत्र! यहां न फेंक।
पुत्र- क्यों बापू, यहां क्यों न फेंकूं?
बुजुर्ग- क्योंकि यहां मैं अपने पिता को फेंक कर गया था।

पुत्र थोड़ा और आगे होकर फेंकने लगा तो बुजुर्ग फिर बोल उठा--

बुजुर्ग- हीरिआ, यहां भी न फेंक।
पुत्र- क्यों बापू? यहां क्यों न फेंकूं?
बुजुर्ग- पुत्र! मुझे थोड़ा और आगे करके फेंक क्योंकि कल को तेरी बारी भी आनी है, तेरे बच्चे तुझे यहां आकर फेंक जाएंगे।

न जाने कब बुजुर्ग का पौत्र, जो सात-आठ वर्ष का था, इनके पीछे-पीछे पैर दबाता हुआ आ गया था और नदी किनारे खड़ा सारी बात सुन-समझ रहा था। वह तुरंत बोल उठा--"हां बापू, जगह बहुत सुंदर है। मैं यहां आकर अपने पापा को फेंकूंगा।"

इतना सुनते ही पुत्र की आंखें खुल गईं। उसने पीछे देखा तो उसकी घरवाली भी आंखें पोंछ रही थी। उनको सच्चा ज्ञान हो गया। वे बुजुर्ग को घर ले आये।

देखने में आया है कि छोटे बच्चों का बुजुर्गों (दादा-दादी, नाना-नानी) के साथ प्यार होता है। पुत्र ने तो बुजुर्ग की जीवन-लीला समाप्त कर देनी थी परंतु बच्चे ने बुजुर्ग को जीवन दिया और साथ ही अपने पिता की विचारधारा भी बदल कर रख दी।

बुजुर्गों के प्रति हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं। उन्होंने हमें पाल-पोस कर पढ़ाया-लिखाया होता है, हमें ज्ञान दिया होता है कि समाज में कैसे रहना एवं विचरण करना है। हमें उनके स्वास्थ्य, दवा-दारू और जीवन की अन्य आवश्यकताओं की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसके उलट हमारे समाज में होता

क्या है? हमारी महिलाएं, बहिनें गुरुद्वारों, मंदिरों में जाकर तो सारा-सारा दिन सेवा करती हैं (इसमें कोई बुरी बात नहीं बल्कि यह सेवा बहुत दुर्लभ होती है) परंतु घर में उन्होंने कभी बूढ़ी मां या बूढ़े पिता की पानी पिलाने की सेवा नहीं की होती। हमें जरूरत है अपनी सोच बदलने की उनके प्रति सेवा-भावना लाने की, क्योंकि सेवा तो घर से ही शुरू करनी चाहिए। बुजुर्गों की सेवा सही अर्थों में परमात्मा की सेवा है। सेवा के साथ ही सम्मान मिलता है।

दूसरी बात, पहले सांझे परिवार होते थे, बुढ़ापा आसानी से कट जाता था। सांझे परिवारों में अकेलापन नहीं था। शिक्षा के प्रसार से बेटियां-बेटे अकेले रहना पसंद करते हैं। तीसरी बात, इलेक्ट्रोनिक मीडिया ने भी इसके ऊपर बुरा प्रभाव डाला है। क्या बच्चे और क्या महिलाएं, सारा दिन टी. वी. के सामने होते हैं। यदि कहीं माता या पिता भूल-चूक से आवाज भी दे दें कि पुत्र, रोटी पका लेनी थी, हमें पानी ही पिला दे तो झट कड़कती आवाज आती है, "इतनी जल्दी भोखड़ा (भूख) लग गया? उतार देती हूं, राखी का स्वयंवर देख कर।" दरअसल टी. वी. तथा मीडिये को बुजुर्गों के प्रति सकारात्मक सोच का प्रसार करना चाहिए। इस प्रकार के सीरियल तैयार करने चाहिएं जिनके द्वारा बुजुर्गों की समस्याओं को लोगों के सामने रखा जा सके।

बुजुर्गों की जगह वृद्ध-घरों में नहीं है। उनका घर और समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। वृद्ध-घरों का उनके नाम पर निर्माण तो होता है परंतु क्या उनको वहां वह सुख-आराम मिल पाता है जिसकी उनको बुढ़ापे में आवश्यकता होती है? देखने में आया है कि हर गली-मोहल्ले में वृद्ध-आश्रमों के नाम पर जाली उगराहियां होती हैं तथा लाखों ही रुपया उनके नाम पर एकत्र करके हजम कर लिया जाता है। हमें घरों में ही उचित प्रबंध करने चाहिए, बुजुर्गों की सेवा की ओर उचित ध्यान देना चाहिए। यदि पुत्र-बहू नौकरीपेशा हैं तो वे उनके लिए कोई अच्छा नौकर रख सकते हैं।

सरकार का भी कर्त्तव्य बनता है कि जब कोई मनुष्य ५० वर्ष से ऊपर हो जाए तो वह उसकी ओर विशेष ध्यान देना शुरू करे। उनकी दवा-दारू पूर्णत: नि:शुल्क होनी चाहिए तथा उनको गुजारे योग्य पेंशन भी देनी चाहिए ताकि वे अपने जीवन के अंतिम दिन आराम से व्यतीत कर सकें।

बुजुर्गों ने निरोग समाज का सृजन करना होता है। उनको भी अपनी आवश्यकताओं के प्रति औरों को सुचेत करना चाहिए। इसके साथ-साथ उनको भी अपनी सोच को बदलना चाहिए तथा बच्चों के प्रति मोह जतलाते हुए उनको नयी पीढ़ी को सिक्ख इतिहास और गुरु साहिबान की जीवन-गाथा की भरपूर जानकारी देनी चाहिए, ताकि बच्चे गुरबाणी तथा सिक्खी विरासत से अवगत हों। इस तरह उनका समय भी बढ़िया ढंग से व्यतीत होगा तथा वे बच्चों को विकारों से दूर रखकर समाज को एक नयी दिशा भी दे सकते हैं।



मीडिया भी बुजुर्गों जैसा रोल निभाये!

*–स. सतनाम सिंघ कोमल**

आज का मनुष्य शारीरिक तौर पर भले ही सुख में है लेकिन मानसिक तौर पर दुखी है। पुराने समय के लोग शारीरिक तौर पर दुख में थे परंतु मानसिक तौर पर सुख में। यह सच्चाई हमें कबूल करनी पड़ेगी। जितनी सुविधाएं तन को सुखी रखने के लिये हैं पुराने समय में नहीं थीं। गेहूं हाथ से पीसी जाती थी। जहां भी जाना होता था पैदल जाया जाता था। फिर साइकिल आया, तांगा आया, मोटर गाड़ी का युग आया। अब तो कहने की बात ही नहीं रही। इस प्रकार मनोरंजन के साधन भी बहुत कम होते थे, जिनमें हम नौटंकी या रामलीला गिन सकते हैं। इनको देखने के लिए भी लोग दूर-दूर जाते थे। अब समय में बहुत बदलाव आ चुका है। विशेषत: इन तीन दशकों में तो इन्कलाब ही आ गया है। इलेक्ट्रोनिक मीडिया की तो कहने वाली कोई बात रही ही नहीं।

पहले पहल दूरदर्शन पर सरकार का कब्जा था। वो जैसे चाहती थी इसे इस्तेमाल करती थी, इसको अपने हक में इस्तेमाल करती थी। १९८० तक तो ऐसे ही चलता रहा। दूरदर्शन का काफी पासार हुआ। मुझे याद है कि श्री हरिमंदर साहिब से गुरबाणी का प्रसारण करने के लिये सिक्खों को मोर्चा लगाना पड़ा था। सरकार इजाजत नहीं देती थी। मगर आज इतनी आजादी हो गई है कि बस, पूछो मत!

मीडिया के आजाद होने से बहुत कुछ बदलाव आ गये हैं। केबल युग ने सारी दुनिया को एक गांव में बदल दिया है। अब जहां हमें श्री हरिमंदर साहिब से सर्वसांझी विश्व-कल्याणकारी गुरबाणी का कीर्तन सुनने को मिल रहा है वहीं केबल ने नग्नता और अश्लीलता भी हमारे घर में ही परोस दी है। अब देखने में भी संयम से काम लेना पड़ेगा। धार्मिक वृत्ति के लोग तो गुरबाणी सुनेंगे मगर युवा पीढ़ी तो अपने टेस्ट मुताबिक ही देखेगी और इसके नतीजे समाज के लिये अच्छे नहीं होंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि मीडिया की ज्यादा आजादी नुकसानदेह होगी जिसके नतीजे समाज को भुगतने पड़ेंगे!

आज जब घर-घर में टी. वी. हो गये तो इसके साथ हर घर की दुनिया अपनी हो गई है। केबल पर लगभग २०० चैनल आते हैं। आप अपनी पसंद का प्रोग्राम देखते हैं। प्रिंट मीडिया भी बहुत विकास करता दिखाई देता है परंतु इलेक्ट्रोनिक मीडिया इसको पीछे छोड़ता नज़र आ रहा है। पढ़ने के लिये सुबह अखबार आता है तो अखबार बासी लगता है कि ये खबरें तो हम रात देख कर सोये थे। कारण? इलेक्ट्रोनिक मीडिया इतना तेज है कि घटना घटी तो लाईव शुरू हो जाता है। बेशक आप अपनी पसंद का चैनल देख सकते हैं परंतु सवाल तो यह है कि क्या मीडिया सब लोगों के साथ इंसाफ करता है? इसका जवाब 'नहीं' में मिलेगा। क्यों? इसलिए कि इसमें सब कुछ देखने लायक नहीं है। जो नंगेज, वहम-भ्रम, पाखंड और डर दिखाया जा रहा है वो समाज के प्रति ग़ैरजिम्मेदाराना है

*२४८, अरबन अस्टेट, लुधियाना-१४००१०

और नाकाबिले मुआफ है। इससे बच्चे, जो हमारे समाज, हमारे देश का भविष्य हैं और युवा गुमराह होंगे, उनकी सोच अपंग होगी इसलिए आज के विशेष प्रसंग में मीडिया को भी बुजुर्गों जैसा सियाना रोल अदा करने की जरूरत है।

कभी गीत-संगीत रूह की खुराक हुआ करता था। आज गीत जैसे मात्र देखने की चीज बन गए हैं। गीत गाने वालों की पोशाक, उनका नाचना बच्चों को आकर्षित करता है। जैसे गायक की दाढ़ी ट्रिम की हुई, जैसे उसके सिर के बालों को जैल लगी हो वैसे ही युवा लोग लगायेंगे। यह प्रभाव आम दिखाई देता है। धर्म से मुंह मोड़ने का यह बहुत बड़ा कारण है। मीडिया का यह रोल खतरनाक है।

दो-दो, तीन-तीन वर्षों से चल रहे धारावाहिक समाज को कोई दिशा नहीं देते। ये धारावाहिक सच्चाई से कोसों दूर हैं। ये सामाजिक कद्रों-कीमतों का हनन करते हैं। मैं तो समझता हूं कि जिनके पास समय है लेकिन उनकी उनको इस समय का इस्तेमाल करना नहीं आता वे लोग ही धारावाहिक की चपेट में आते हैं। भला अमीर वर्ग की समस्या का आम वर्ग से क्या लेना-देना है? ८० प्रतिशत लोग तो इस देश में रोजी-रोटी के लिए मेहनत करते हैं फिर भी अतिआवश्यक सुख-सहूलतें भी उन्हें नहीं मिलतीं। यह सब कुछ मीडिया पर व्यापारिक तौर पर तो फिट बैठता है परंतु समाज के प्रति भी उसकी कुछ जिम्मेदारी बनती है। वह कहां गई? जीवन-युक्ति, इन्कलाबी कद्रें-कीमतें, अच्छे समाज की मूल जरूरतें हैं, जिनकी तरफ भी ध्यान देने की सख्त जरूरत है, जिसके लिए मीडिया की प्रमुख जिम्मेदारी बनती है।

दादी मां और नानी मां की कहानियां भी टी.वी. ने छीन ली हैं। उनमें वीर-गाथायें होती थीं, प्रेरणा-प्रसंग होते थे और धर्म की बात होती थी। अब क्या फिल्में, क्या धारावाहिक, ये सब समाज को वो कुछ नहीं दे रहे जो समाज की जरूरत है। ग्लैमर की दुनिया की बातों का आम आदमी से कोई सरोकार नहीं है। धारावाहिक यह नहीं बताते कि जिंदगी कैसे जीनी है। वो तो युवकों-युवतियों को सिखाते हैं कि मुहब्बत कैसे करनी है, जो माता-पिता के साथ क्लेश का कारण बनती है। इनसे यह प्रेरणा जरूर मिलती है कि सब सासें अपनी बहुओं को 'आकर्षक' देखना चाहती हैं और सब बहुएं अपनी सासों को 'स्मार्ट' देखना चाहती हैं। सभी अपने हक के लिये तो जागरूक हो जाती हैं मगर अपने फर्ज के लिए नहीं।

रही गीतों की बात तो आम आदमी अपने परिवार के साथ बैठ कर उनकी वी.डी.ओ. देख ही नहीं सकता। हमारे आज के तथाकथित पंजाबी गीत तो हिंदी की फिल्मों के गीतों को भी पीछे छोड़ गए हैं। मैं तो कभी सोचता हूं कि जो गीतकार या गायक हैं क्या इनके लिखे या गाये गीत क्या ये खुद अपनी बेटी-बहन के साथ बैठ कर देख या सुन सकते हैं? क्या यह सब दूसरे लोगों के लिए ही है? इस पे सितम यह भी है कि कहने को ये लोग समाज में 'पंजाबी मां-बोली की सेवा' कर रहे हैं और कई संस्थाएं इनको सम्मानित भी करती हैं।

आज का मनुष्य महंगाई के इस युग में मेहनत से अपना पेट पालता है। समय की कमी उसे खलती है। वो टी.वी. के सामने खबरें ही देखनी चाहे तो उसे खबरें कम और विज्ञापन ज़्यादा देखने को मिलेंगे। आदमी मायूस हो जाता है। उसके बहुमूल्य समय को बर्बाद करना मीडिया का हक नहीं, मगर ऐसा

किया जाता है। न चाहते हुए भी आदमी को यह सब देखना पड़ता है। शायद यह मीडिया की मजबूरी होगी। कई बार तो ऐसा होता है कि किसी घटना का समाज से कोई सरोकार नहीं होता परंतु उसको इस ढंग से दिखाया जाता है कि लोग उसे जरूर देखें।

बहुत सारी कमियों के बावजूद अच्छे प्रोग्राम भी होते हैं जिनको देख कर आदमी कादर की कुदरत बलिहार जाता है। जानवरों की अपनी दुनिया है। कुदरत रानी के रचे हुए अद्‌भुत नजारे हैं। दुनिया के बारे हमको कितनी जानकारी मिलती है! धार्मिक प्रोग्राम हैं। मैं तो कहूंगा कि ये आज हर आदमी की जरूरत हैं। गुरबाणी जो जीवन-युक्ति है, मन का सकून है। कथा, कीर्तन हमें कादिर से जोड़ते हैं। ये प्रसारण आदमी को उसकी अहमियत बताता है कि तेरा कर्म क्या है, तेरी वास्तविक जरूरत क्या है, तूने किसका त्याग करना है और किस अच्छे गुण को अपनाना है, गुरु के प्रति क्या फर्ज हैं, मानवता के प्रति क्या फर्ज हैं!

आज जब श्री हरिमंदर साहिब से सुबह कीर्तन देखने-सुनने को मिलता है तो उसका आनंद लेने वाले आनंद लेते हैं। जब गुरु जी के पावन निर्मल वचनों में प्रभु की सिफत-सालाह होती है तो मन आनंदित होता है, मन को सुकून मिलता है। यह ऐसा आनंद है जिसकी भाग-दौड़ के समय में जीवन की जरूरत भी है। घर बैठे ही श्री हरिमंदर साहिब से हो रहा प्रसारण हम सुन सकते हैं, देख सकते हैं। ऐसे प्रोग्रामों के लिये मीडिया शाबाश का हकदार है। इससे आम आदमी को अच्छा जीवन जीने के लिये प्रेरणा मिलती है, इंसानी गुणों को धारण करने की प्रेरणा मिलती है। यह मीडिया की आम आदमी को बहुत बड़ी देन है। हर आदमी को चाहिये कि उसके पास जितना समय है सुनने का, देखने का, उसे ऐसे कार्यक्रम जरूर देखने चाहियें।

जब अकेला दूरदर्शन था तो सरकार की मर्जी थी कि उसने क्या देना है लोगों को, परंतु आज मीडिया आजाद है। आज भ्रष्टाचार और हाकिम लोगों की मनमानी की खबरें दिखायी जाती हैं तो इससे सियासी लोगों को अपनी 'सियासी मौत' का डर रहता है और वे महसूस करने को बाध्य हो जाते हैं कि वे लोग समाज के आगे जवाबदेह हैं। अब तो मीडिया उनके बखिये उधेड़ता है। ये अच्छी बातें हैं जो मीडिया का फर्ज भी बनता है। स्वास्थ्य के बारे में जो दिखाया जाता है वो भी ठीक है। खान-पान, योगा वगैरा भी लाभदायक है। डॉक्टरों के परामर्श भी हमें जागरूक करते हैं। रसोई में भोजन तैयार करने के लिए हमें बताया जाता है। जंगली जीवों के बारे में जानकारी भी आदमी-कुदरत के निजाम को समझने के लिए दी जाती है।

वैसे हर चीज के नेगेटिव और पॉजटिव पक्ष होते हैं। अत: मीडिया अपनी जिम्मेदारी को समझता हुआ अपना बुजुर्गों वाला सियानप भरा रोल अदा करे क्योंकि छोटे परिवार बनने से बुजुर्ग तो हमने वृद्ध-आश्रमों में भेज दिये। अब तो टी. वी. ही हमारे 'दादा-दादी', 'नाना-नानी' हैं। इसलिए मीडिया जो भी दिखाये सोच-समझ कर दिखाये, जिसका बुरा प्रभाव समाज पर न पड़े। यह हर जागरूक मनुष्य की अपने समाज के प्रति जिम्मेदारी बनती है।

वाहिगुरू हमारे प्रोड्यूसरों, डायरेक्टरों, कलाकारों को सुमति दे कि वे समाज को वो सब कुछ दें जिसकी उनको जरूरत है। उन्हीं प्रोग्रामों को प्रसारित किया जाये जो समाज को सही दिशा दें, जो समाज के प्रति अपनी जागरूकता का सबूत दें। आखिर वो भी तो

हमारे समाज का ही हिस्सा हैं। मैं तो यह भी कहूंगा कि उनकी जिम्मेदारी सबसे ज्यादा है। सनम्र सुझाव है कि व्यापारिक नुक्ता-निगाह से जो कोई नुकसान भी होता है हमें उसको सहन कर लेना चाहिये। मीडिया के लोग विशेषत: इलेक्ट्रोनिक मीडिया के लोग ऐसे हैं जैसे घर के बुजुर्ग हैं, जो अपनी जिंदगी के तजुर्बे से हर बात करते हैं। कोई उनसे सलाह मांगता है तो वे अपने तजुर्बे के आधार पर देते हैं। यही उनकी उम्र का तकाजा है। समाज को इसकी जरूरत है। कुछ बातें हमें समय ही सिखाता है। यह एक हकीकत है जिसको झुठलाया नहीं जा सकता।



क्यों बेहाल हैं बुजुर्ग लेखक?

(पृष्ठ १०७ का शेष)

चाहिए। एक सौ करोड़ से अधिक जनसंख्या वाला हमारा देश बहुत विशाल है, किंतु कुल साढ़े तीन करोड़ जनसंख्या वाले देश कनाडा में लेखकों को अपने सम्मेलन करने, अपनी पुस्तकें प्रकाशित कराने, उन्हें अनेक प्रकार की शोध वृत्तियां देने जैसी जितनी सुविधाएं प्राप्त हैं उतनी अपने देश में नहीं हैं। संस्कृति मंत्रालय को सत्तर वर्ष से अधिक आयु वाले लेखक-लेखिकाओं के लिए अलग से कुछ शोध वृत्तियां देने का विचार करना चाहिए। इस आयु का कोई लेखक यदि उपन्यास, काव्य, नाटक अथवा आलोचना ग्रंथ लिखना चाहता है तो उसे न केवल कम से कम दो वर्षों की शोधवृत्ति दी जानी चाहिए बल्कि यदि वह चाहे तो किसी रमणीक स्थान पर उसके आवास की व्यवस्था भी करनी चाहिए। विष्णु प्रभाकर शायद इस समय सबसे अधिक आयु (९३ वर्ष) के लेखक हैं। संपूर्ण आयु में उन्होंने कहीं नौकरी नहीं की। लेखन ही उनकी आजीविका का एक मात्र साधन रहा है। आज भी वे कई घंटे लेखन-कार्य करते हैं। गत वर्ष भारत सरकार ने उन्हें पद्म भूषण सम्मान से सम्मानित किया था।

कोई भी पद्म सम्मान राष्ट्रीय महत्व का बहुत बड़ा सम्मान होता है, किंतु इसके साथ किसी प्रकार की धनराशि नहीं जुड़ी हुई है। पद्म भूषण सम्मान मिलना गौरव की बात है, किंतु विष्णु प्रभाकर जैसे लोगों की तत्काल आवश्यकता ऐसे गौरव से ज्यादा कुछ धन की है। कुछ वर्ष पहले तक खेल जगत के सर्वोच्च अर्जुन सम्मान के साथ भी किसी प्रकार की धनराशि नहीं जुड़ी हुई थी। बाद में सरकार ने इस सम्मान के साथ तीन लाख रुपये भी जोड़ दिए। मेरा मत है कि कोई भी पद्म सम्मान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को कम से कम पांच लाख रुपये भी दिए जाने चाहिएं। किसी भी देश के सांस्कृतिक जीवन में लेखकों का अपना विशिष्ट स्थान होता है। लेखन-कार्य एक लंबी दौड़ है। बहुत कम लेखक ऐसे हैं जो इस दौड़ में लंबे समय तक शामिल रहते हैं। आर्थिक तंगी, स्वास्थ्य की खराबी, लेखकीय सुविधाओं का अभाव, उचित सम्मान की कमी आदि अनेक बातें उनमें कुंठा और निराशा भर देती हैं और वे लिखना बंद कर देते हैं।

हमें उनकी अंतिम श्वासों तक क्रियाशीलता बनाकर समाज को उनसे लाभ लेने की व्यवस्था करनी चाहिए।



माता-पिता की सेवा तथा वर्तमान युग-स्थिति

*-सुरिंदर सिंघ निमाणा**

मानव शरीर द्वारा स्वार्थ से ऊपर उठकर जो भी कर्म कमाया जाए वह सेवा कहलवा सकता है। सेवा एवं परस्वार्थ अथवा परोपकार का रक्त और मांस जैसा अभिन्न संबंध है। परस्वार्थी होना सेवक बनने की मंजिल की ओर ले जाने वाला उपयुक्त मार्ग है। परस्वार्थ का तत्व एक दुर्लभ तत्व है। किसी का कहना है कि अपने लिए जीना कोई जीना नहीं है, अत: मेरे दिल! तू जमाने के लिए जीना। लेकिन स्वार्थ से लबालब भरी इस दुनिया में परस्वार्थी अथवा परोपकारी होना एक बहुत बड़े साहस वाली बात है।

स्वार्थ के साथ निज-लाभ का उद्देश्य सदैव ही जुड़ा होता है। निज-लाभ की उम्मीद साधारण मनुष्य को सदैव ही अपनी ताक रखवाती है। मनुष्य के लिए साधारणत: सर्वप्रथम प्रमुखता उसका निज, उसका स्वयं ही होती है। उसके परिवार के सदस्य उसके बाद उसकी दूसरी प्रमुखता कहलवा सकते हैं। परिवार की परिधि से बाहर निकल कर ही परस्वार्थ का सफर होता है। लेकिन परस्वार्थ और सेवा का प्रथम अमल या व्यवहार भी मनुष्य अपने घर-परिवार में ही निभा कर, अधिक ऊंचे सामाजिक या मानवतावादी सेवा-कार्यों का आरंभ कर सकता है।

परोपकार कमाना काफी कठिन है। सेवा की कार कमाना कोई आसान नहीं, जबकि स्वार्थ तथा निज-लाभ साधारण मनुष्य को बड़े मीठे व रसीले लगते हैं। यह बात अलग है कि वह स्वार्थ की इच्छा और स्वार्थ से प्रेरित कर्मों के साधारणत: काफी कड़वे फल भुगतता है।

स्वार्थ तथा निज-लाभ यूं तो मनुष्य के साथ प्रारंभ से ही जुड़े चले आ रहे हैं लेकिन गत कुछ समय से ये अधिक बढ़-फूल रहे हैं। आज साधारण मनुष्य-मन पर भी स्वार्थ की काफी मोटी परतें चढ़ चुकी हैं। युग-प्रभाव के कारण आज स्थिति यह है कि हमको स्वार्थ के बिना और कुछ नज़र ही नहीं आता।

स्वार्थ की मोटी परतों को उतारने के लिए हमारी सांस्कृतिक विरासत से हमें प्राप्त हुआ सेवा का हुनर कारामद अथवा उपयोगी है। प्राचीन जीवन-शैली में घर-परिवार के घरेलू माहौल से लेकर सामाजिक और धार्मिक स्तरों पर 'सेवा' इंसानी जीवन-युक्ति का भाग रही है। अपनी विरासत से इस हुनर, इस जीवन-युक्ति को हमने सहज स्वाभाविक रूप में प्राप्त किया है। परंतु इसका आदर्श रूप वर्तमान युग में हमसे कायम नहीं रखा जा सका। आज हमें सामाजिक-धार्मिक दायरों के भीतर सेवा-कार्य तो बहुत हो रहे दीखते हैं लेकिन उनका आदर्श तथा शुद्ध रूप दुर्लभ है। दंभ तथा पाखंड रूप वाले प्रदूषण ने सेवा का अत्यंत निर्मल चेहरा-मोहरा गंधला करके रख दिया है। इस प्रदूषण से ऐसी निर्मल अमूल्य वस्तु को बचा कर रखना वर्तमान की एक बहुत बड़ी आवश्यकता है।

सेवा के इस दुनिया में अनेकों रूप हैं, जिनमें से एक रूप है 'बुजुर्गों की सेवा'। सेवा के इस रूप पर अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार

**सहायक संपादक, गुरमति ज्ञान/गुरमति प्रकाश। मो : ९८५५०-७३२४५*

कुछ तुच्छ-से विचार, दिल के जज़बातों के संग सांझे करने हैं। बुजुर्गों की सेवा के रूप का एक उपरूप या हिस्सा है 'माता-पिता की सेवा', जिससे विचार का आरंभ करना उपयुक्त लगता है।

अंतिम रूप में समस्त रचना का कर्त्ता उस परमात्मा को मानते हुए यह कहा जा सकता है कि कोई भी बच्चा जो कुछ भी होता है वह अपने माता-पिता की बदौलत ही होता है। पिता के बिंद और माता के रक्त से ही बच्चे की उत्पत्ति होती है। एक मां, परमात्मा की तरफ से निर्धारित विधान के अनुसार एक बच्चे को लगभग नौ महीने की लम्बी अवधि तक अपनी कोख में रखती है। उपरांत उसको अकह प्रसूति पीड़ा झेलनी पड़ती है फिर कहीं बच्चे का जन्म होता है। जन्म के समय बच्चा शत-प्रतिशत रूप में अपनी जननी मां की देख-रेख, उसकी ममता के सहारे अपनी परवरिश कराता है। वह धीरे-धीरे ही सुरति संभालता है। पिता की देख-रेख तथा पिता-प्यार का भी बच्चे की परवरिश में अपना महत्व है चाहे कि मां की कमाई/साधना इस संबंध में प्रथम दर्जा ग्रहण करती है। मां के अपनी संतान के प्रति समर्पण तथा मोह की एक झलक प्रसिद्ध पंजाबी कवि प्रो. मोहन सिंघ द्वारा रचित रुबाई (चार पंक्तियों की लघु कविता, जिसमें तीसरी पंक्ति का तुकांत नहीं मिलता) देती है :

मां वरगा घणछावां बूटा, मैनूं नज़र न आए।
लै के जिस तों छां उधारी, रब्ब ने सवरग बनाए।
बाकी कुल्ल दुनीआं दे बूटे, जड़ सुक्किआं सुक्क जांदे,
ऐपर फुल्लां दे मुरझाइआं, इह बूटा सुक्क जाए।

मां के दिल के ममता भरे भावों और सुकर्मों का जो वर्णन मां इच्छरां के प्रसंग में पंजाबी का अलबेला कवि प्रो. पूरन सिंघ करता है, वह वर्तमान युग-स्थिति में विशेष रूप से विचारणीय है :

(मां-दिल)

"मां-दिल" विच पिआर हुंदा सदा इक बच्चे दा आपणे,
पर "मां-दिल" सभ बच्चिआं नूं दुद्ध पिआण वाला।
जीवण सभ बच्चे, मावां दे, हर मां आखदी,
तत्ती वा नांह लग्गे किसे नूं,
इह जग्ग-दिल मां दा,
इक निक्का जिहा दिल जेहड़ा कुल्ल आलम नूं ठारदा।
समाधी मां दे वातसल-पिआर दी सदा पूरन।
निरविकलप 'निरचाह' बेगरज, उच्चा, वड्डा, विशाल मां-दिल है।
पिआर दी कुट्ठी पिआरदी दिन-रात,
मैल सारी धोंदी, नित्त नवां रूप दिंदी बाल नूं।

(मां दा उनर)

भारी चित्रकार इह
मां दा धिआन करना पिआ है बच्चे दी
अनेक मूरतां ते छबीआं नाल।
उह बच्चे दे नकश ते रूप दम-ब-दम घड़दी,
सवारदी, बणांदी, जिवांदी।
पर उह बुत्त इस थां दा केहा कमाल है!
जद मां टक्क बंन्ह के बच्चे नूं झोल आपणी विच देखदी,
इह अरशां दी कोई मूरत,
उत्तों उप्परों उतरदी मां दी अक्ख विच,
उह मूरत निरंकार दी मां-जोत विच जागदी,
मां दे समुंदरां वरगे दिल 'ते
इक रब्ब वरगी अक्ख दा झलकार है !!. . .
ठीक! मां दा पिआर-योग
इक सहज-योग है। . . .
मां दे दिल दा योग देखो केहा ठीक उतरदा,
हां! मां दी नदर विच इक डूंघा कोई असरार है!

रब्ब आप उतरदा मां दे दिल विच,
उहदी बाहां विच, झोल विच,
रब्ब आप मां दी नदर उच्ची करदा सिद्धी,
मां रब्ब दा कोई डाहडा सोहणा आवेश है!!
मां सहज सुभा योगी पिआर दी,
रब्ब दे रचाए जग्ग दी पूरणता,
मां विच रब्ब आप, हर बाल लई नित्त अवतार हुंदा,
मां दा दिल इउं बस रब्ब है!
मां दी लोरी बाणी अकाश दी!!
मां-दिल, मां-पिआर, मां दीआं छावां, मां दी असीस,
इह गल्लां उच्चीआं, बेकीमतीआं, इह मां होण दी कमाल कमाई है। . . .
मां होणा उच्चा सभ थीं वद्ध है।
मां होण नूं लोचणा इह उच्ची अरदास है, उच्चा करदी।
ठीक रब्ब वी मां-कुक्ख आउंदा, पुत्तर रब्ब दा जग्ग विच आउंदा,
इह उह पवित्तर थां जित्थूं जगत सारा,
रूप रंग विच बण-बण निखरदा,
मां होणा धी-भैण दा इक दैवी राज है।
(पूरन भगत दे जीवन झाके बनाम पूरन नाथ जोगी, 'खुल्हे मैदान')

माता-पिता की सेवा समूचे तौर पर हमारी अमीर सांस्कृतिक और नैतिक विरासत का एक अभिन्न अंग रही है। इस विरासत में सरवन की कथा 'लोक-गाथा' का सम्मान प्राप्त कर चुकी है। सरवन के युग में इस देश की धार्मिक नियमावली में तीर्थों की यात्रा को सबसे बड़ा पुन्य-कर्म समझा जाता था। सरवन ने अपनी निज घर-गृहस्थी का स्वार्थ पूर्णत: त्याग कर भर यौवन की अवस्था में अपना तन-मन-धन अपनी आत्मा की गहराइयों सहित अपने अंधे हो चुके वृद्ध माता-पिता के लेखे लगाया। उसने युग के यातायात के नाम मात्र अविकसित साधनों के कारण एक वहंगी (कांवर) तैयार करवाई। वहंगी के दोनों पलड़ों में माता-पिता को बैठाया और चल पड़ा। फिर तब तक चलता रहा जब तक उसके प्राण पंखेरू न हो गए।

सेवा कराते हुए हरेक माता-पिता की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि वे अपने पुत्रों के हाथों में इस नश्वर संसार से विदाई लें। सरवन के माता-पिता मनइच्छित सेवा कराने के पक्ष से तो भाग्यशाली रहे लेकिन उनको अपनी सेवा में सदैव उपस्थित अपने नेक सपुत्र को अपने हाथों से विदा करना पड़ा। यह अकथनीय तथा असह दुखदायक अनुभव था। वैसे सेवा में उपस्थित रहने वाला सरवन इस कारज में व्यस्त होने के समय प्राण त्यागने पर भारतीय लोक-अवचेतन में गहराई से बस जाने के पक्ष से भाग्यशाली है। वह अमर है। जैसे ध्रू भक्त हमारे लिए ध्रू तारा बन चुका है, ऐसे ही सरवन 'सरवन पुत्र' का सम्मान प्राप्त कर चुका है, जो रहती दुनिया तक कायम रहेगा। सरवन की कथा बाल-अबोध मनों में बसाने का प्रयास-प्रयत्न प्रारंभिक शिक्षा के नीति-निर्माताओं को करने का सनम्र सुझाव है।

माता-पिता की संवेदना की वास्तविक कोमलता का पूरा-पूरा एहसास करने वाला बच्चा इस दुनिया में आज कोई-कोई रह गया है। मानवी माता-पिता साधारणत: अपने बच्चों को अपने अंतिम श्वासों तक अपनी आंखों के सामने बढ़ते-फूलते तथा विकास करते हुए देखने की इच्छा करते हैं। वास्तव में यह उनकी अपनी बगिया ही तो होती है। जब इस बगिया के पौधे माता-पिता रूपी बगिया लगाने वालों को फूल-कलियां दिखाने से इंकारी हों, उनकी सुगंधि से भी वंचित रखने की चालें चलें तो जो स्थिति कोमल संवेदना की होती है यह वही जानती है।

मानवी माता-पिता और अन्य जीव-रचना के माता-पिता में एक दृश्टमान अंतर यह है कि जहां अन्य जीव अपने बल पर चलने-फिरने या उड़ने के सक्षम हो जाने पर खुली दुनिया में गतिमान होने के लिए खुशी-खुशी छोड़ देते हैं। इंसानी जामे में माता-पिता का रुतबा पाने वालों के लिए ऐसी स्थिति असहनीय है। बच्चों को बिछोड़ने का विरह-दुख इंसानी जामे में माता-पिता अपने अंतिम श्वासों तक सहन करते हैं।

आज पदार्थवादी युग-स्थिति ने बच्चों का अपने माता-पिता के प्रति स्नेह-भाव तथा सम्मान-सत्कार बहुत बड़ी सीमा तक कम कर दिया है। जहां अन्य सभी रिश्ते इससे प्रभावित हो रहे हैं वहां पुत्र-माता-पिता संबंधों में मिठास कम करने और कड़वापन बढ़ाने में इस युग-स्थिति का प्रभाव बहुत ही भारी पड़ रहा है। इस युग में जहां माता-पिता अपने बच्चों को मायावी सुख-साधन, सुविधाओं से लाद देने के लिए एड़ियां उठाये हुए हैं वहां इनके बदले में बच्चों की तरफ से इस के प्रति स्वाभाविक आशा की जाने वाली धन्यवाद के विपरीत कृतघ्नता, अन-आज्ञाकारिता तथा रूखेपन जैसी अलामतें नजर आ रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में माता-पिता की संवेदना तो दुखित होती ही है लेकिन वे उसको व्यक्त करने के लिए तैयार नहीं होते और भीतर ही भीतर दुख-संताप झेल लेते हैं। पंजाबी लोक कहावत उनकी ही संवेदना को व्यक्त करती प्रतीत होती है :

"चंन भावें जाणे न जाणे, चकोर प्रीतां करदे।"

आज के माता-पिता और उनके बच्चों के बीच सम्मान-सत्कार वाले सदियों से चले आ रहे स्थापित रूप वर्तमान युग-स्थिति में पूरी तरह उलट-पुलट हो रहे हैं। आज माता-पिता (विशेषत: पढ़े-लिखे माता-पिता) शायद अपने बच्चों को सलीका सिखाने के लिए 'जी, जी' अथवा 'बेटा जी, बेटा जी' संबोधन करते हुए सुने जा सकते हैं। दूसरी ओर बच्चों के संबोधन में से 'जी' बहुत तीव्रता से आलोप हो रहा है। बच्चे 'मौम/मॉम' और 'डैड' बड़े खुले अंदाज में कहते हुए सुने जा सकते हैं। कुछ दशक पूर्व जहां बच्चों के दिलों में माता-पिता का विशेषत: पिता का काफी भय बैठा होता था (यह भय निष्कर्ष रूप में सकारात्मक नहीं कहा जा सकता) वहां आज उलटा माता-पिता बच्चों से डरते हुए दिखाई देने लग पड़े हैं। अति आवश्यक शिक्षा की बात बच्चों तक पहुंचाने के लिए आज माता-पिता को कई ढंग-तरीके तलाश करने पड़ते हैं, अनुकूल अवसर अथवा वातावरण सृजित करना पड़ता है। माता-पिता आज समूचे तौर पर एक पीड़ित श्रेणी बनते जा रहे हैं।

एकांकी परिवार प्रणाली के अधिक प्रचलित हो जाने के कारण भी माता-पिता और बच्चों (जवान पीढ़ी) के भीतर संबंधों में दूरियां पैदा हो गई हैं। पुत्र शादी होते ही माता-पिता से अलग होकर केवल पत्नी के साथ अपना निज घर बनाकर बैठ जाने का रुझान रखता दृश्टव्य हो रहा है। पत्नी के साथ मज़बूत गठजोड़ बनाकर, उस गठजोड़ की कुल शक्तियां माता-पिता को पछाड़ने के लिए प्रयोग करना आज के पुत्र का आम व्यवहार बनता जा रहा है। धन-संपत्ति के सभी मायावी संसाधनों पर निज कब्जा जमाकर आज का पुत्र माता-पिता को दुखदायक स्थिति में डालने में बहुत आगे निकल चुका है। वह अपनी सभी विफलताओं एवं दुश्वारियों की जिम्मेवारी भी माता-पिता के सिर डालता नज़र आ रहा है। जहां वह अपने बच्चों को हरेक सुख-सुविधा जुटाने के लिए एड़ियां उठाये हुए है वहां अपने माता-पिता के प्रति उनकी वृद्धावस्था में मायक सहायता करने से मुंह मोड़ता देखा जा सकता है। यह

अधिकतर घरों का स्वाभाविक व्यवहार बन चुका है। इसका और अधिक पासार अभी जारी है। वर्तमान युग-स्थिति में युवा पीढ़ी माता-पिता से मुक्त होने अथवा उनसे पल्लू छुड़ाने के लिए कई प्रकार की चालें चलती देखी जा सकती है। विभिन्न पुत्रों के बीच बुजुर्ग माता-पिता को संभालने की जिम्मेवारी एक-दूसरे पर डालने का लक्षण भी वर्तमान युग-स्थिति का साधारण व्यवहार बनता जा रहा है।

वर्तमान युग-स्थिति का एक अन्य बढ़ रहा प्रचलन माता-पिता को एक-दूसरे से अलग करने के रूप में भी देखने को मिल रहा है। वर्तमान में आर्थिक दृष्टि से तो दोनों या दो से अधिक पुत्रों अथवा सभी पुत्रों को सेवा का अवसर मिलने की दृष्टि से तो ऐसी पहुंच अथवा शैली किसी सीमा तक उपयुक्त ठहराने का प्रयास किया जा सकता है परंतु इसको व्यवहार में लाने एवं बुजुर्ग दंपति के बीच जीवित ही पड़ जाने वाली जुदाई (यदि वे *'एक जोति दुइ मूरती'* के अनुरूप चल रहे हों) दुखदायक अनुभव होती है। इस आयु में बुजुर्ग दंपति को जीवन की मुख्य जिम्मेवारियां निभाने के बाद एक दूसरे का संग-साथ बहुत ही आवश्यक होता है। ऐसी स्थिति में दूरियां डाल देना घोर अन्याय है।

अंत में बच्चों (बाल्यावस्था, किशोर अवस्था, युवा अवस्था और अधेड़ सभी आयु-ग्रुप) के अपने माता-पिता के प्रति दृष्टिकोण तथा व्यवहार संबंधी कुछ विचार-बिंदु :

१. माता-पिता के प्रति संबोधन में 'जी' को हर हालत में शामिल कीजिए।

२. प्रात: काल उठते ही माता-पिता को सत्कार सहित उनके चरण स्पर्श करते हुए चरण-वंदना कीजिए।

३. आय या वेतन में से माता-पिता का उचित बनता हिस्सा, धनराशि हाथ आते ही अलग रख दीजिए।

४. व्यवसाय/नौकरी पर घर से चलने के समय और काम से लौटते ही सुपत्नी को **wish** करने के साथ-साथ माता-पिता को मिलना तथा उनकी आशीषें लेना कभी न भूलिए।

५. माता-पिता को कोई भी खुशी वाला समाचार अवश्य बताइये। दुख वाला समाचार तत्काल बताने से गुरेज कीजिए तथा इसके लिए आधार-पृष्ठभूमि तैयार कर लीजिए।

६. माता-पिता का शारीरिक हाल-चाल नियमित रूप में जांच करते तथा पूछते रहिए। उनका मन चढ़दी कला अथवा ऊंचे मनोबल में रखने के लिए विशेष प्रयत्न कीजिए।

७. माता-पिता की सेवा के लिए मन को सदैव तैयार रखें।

८ अपनी सुपत्नी और बच्चों के सामने अपने माता-पिता की आदर्श सेवा कमाने का निज उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।

९. माता-पिता की सेवा को गुरुद्वारे, मंदिर, मस्जिद जाने और तीर्थ-यात्रा के तुल्य जानिये।

१०. माता-पिता द्वारा किसी परिस्थिति में रोष तथा गुस्से वाले शब्दों को प्यार-सत्कार भरा अंदाज/मनोभाव कायम रखते हुए खिले चेहरे के साथ सहन कीजिए। माता-पिता से बढ़कर बच्चों का अन्य कोई शुभचिंतक हो ही नहीं सकता।

११. पंजाबी लोक-गीतकार द्वारा रचित तथा लोक-गायक द्वारा गायन किये बोल 'मां दी पूजा रब्ब दी पूजा, मां ही रब्ब दा रूप है दूजा तथा 'मां हुंदी ए मां ओ दुनीआं वालिओ' हमारे मन-मस्तिक में समा जाएं!



सेवा-मुक्ति के बाद समय कैसे सार्थक करें?

-डॉ. अविनाश शर्मा*

प्रत्येक कर्मचारी के जीवन में विधाता ने सेवा-निवृत्ति का दिन निश्चित किया हुआ है, इसलिए यह दिन अचानक नहीं आता। सेवा-काल में काम के चक्कर में वह इस दिन को भूला रहता है। उसका सारा जीवन दफ्तरी भाग-दौड़ में बीत जाता है। सेवा-निवृत्ति के दिन वह अपने अतीत का लेखा-जोखा करता है और पाता है कि वह निपट अकेला है। उसके संगी-साथी अपनी-अपनी जीवन-लीला में मस्त हैं। जिनके लिए उसने अपने जीवन के सुनहरी वर्षों को अर्पित किया वे भी उससे दूरी बना कर चल रहे हैं। उसमें निरर्थकता एवं नीरसता का एहसास जागृत होने लगता है। दफ्तर की उपलब्धियों की यादों के सहारे अगामी जीवन नहीं काटा जा सकता। सेवा-निवृत्ति के बाद का काल किस प्रकार उपयोगी एवं आनंददायक बनाया जा सकता है यह एक शाश्वत प्रश्न है जिसका उत्तर प्रत्येक सेवा-निवृत्त व्यक्ति चाहता है।

सेवा-काल में प्रत्येक कर्मचारी जीवन के अनेक सोपानों को पार करके अपना तथा अपने परिवार का पालन-पोषण करता है। ऐसा करते हुए उसे समाज के अनेक अनुभागों की सहायता एवं सहयोग प्राप्त होता है। यह सहयोग प्रत्येक व्यक्ति पर समाज का ऋण होता है जिसे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता एवं अवस्था के अनुसार लौटाना होता है। सेवा से निवृत्ति व्यक्ति के जीवन का सर्वोत्तम समय होता है जब वह अपनी समर्थता के अनुसार उस ऋण से अऋण हो सकता है। वह अपने जीवन के अनुभवों से प्राप्त ज्ञान से इस समाज को और अधिक सुंदर बना सकता है।

हमारे धर्म-गुरुओं और दार्शनिकों ने हमारे सामने शताब्दियों पूर्व एक आदर्श समाज की रूप-रेखा रखी थी जिसमें रंग भरने का दायित्व हमारे जैसे लघु मानवों के कंधों पर था, किन्तु मानव अपनी दुर्बलताओं एवं अपूर्णताओं के कारण भय, लोभ तथा घृणा जैसी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देता रहा और समाज संग्राम की आग में जलता रहा। समय-समय पर अनेक महापुरुषों ने उसे प्रेम और सहयोग का पाठ भी पढ़ाया किन्तु मानव बहुत कम बदला।

सेवा-निवृत्त व्यक्ति के पास समय की कोई कमी नहीं होती। उसे महापुरुषों के प्रवचनों का अध्ययन करके उनके आदर्शों के अनुसार समाज को बदलने का यत्न करना चाहिए। इन आदर्शों की मूल भावना समाज एवं सामाजिकता का नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान है। उसे इन आदर्शों के प्रचार एवं प्रसार की ओर ध्यान लगाना चाहिए। सेवा-निवृत्त व्यक्ति अपने पद की गरिमा और अहं को भूलने लगता है और दिन-प्रतिदिन नैतिक एवं जीवन-मूल्यों के प्रति समर्पित होने लगता

*१२०५, फेज-१, अरबन इस्टेट, जालंधर-१४४०२२ (पंजाब)

है। इसलिए समाज सेवा-निवृत्त लोगों से अपेक्षा कर सकता है कि वे उदार, दयालु, मैत्रीपूर्ण एवं सहयोगी समाज की रचना में मूल्यवान योगदान दे सकते हैं। इस प्रकार के निर्माण-कार्य के लिए सेवा-निवृत्त व्यक्ति को किसी संस्था एवं संगठन की आवश्यकता नहीं है, उसे केवल अपने भीतर झांकने की आवश्यकता है, रास्ता मिल जाएगा। एक कदम इस रास्ते पर रखने से ही दुनिया बदल जाएगी और समय पंख लगाकर उड़ जाएगा।

हम ऐसे समय में सेवा-निवृत्त हो रहे हैं जब प्रत्येक व्यक्ति उत्तेजना से भरा इधर-उधर भागता नजर आ रहा है। उसे अपनी कुशल क्षमता बताने के लिए एक पल के लिए रुकना भी दुश्वार लगता है। यह भागम-भाग मानव को कहां ले जा रही है? किस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह मारा-मारी हो रही है? यह मारा-मारी मानव को निराशा और हताशा की गर्त में धकेल रही है और चारों ओर अशान्ति का वातावरण बनता जा रहा है। ऐसी परिस्थितियों में सेवा-निवृत्त व्यक्ति का यह कर्त्तव्य बन जाता है कि वह अपने सद्प्रयत्नों से सर्वसाधारण की दिशाहीन दौड़ को निश्चित दिशा देने का यत्न करे। अपनी शिक्षा, धर्म-साधना, दर्शन एवं सेवा-भाव से समाज में हो रहे बिखराव को समेटने का यत्न करें, संतोष और ईमानदारी के महत्त्व को प्रतिपादित करे। समाज में स्थिरता लाने के लिए कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के बीच संतुलन बनाना सिखाएं ताकि समाज की अन्तर्धाराएं सुखद प्रभाव दें। सेवा-निवृत्त व्यक्ति की दूरदृष्टि और व्यवहारिक ज्ञान उसे समाज का नायक बना देगा। ऐसा करते हुए समय कब व्यतीत हो जाएगा कुछ पता भी नहीं चलेगा।

सेवा-निवृत्त व्यक्ति समाज में अपनी नई भूमिका तलाशने लगता है। वह अपनी सभी अनावश्यक सीमाओं से छुटकारा पाकर नए ढंग से अपना जीवन-यापन प्रारंभ करता है। जिस क्षेत्र से वह सेवा-निवृत्त हुआ होता है उसी क्षेत्र से सम्बंधित लोगों की कठिनाइयों को दूर करने का यत्न करते हुए वह लोगों के निकट आने का यत्न करने लगता है। वह उनके दुख-दुख को महसूस कर उनसे जुड़ने लगता है। फिर वह उन्हीं का अंग बन जाता है, उन्हीं के बीच रह कर उन्हीं की सेवा में उसका समय आंख मूंदते व्यतीत हो जाता है।

इस प्रकार सामाजिक कार्यों के द्वारा मानवता की सेवा में ही सेवा-निवृत्त व्यक्ति का समय व्यतीत हो तो अच्छा है।





आपका पत्र मिला

'गुरमति ज्ञान' का सितंबर ०९ का अंक मिला, आभारी हूं। पत्रिका में छपी सामग्री बहुत चाव से पढ़ता हूं, अच्छी लगती है। सिक्ख धर्म के बारे में पढ़कर ज्ञान में वृद्धि हो रही है। सभी लेख और कविताएं प्रेरक हैं। सभी लेखक साहिबान को बधाई।

-माता प्रसाद शुक्ल, ग्वालियर।

बुढ़ापा और मानसिक तनाव

*-स्वर्गीय श्री खुशीराम शर्मा**

उग्र आधुनिकता के रंग में रंगा आज का युवक बूढ़े व्यक्ति को तिरस्कार की नज़र से देखता है। वह उसको एक गई-गुजरी फालतू वस्तु समझता है। इसलिए वह उसे कूड़ेदान जैसी जगह में फेंक देने से भी गुरेज नहीं करता। अपमान और अवहेलना का यह व्यवहार बूढ़े व्यक्ति को बहुत ही दुखी करता है। मानसिक तनाव उसे घेर लेता है जो धीरे-धीरे गहरा होकर अवसादा क रूप ले लेता है। यही अवसाद बढ़ कर मनोरोग के रूप में बदल जाता है। बुजुर्गों के लिए इस दुख और पीड़ा को सहन करना बहुत कठिन है। वे बुझते हुए चिराग के धुएं की तरह परेशान रहते हैं। इस अपमान की टीस उनको कांटे की तरह चुभती रहती है और वे असहाय कुछ कर भी नहीं पाते।

इस वस्तुस्थिति का मूल कारण अतिव्यक्तिवादी सोच और उससे जन्मा व्यवहार है। औद्योगिक क्रांति के साथ ही व्यक्तिवाद जन्मा और प्रफुल्लित हुआ है, परन्तु आज की स्थिति में यह सेहतमंद व्यक्तिवाद की सभी सीमाएं लांघ कर निजवाद व स्वार्थ तक जा पहुंचा है। भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण ने जिस मुक्त व्यापार की धारणा को पल्लवित किया है वह अब व्यक्ति की सामाजिक जिम्मेदारी से मुंह मोड़ गया है। उपभोक्तावाद के इस दौर में सभी कुछ भोग की वस्तु बनकर रह गया है। हर व्यक्ति अपने निज के बारे में सोचता है। सामाजिक सोच शायद उसके मानसिक व्यवहार में रही ही नहीं। समभाव और सह-भावनाएं बीते युग की बातें बन चुकी हैं। मानव-रिश्ते शिथिल होकर टूट गए हैं। उनका रूप-आकार ही बदल गया है। लाखों के उपभोग से जो खुशी मिलती है मनुष्य उस तक ही सीमित होकर रह गया है। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए आज का मनुष्य सब कुछ करने को तैयार है। यहां तक कि दूसरों को गिरा कर उनके सीने पर पैर रख कर भी आगे बढ़ने को बुरा नहीं मानता। कोई भी रिश्ता चाहे मां-बाप, भाई-बहन का हो, उसके लिए कोई मायने नहीं रखता। दोस्त-मित्र भी आज इसी श्रेणी में आते हैं। रिश्ते को तब तक निभाया जाता है जब तक वह लाभदायक हो। जो लाभदायक नहीं रहा उससे रिश्ता तोड़ना आज के मनुष्य के लिए कोई मुश्किल नहीं। बुजुर्गों को ये बातें अच्छी नहीं लगतीं अथवा उनके मनोभावों को कुरेदती हैं, इसीलिए वे अपने बचपन और जवानी को याद करते हैं जब वे अपने बड़े-बूढ़ों को सम्मान की नज़र से देखते थे, उनकी सेवा-इज्जत करनी अपना फर्ज समझते थे, उनका कहा मानना अपना धर्म समझते थे। आज क्या हो गया है कि बुजुर्ग को आदरभाव की दृष्टि से नहीं देखा जाता? ऐसी अवस्था को देखते और समझते हुए वे सोचने लगते हैं कि वे दिन कहां गए जब बुजुर्गों को उपयुक्त सम्मान दिया जाता था। यह सोचते-सोचते वे दुखी होते हैं और मन मसोस कर

रह जाते हैं। मन में कई प्रकार की अस्त-व्यस्त भावनाएं, अनुभूतियां और विचारधाराएं उभरती हैं जो उनको तनावग्रस्त कर देती हैं।

तेज रफ्तार जिंदगी ने मनुष्य के मानसिक व्यवहार में कई परिवर्तनों को जन्म दिया। सूचना आदान-प्रदान करने की क्रांति ने जीवन की रफ्तार को इतना तेज कर दिया है कि लाख चाहने पर भी बुजुर्ग उसके साथ चल नहीं सकते। कम्प्यूटर, मोबाइल अन्य उपकरण जिस तेजी से काम करते हैं बूढ़े व्यक्ति की समझ में नहीं आते। न तो उनको मोबाइल चलाना ही आता है और न ही कम्प्यूटर। जबकि जीवन का बाहरी वातावरण ऐसा हो गया है कि कोई भी इनकी कार्यशैली से अछूता नहीं रह सकता। ऐसी जिंदगी में न तो तेज रफ्तार जिंदगी से चल सकते हैं न ही छोड़ सकते हैं। ऐसे में बुजुर्ग करें तो क्या करें?

तेज रफ्तार जिंदगी ने बुजुर्गों की मनोदशा को भी बहुत बुरी तरह प्रभावित किया है। जीवन की बढ़ती हुई गति के कारण जो नैतिक और सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आया है वे बुजुर्गों के अहसास में कांटे की तरह चुभते हैं। बुजुर्ग सहमे-सहमे और डरे-डरे-से रहते हैं। वे अपने मन की बात किसी से खुल कर नहीं कह सकते। उन्हें अपनी इच्छा को प्रकट करने में बड़ी दिक्कत पेश आती है। अपने ही बच्चों से बात करने में डर लगता है। एक बात ही कहने के लिए कई बार वे अपनी बात आधी-अधूरी ही कह पाते हैं। उनकी भावनाएं अंदर की अंदर ही दबी रहने के कारण उनमें कुंठा आ जाती है और अंदर सुलगती रहती हैं। बुजुर्ग अशांत-परेशान और उदास रहते हैं। बुढ़ापे का आनंद जितना उन्हें मिलना चाहिए नहीं मिलता। सब कुछ होते हुए भी अपने आप को खाली-सा महसूस करते हैं।

सबसे बड़ा सवाल है कि इस वास्तविकता और स्थिति से कैसे निपटें? युवा पीढ़ी के दबाव का मुकाबला कैसे करें? ये सवाल आज हर बुजुर्ग के मन में अचानक उभर आते हैं और ये स्वाभाविक भी है, परन्तु बुजुर्गों को समझ लेना चाहिए कि यह ऐसा यथार्थ है जिससे वे भाग नहीं सकते। यह ऐसी कटु स्थिति है जिसे सहना ही है। अच्छा यह होगा कि वे युवा पीढ़ी की सोच और जीवन-शैली से अपने आप को अलग करें और अलग इस भाव से करें कि किसी किस्म का आपसी टकराव न हो, न ही मानसिक शीत-युद्ध की स्थिति बने। संयुक्त परिवार की भावात्मक जीवन-शैली के लिए इस दौर में कोई स्थान नहीं है। बुजुर्गों को इस बात को समझ लेना चाहिए कि उनके ऊंचे नैतिक मूल्यों से प्रेरित विचारों को युवा पीढ़ी कभी समझ नहीं पाई। युवा पीढ़ी की उग्र जीवन-शैली से अलग होकर स्वतंत्र हो जाना ही बुजुर्गों के लिए कल्याणकारी है परन्तु ऐसा करते समय मानसिक हिंसा के भावों से मुक्त होना भी जरूरी है। किसी प्रकार की घटना और झगड़ा चाहे किसी भी रूप में हो ठीक नहीं है। बुजुर्गों ने जीवन का लंबा सफर तय करते हुए कई अनुभव हासिल किए होते हैं। उन अनुभवों के आधार पर युवा पीढ़ी के दबाव को जहां तक संभव हो झेलने में ही उनकी भलाई है। जैसे वे जीते हैं उनको वैसा जीने दें और मानसिक तौर पर ही उनके साथ रहें। इससे मन को शांति मिलेगी और भावात्मक तनाव से मुक्ति भी।

तन्हाई उदासी और चिंता को जन्म देती है। उदासी और चिंता की कोख से मानसिक तनाव और अवसाद पैदा होते हैं। आज का बुजुर्ग परिवार की गहमा-गहमी में रहते हुए भी मरू भूमि में अकेले खड़े वृक्ष की तरह है। आधुनिक युग की पारिवारिक जीवन-शैली ही कुछ ऐसी हो गई है कि परिवार की मूल धारणा ही बदल गई है। आज परिवार का हर सदस्य परिवार में रह कर भी अलग होता है। न तो वह अन्य परिवार के सदस्यों के जीवन में झांकता है, न ही दूसरों का दखल सहता है। उसका अपना कमरा, अपना टी.वी., अपना मोबाइल और कम्प्यूटर है। पति-पत्नी का रिश्ता पहले जैसा नहीं रहा। उनकी अपनी-अपनी निजी महत्वाकांक्षाएं हैं इसलिए वे अलग-अलग इकाई के रूप में जीते हैं। ऐसी पारिवारिक अवस्था में बुजुर्ग कैसे शांत और सुखी रह सकता है?

बुजुर्गों की एक और भी समस्या है। उपभोक्तावाद और मुकाबले की दौड़ में जीवन की मुख्य धारा से धकेल कर उनको हाशिए पर कर दिया है। वे अपने आप को अप्रासंगिक समझते हैं। उनको ऐसा महसूस होता है कि वे एक व्यर्थ की वस्तु हैं। इस प्रकार के हीन भाव उनकी मानसिक सेहत को कुरेदते रहते हैं और वे तनावग्रस्त हो जाते हैं। आज से कुछ दशक पहले बुजुर्ग वृक्षों तले और गली-मुहल्ले में इकट्ठे होकर बैठते और बातें करते थे। यूं मानवीय सांझ के भाव उनमें बने रहते थे। आपस में दुख-सुख की बातें करते, हंसते, खेलते और पूर्णत: खुश रहते।

ऐसे में हर बुजुर्ग को प्रतिकूल बाहरी परिस्थितियों का सामना करने में उसकी मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति ही सहायता कर सकती है। धार्मिक रीति-रिवाज, पूजा-पाठ का भले ही अपना महत्व तो है परंतु यह काफी नहीं। ये शुद्ध आध्यात्मिकता नहीं है। आध्यात्मिकता ऊंची व पूर्ण निर्मल मानवीय क्रियाशीलता है। मन की गहराई में जाकर आत्म-चिंतन करने से इसका आभास है। अन्तर्दृष्टि की ज्योति प्रज्वलित होती है। बाहरी जीवन को अन्तर्दृष्टि की ज्योति से देखने से दूसरे बुरे प्रभावों से बचे रहते हैं। अपने मन और दिमाग को शक्तिशाली करना ही बुजुर्गों के लिए कल्याणकारी है। इसी से ही उनकी मानसिक सेहत मजबूत बनी रहती है।

बुजुर्गों को आर्थिक तौर पर भी स्वतंत्र होना चाहिए। अपने बुढ़ापे के निर्वाह के लिए पर्याप्त धन रखना बहुत ही जरूरी है, लेकिन इसके साथ-साथ समाज-सेवा के कार्य भी करते रहना चाहिए जिससे मन को सुख मिलता है और आत्मिक शांति प्राप्त होती है। किसी न किसी शौक का पालना और सुबह की सैर करना इस आयु में मानसिक और शारीरिक सेहत के लिए बहुत जरूरी है। इससे मन सारा दिन अचिंत रहता है और मानसिक तनाव जैसी नकारात्मक सोच पास नहीं आती।

सारांश यह है कि आध्यात्मिक और आत्मिक चिंतन से इस आयु में आंतरिक शांति मिलती है। कुछ न कुछ करते रहने से अपने आप को प्रासंगिक बनाए रखना तथा गतिशीलता से बुढ़ापा सहज और सरल हो जाता है। बुजुर्ग को हर सांस में आनंद से जीना है और भरपूरता से जीना है।



बुजुर्ग अवस्था को सुखमय बनाने की युक्तियां

-श्रीमती प्रतिभा शर्मा*

बुजुर्ग अवस्था भी उतनी ही सार्थक और जीवन भरपूर है जितनी कि जीवन की दूसरी अवस्थाएं भाव बचपन और जवानी। यह ठीक है कि इस अवस्था में बचपन की शोखी, चंचलता, भोलापन और प्राकृतिक सुंदरता नहीं होती और न ही जवानी की तरह इस अवस्था में गतिशीलता, शारीरिक और मानसिक चुस्ती, जोश और वलवले होते हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि बुढ़ापा व्यर्थ और सारहीन है। बुढ़ापे में अपनी सुंदरता और गौरव है। जीवन भर के अनुभवों का पुंज और परिपक्व मनोभावों का भरपूर खजाना बुढ़ापा है। बुजुर्ग अवस्था, अध्यात्ममुखी होने के फलस्वरूप जीवन का सार अपने में समेटे हुए है। बुढ़ापे की अपनी समस्याएं भी हैं और कमियां व कमजोरीयां भी। बढ़ती हुई उम्र के साथ शरीर में वह शक्ति नहीं रहती कि वह हर प्रकार की मुश्किल का सामना कर सके। ऐसे में कई रोग बुढ़ापे में जुड़ जाते हैं। नजर का कमजोर होना और कम सुनाई देना तो आम बात है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि बुढ़ापे को अभिशाप समझा जाए या इसको कोढ़ की संज्ञा दी जाए। बुढ़ापे को उसी रूप में लेना चाहिए जिस रूप में वह है। किसी से सेहत और शारीरिक शक्ति छीनी नहीं जा सकती, न ही उधार या मोल ली जा सकती है, इसलिए किसी बुजुर्ग के पास जो भी है उसी को सार्थक रूप में जीना है। कई बुजुर्गों के पास धन और पदार्थों का अभाव होता है। वे भर पेट भोजन भी नहीं खा सकते। सेहत-संभाल के साधन भी उनके पास नहीं होते। उनके कष्ट और दुख को समझा जा सकता है। परन्तु मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग के बूढ़ों के पास तो सब कुछ है पर वह फिर भी वे दुखी रहते हैं। उनके दुख का कारण उनकी मानसिक सोच में छुपा हुआ है। बुढ़ापा आने से पहले-पहले अपनी सोच को आने वाली अवस्था के अनुसार ढालना अति आवश्यक है या यूं कहिए, बुढ़ापे का अहसास होते ही उसको ठीक ढंग से भोगने के लिए अपनी सोच में आवश्यक बदलाव कर लेने चाहिएं।

सन्यास की भावना को और उसकी जुड़ी हुई व्यवहारिकता को अपनाने से ही बुढ़ापा सुखमय हो सकता है। आम तौर पर यह देखा गया है कि बुजुर्ग परिवार को अपने नियन्त्रण में रखना चाहते हैं। बच्चे बड़े होने और परिवार वाले होने पर भी बुजुर्ग चाहते हैं कि वे उनके कहे अनुसार व्यवहार करें। यह सेहतमंद दृष्टिकोण नहीं है। जब बच्चे परिवार वाले हो जाएं तो उनको आवश्यकतानुसार स्वतंत्र कर देना चाहिए। वे अपनी मर्जी और परिस्थितियों के अनुसार अपनी गृहस्थी चलाएं यही हितकारी है। देखने में आता है कि बुजुर्ग परिवार के हर कार्य, गतिविधि में हस्तक्षेप करते हैं। इसमें कलह-क्लेश होता है। इस प्रकार परिवार का मनोवैज्ञानिक वातावरण दूषित हो जाता है और परिवार के सभी सदस्यों को कई प्रकार की मानसिक और भावात्मक मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।

*गुरु नानक मार्केट, जालंधर रोड, बटाला (गुरदासपुर)-१४३५०५

पिछले दस-पन्द्रह सालों में जीवन की गति में बहुत तेजी से बदलाव आया है। जीवन की रफ्तार बहुत तेज हो गई है। मोबाइल और कम्प्यूटर ने जीवन के स्वरूप को ही बदल दिया है। पुराने मूल्य और संस्कार बड़ी तेजी से टूट चुके हैं। नई पीढ़ी ने खासकर नई जीवन-शैली को बड़ी तेजी से अपनाया है। अपने ही जीवन-मूल्य जो परंपरागत जीवन-मूल्य से मेल नहीं खाते और उनके विरोध में खड़े हैं, उनको अपना लिया है। उपभोगतावाद ने हर चीज को भोग की वस्तु बना दिया है। यहां तक कि भावनाएं और विचार उपभोग की वस्तु बन कर रह गई हैं। अब तो 'रिश्ते' भी 'वस्तु' बन कर रह गए हैं। किसी रिश्ते में स्थायित्व नहीं है। वस्तु का उपभोग करो और जब व्यर्थ हो जाए तो बाहर फेंक दो, यही भावना आज की युवा पीढ़ी ने रिश्तों में भी ग्रहण कर ली है। उनके लिए वही रिश्ता ठीक है जो उनके हित की पूर्ति करता है। नवीनता के नाम पर वे बुजुर्ग को पुरानी घिसी-पिटी चीज समझते हैं, यहां तक कि डस्टबिन ही मानते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि बुजुर्ग क्या करें? यह तो हो नहीं सकता कि बुजुर्ग युवा पीढ़ी को दबा सकें या उनके विचारों में बदलाव ला सकें। ऐसी परिस्थिति में वे युवा पीढ़ी को छोड़कर सन्यास लेकर जंगलों में तो जा नहीं सकते। हां, अपने आप को उनसे जितना संभव हो सके अलग कर सकते हैं। हस्तक्षेप न करने की भावना का पालन जरूर कर सकते हैं। उसी में उनकी भलाई है। युवा पीढ़ी जैसा रहना चाहे, रहने दो। अपने आप को मानसिक रूप से उससे स्वतन्त्र कर लेना चाहिए। अपने विचारों और भावों को अपने तक सीमित रखते हुए बुजुर्गों को निरासक्त होने का प्रचार करना चाहिए। यही कल्याणकारी और सुखमय है।

आज के बुजुर्ग परस्पर विरोधी भावनाओं और संस्कारों में फंस गए हैं। बुजुर्गों का बचपन और जवानी संयुक्त परिवारों में बीती है। संयुक्त परिवार की शैली उनके मन-दिमाग पर छाई है। यही शैली उनके दिमाग में फंसी हुई है कि वे कैसे अपने बड़ों का सम्मान करते थे। उनकी बात को अनसुना करना भी असंभव था। पर आज जब वे देखते हैं कि आज की पीढ़ी संयुक्त परिवार के संस्कारों को न मानती है और न उचित समझती है। युवा पीढ़ी आज बुजुर्ग की उम्र मात्र से बड़ा होने पर इज्जत नहीं कर सकती। उनके लिए दादा-नाना का कोई अर्थ नहीं। यह उनके लिए एक व्यक्ति-मात्र से अधिक कुछ नहीं। ऐसी परिस्थिति में आज के बुजुर्ग अपने पुराने संस्कारों को छोड़ नहीं पाते। वे चाहते हैं कि बच्चे उनकी बात सुनें, उनका आदर-सम्मान करें, वह होता नहीं, इसीलिए वे दुखी रहते हैं। बुजुर्गों को इस परिस्थिति को समझना होगा और उसके अनुसार अपनी सोच में बदलाव लाने होंगे, नहीं तो वे अशान्त और उदास रहेंगे।

अपने अतीत को दोहराना और बात-बात में उसकी प्रशंसा करना युवा पीढ़ी को कतई पसंद नहीं। बुजुर्ग अपने बचपन-जवानी के उदाहरण देकर बच्चों को समझाने की और उनके सही मार्ग पर चलने की नाकाम कोशिश करते रहते हैं। बुजुर्ग आम ही कहते हैं कि वे तो पांच-छ: किलोमीटर पैदल चल कर स्कूल जाते थे, कोई साइकिल भी नहीं था। दो जोड़ी कपड़े होते थे। कई बार नंगे पैर भी स्कूल दौड़ जाते थे। आज के युवाओं को इन बातों से क्या लेना-देना? वे तो मोबाइल, कम्प्यूटर, मोटरसाइकिल के जमाने में हैं। उनके पास इन बातों को सुनने का समय नहीं। बुजुर्गों द्वारा बार-बार अतीत को दोहराते रहना और उसे सुनहरी युग

की संज्ञा देना सही बात नहीं है। वर्तमान में रहना और वर्तमान की बात करना ही वृद्धों के लिए अधिक कल्याणकारी है।

तनाव-मुक्त और चिंता-रहित बुजुर्ग अवस्था के लिए सरल-सहज-स्पष्ट धार्मिक आचरण बहुत जरूरी है। भगवान में विश्वास, अटूट आस्था और श्रद्धा ही बुजुर्गों को सेहतमंद विचार और भाव प्रदान कर सकती है। कहने को तो सभी कहते हैं कि वे सच्चे धर्म का पालन कर रहे हैं परन्तु ज्यादातर केवल धर्म के कर्मकांड में ही उलझ कर रह जाते हैं। न तो वे शुद्ध, शांत भाव से गुरुद्वारे, मंदिर जाते हैं, न ही कथा, प्रवचन और कीर्तन उनके मन को शांति देते हैं। इसका मुख कारण यह है कि वे धार्मिक नैतिकता को अपने दैनिक व्यवहार में कोई स्थान नहीं देते। उनका सामाजिक जीवन और उनकी व्यक्तिगत जीवन-शैली धर्म के वास्तविक और आध्यात्मिक रूप से अनभिज्ञ रह जाती है। श्री गुरु नानक देव जी का जीवन, दर्शन और उपदेश मानव को मानवीय गुणों से ओत-प्रोत करने में बहुत सक्षम है। गुरु साहिब ने जिस सरल और सहज धर्म का उपदेश हमें दिया है वही हमारे लिए कल्याणकारी है। भाई लालो की जीवन-शैली और उसकी नेक कमाई सच्चे धर्म का प्रतीक है। श्री गुरु नानक देव जी ने कभी कर्मकांड और अन्ध-विश्वास को किसी प्रकार का महत्व नहीं दिया।

कहते हैं कि एक बार गुरु जी जगन्नाथपुरी गए। मंदिर के भीतर आरती हो रही थी, पर गुरु जी बाहर बैठे भक्ति में लीन थे। किसी ने उनसे कहा, आरती तो अंदर हो रही है, आप बाहर बैठे हैं? गुरु जी का उत्तर था कि सारा संसार ही भगवान की आरती कर रहा है। उस समय उन्होंने "आरती" नामक पावन बाणी की रचना की। कहने का अभिप्राय यह है कि बुजुर्ग अवस्था में मनुष्य को चिन्तन और मनन करना चाहिए। साधना और नाम जपना बहुत ही जरूरी है। धार्मिक कर्मकांडों में उलझना ठीक नहीं। साधना और भक्ति बुजुर्ग अवस्था में मनुष्य के आचरण को निखार देती है और वह शांत-भाव से संसार में विचरता है।

बुजुर्ग अवस्था में व्यक्ति को क्रियाशील रहना चाहिए। अनावश्यक हस्तक्षेप न देने की भावना मन में बसाए हुए कुछ न कुछ करते रहना बुजुर्ग अवस्था को सुखमय बना देता है। इस अवस्था में किसी शौक का पालना बुजुर्ग अवस्था को सार्थक बना देता है। इससे जीवन में उसकी प्रासंगिकता बनी रहती है।

शौक कोई भी हो सकता है। घर में बगीची लगाने का शौक बहुत उत्तम है। यदि घर में जमीन नहीं है तो गमलों में फूल-पौधे उगा सकते हैं। यह एक रचनात्मक कार्य है। घर के प्राकृतिक पर्यावरण को शुद्ध और साफ भी रखता है तथा घर के वातावरण को सुखदायक और आनंदमय बनाता है।

पुस्तकें बुजुर्ग अवस्था में घनिष्ठ मित्र बनती हैं। पढ़ने का शौक हमारे दृष्टिकोण को व्यापक बना देता है, जिससे बुजुर्ग शांत और गहन गंभीर हो जाता है। जीवन को विस्तृत परिपेक्ष में देखने से पढ़ने की आदत बुजुर्गों को बहुत ही सार्थक साथ देती है। घर के छोटे-मोटे कामों में दिलचस्पी लेना और घर-गृहस्थी में अपने बच्चों की सहायता करने से परिवार में अन्तर्व्यक्तिगत तनाव दूर हो जाते हैं।

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि बुजुर्गों को आत्म-संतुष्टि की भावना से बुजुर्ग अवस्था को जीना चाहिए। इसके लिए सच्चे मानवीय धर्म का पालन करना बहुत जरूरी है। भगवान का चिंतन और मनन इससे भी ज्यादा हितकारी है।



दयनीय स्थिति के लिए बुज़ुर्गों का भी दोष है!

*-श्रीमती नीलू भ्राणी**

मानव जीवन में तीन पड़ाव आते हैं-- बचपन, यौवन और बुढ़ापा। अंत में एक न एक दिन तो इस शरीर ने नष्ट होना ही है। मिट्टी से बना शरीर एक न एक दिन तो मिट्टी में ही मिल जायेगा। बढ़ती आयु के प्रभावों को कोई नहीं रोक सकता। क्या कोई मनुष्य सदैव एक जैसी जिंदगी जी सकता है? सृष्टि में ऐसा संभव नहीं हो सकता। जिसने जन्म लिया है वो धीरे-धीरे अवश्य नष्ट होगा।

बुढ़ापा जीवन का अंतिम पड़ाव है। जीवन की संध्या कैसे खूबसूरत ढंग से व्यतीत की जाये यह कला मनुष्य को सीखनी चाहिये, क्योंकि बचपन तो सपनों में ही बीत जाता है, जवानी शक्ति में खो जाती है और बुढ़ापा ही होता है जो दोनों के, जवानी और बचपन के अनुभवों का पुंज होता है। तो जीवन का यह आखिरी पड़ाव कैसे खूबसूरत ढंग से और शांतिमय वातावरण में जीया जाये, यह हमें बुढ़ापा आने से पहले ही जान लेना चाहिए।

हां जी, इसी विचार को लेकर डॉ. बी. सी. भंडारी जी और पूज्यनीय श्रीमती सरोजनी भंडारी ने अमृतसर में 'मिलवर्तन सीनियर सिटीजन होम' बनाया ताकि जो भी वृद्ध शांतमय जीवन को जीना चाहें वो यहां आकर रह सकें। इसमें उन्होंने वृद्ध-जनों की सुख-सुविधा के लिये २४ कमरे और एक हाल कमरा बनाया है। आजकल यहां २४ स्त्रियां-पुरुष रह रहे हैं।

मैं आपके साथ समाज के जो बुज़ुर्ग हैं उनके बारे में चर्चा करना चाहूंगी। मेरे अनुभव के अनुसार बुज़ुर्गों की दशा बड़ी दयनीय या दर्दनाक है खास कर उन बुज़ुर्गों की जो अकेले रह जाते हैं। कुछ तो वृद्ध-आश्रमों में प्रवेश पा लेते हैं पर फिर भी कुछ ऐसे हैं जो अपने परिवार के रहमो-कर्म पर जी रहे हैं। इसमें दोष केवल परिवार का ही नहीं है अपितु मैं बुज़ुर्गों का भी मानती हूं।

आज जमाना बहुत बदल रहा है। जीवन में बहुत ज्यादा व्यवस्तता आने के कारण किसी के पास भी समय नहीं है। इसलिये मेरे विचार से हर एक को अपने जीवन को समयानुसार थोड़ा-बहुत बदलना चाहिये। यदि बुज़ुर्ग अपने बच्चों का सुख-दुख में साथ दें तो बच्चे भी उनका अनुसरण करेंगे। कई बार बुज़ुर्ग-जन भी परिवार में अपने आप को ढालने में असमर्थ हो जाते हैं। असल में मेरे विचार से दोनों तरफ ही थोड़ी जिम्मेदारी होनी चाहिये ताकि परिवार में शांति बनी रहे। यदि बुज़ुर्ग-जन अपनी क्षमता के अनुसार बच्चों की सहायता कर सकें तो उम्मीद है कि बच्चे भी जरूर ही अपने माता-पिता का सम्मान करेंगे। दूसरी ओर कई बार बच्चे भी अपने माता-पिता से जरूरत से ज्यादा उम्मीद करते हैं जिससे उनका मन टूट जाता है। शरीर की कमजोरी के कारण वो इतने

**प्रबंधक, मिलवरतन सीनियर सिटीजन होम, मून एवेन्यू, मजीठा रोड, श्री अमृतसर।*

बेबस हो जाते हैं कि उनको वृद्ध आश्रम की ही पनाह लेनी पड़ती है।

आज जीवन की इतनी दौड़ में बच्चों के पास इतनी फुर्सत ही नहीं है कि वे अपने बूढ़े माता-पिता की देखभाल सही ढंग से कर सकें। जो तो समर्थवान हैं वे तो अपने माता-पिता की देखभाल के लिये कोई न कोई इंतजाम कर लेते हैं, परन्तु अन्य ऐसा नहीं कर पाते। परिणामस्वरूप ज्यादातर बुजुर्ग अकेलेपन का शिकार हो रहे हैं। इस कारण उनमें मानसिक तनाव के कारण चिड़चिड़ापन आ जाता है। वे छोटी-छोटी बात से क्रोधित हो जाते हैं। इस कारण भी उनका बच्चों के साथ मनमुटाव होना शुरू हो जाता है। फिर हर रोज की अशांति को सहन् करना दोनों के लिये मुश्किल हो जाता है। इस कारण भी बुजुर्ग वृद्ध-आश्रम की तरफ प्रस्थान कर जाते हैं।

मेरी एक सहेली, जो लुधियाना में रहती है, वो नौकरी करती है। व्यस्त रहने के कारण वो भी अपने ससुर जी को पूरा समय नहीं दे पाती थी। इस कारण छोटी-छोटी बात से उनके और ससुर जी के बीच मनमुटाव होना शुरू हो गया। ससुर जी जब तक काम करते थे तब तक तो सब ठीक था परन्तु जब से उन्होंने सारा दिन घर में खाली रहना शुरू किया तो छोटी-छोटी बात से अपने बच्चों को कोसना शुरू कर दिया। एक दिन तो अपना सामान उठा कर वृद्ध-आश्रम में चले गये। जब बेटे को पता चला तो उसको बहुत बुरा लगा। वो अपनी पत्नी को लेकर उनको वापस लेने गये। उन्होंने अपने बच्चों को मिलने से इंकार कर दिया। प्रबंधक ने जब उनको अपने कमरे में अलग से बुला कर पूछा तो उन्होंने बताया कि उनको खाना समय पर नहीं मिलता, यदि मिलता है तो ठंडा होता है। मेरी सहेली ने क्षमा-याचना की और कहा कि मैं नौकरी करती हूं, परन्तु फिर भी मैं आपका आगे से अधिक से अधिक ध्यान रखूंगी। जिम्मेदारी लेकर हस्ताक्षर कर दिये और उनको सम्मानपूर्वक घर ले आये।

ससुर जी का दबदबा अभी भी है जिसे वो सहन कर रही है ताकि घर की शांति भंग न हो। इस घटना को समझते हुये मेरे विचार में तो यह है कि घर में शांति बनाये रखने के लिये बड़ों तथा छोटों, दोनों को समझना चाहिये। यह दोनों की जिम्मेदारी है ताकि घर का वातावरण सुखमय और शांतमय बना रहे।



दस बालतणि बीस रवणि तीसा का सुंदरु कहावै ॥
चालीसी पुरु होइ पचासी पगु खिसै सठी के बोढेपा आवै ॥
सतरि का मतिहीणु असीहां का विउहारु न पावै ॥
नवै का सिहजासणी मूलि न जाणै अप बलु ॥
ढंढोलिमु ढूढिमु डिठु मै नानक जगु धुए का धवलहरु ॥

(पन्ना १३८)

बुजुर्गों की संभाल : जिम्मेदारी किसकी ?

*-स. जोगिंदर सिंघ जोगी**

बुजुर्ग होना कोई दोष है या कोई अभिशाप या कोई वरदान, इस बात का निर्णय करना हरेक के लिए अत्यंत कठिन होगा। बुजुर्ग होना एक विवशता अवश्य हो सकती है क्योंकि समय अपनी निरंतर गति से गतिमान रहता है।

इंसान ने गत १०० वर्षों में शायद बहुत उन्नति की है परंतु प्रत्येक क्षेत्र में नहीं। इसकी सोच कई दिशाओं में काम करती रहती है तथा खेद की बात जो सर्वाधिक दृश्टव्य होती है वह यह है कि इंसान अपने भविष्य की चिंता, जो कि इसके दिमाग के किसी कोने में सदैव अपना प्रभाव डाले रखती है, अवश्य करता है। अपना भविष्य सुधारने एवं उसकी संभाल की चिंता और प्रबंध करने के लिए ही इंसान के जीवन का एक बड़ा भाग व्यतीत होता है।

साइंस एवं कम्पयूटर के द्वारा इंसानी सूरत के होने वाले परिवर्तन को आम देखा जा सकता है। परंतु खेद की बात तो यह है कि यदि कहीं बुजुर्गों के हृदय की भावनाओं का परिवर्तन दिखाया जा सकता तो फिर शायद बुजुर्ग होने की मुश्किलों, कठिनाइयों को भी कम किया जा सकता अथवा उनकी खुशियों को बढ़ाया जा सकता।

जिस पल में बच्चा मां के गर्भ में अपनी आमद दे देता है, मां का ध्यान बच्चे में रहता है तथा फिर उस पल तक जबकि मां अपना शरीर छोड़ नहीं देती, मां का मोह/लगाव समाप्त नहीं होता। हरेक माता/पिता अपने बच्चों के भविष्य के लिए चिंतित रहता है और हरेक संभव प्रयास करता है कि वे अपने बच्चों को अपनी समझ, शक्ति, क्षमता और प्रभाव से बढ़िया से बढ़िया जगह, ओहदे और सुख-सुविधाएं देने या ये प्राप्त कराने के उनको योग्य बना सकें।

हरेक माता-पिता ने बुजुर्ग होना होता है तथा हो जाता है, परंतु मेरी तुच्छ समझ के मुताबिक हरेक बुजुर्ग को किसी न किसी पक्ष से निराशा अवश्य होती है। मुझे बहुत हैरानी होती है कि हरेक इंसान को यह ज्ञात है कि उसने बुजुर्ग अवश्य होना है, परंतु फिर भी बुजुर्गों के प्रति इतनी शुष्कता और निराशाजनक व्यवहार क्यों?

कई बार मैं ऐसा सुनता हूं कि बच्चे अपने बुजुर्गों के एहसानमंद होने की बजाय यह कहते हैं कि "तुमने कोई हम पर एहसान नहीं किया, तुमने हमारे लिए जो यह किया, यह तुम्हारा कर्त्तव्य था, सभी माता-पिता अपने बच्चों के लिए करते हैं।" मैं इन बच्चों से पूछना चाहता हूं कि "सभी माता-पिता की तरह, सभी बच्चे उनके प्रति स्नेह, प्यार, सम्मान और सेवा-संभाल की जिम्मेवारी क्यों नहीं समझते?" वास्तव में इंसान बहुत स्वार्थी जीव है। इसको ज्ञात है कि अब इसके माता-पिता वृद्ध हो गए हैं, अब वे इसके लिए अधिक फायदेमंद

*36-3525 Brandon Gate Drive, Missisaga ON.L 4T3M3, Canada

नहीं रहे और फालतू चीज हैं।

इंसान का प्रारंभिक जीवन अधिकतर माता-पिता के अधीन होता है। फिर वह अपना जीवन अपनी मर्जी के साथ जीने लगता है। उसके पश्चात उसमें कुछ बनने की तीव्र इच्छा और फिर अपने बच्चों के लिए वही क्रमबद्ध जिम्मेदारियां और फिर हम सभी स्वयं बूढ़े हो जाते हैं। इंसानी दिमाग की चालाकी है कि यह उसी सौदे में पूंजी लगाता है जिसमें उसे सांसारिक पदार्थों या धन आदि का लाभ हो। हरेक नहीं तो अत्यधिक लोगों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे अपने बुजुर्गों को आवश्यक समय, सहानुभूति तथा वित्तीय योगदान दें। इंसान के सम्मुख उसके बुजुर्गों की सुविधाओं से अधिक महत्व उसके अपने बच्चों का ही होता है। मैं इसके दो कारण मुख्य समझता हूं। पहला यह कि इसका रिश्ता बच्चों के साथ अधिक नया होता है परंतु बुजुर्गों के साथ यह अधिक पुराना हो चुका होता है और समय के साथ (चलते) कोई भी रिश्ता अपना पुराना महत्व कायम नहीं रख सकता। इंसानी स्वभाव है कि यह पुरानी चीज को पसंद नहीं करता। हां, अपने शौक के कारण कभी-कभी पुरानी चीजों को देखना अवश्य पसंद करता है। कई युवकों-युवतियों को तो मैंने इस प्रकार की सोच भी रखते हुए देखा है कि "बहुत खा-पहन लिया इसने, अब यूं ही पंगे लेता रहता है।"

वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के समय भी बुजुर्गों को प्राय: सबसे पीछे रखा जाता है तथा अपने बच्चों को अथवा पति या पत्नी को सबसे पहले। ढलती युवा अवस्था के पति-पत्नी के रिश्ते की भी मजबूती का एक प्रमुख कारण यह है कि वे क्षीण होती जा रही शारीरिक तथा मानसिक शक्ति के सम्मुख होते हैं और भीतर से जीवन-साथी का सहारा चाहते हैं। इसमें कोई बुराई नहीं परंतु समस्या तो यह है कि इस स्थिति में वे अपने बुजुर्गों के प्रति ध्यान देना कम कर देते हैं।

बुजुर्गों की अनेदखी का दूसरा प्रमुख कारण यह है कि इंसान अपनी चालाक सोच के कारण बच्चों को तो अपना भविष्य समझता है परंतु बुजुर्गों को अपने पर बोझ समझता है। वह बुजुर्गों को पुरानी चीज समझता हुआ इन पर धन तथा दिमाग खर्च करना बुद्धिमता नहीं समझता। हां, शायद समाज की 'बल्ले-बल्ले' अथवा प्रसंशा पाने के कारण और यूं अपनी हउमै बढ़ाने के लिए शायद बुजुर्गों के लिए भी कभी कुछ करे, परंतु वह अपने हृदय से, अपने मन-अंतर से ऐसा कम ही करता देखा जाता है। कभी अपनी अधिक पूंजी समझ कर भी वह अपने बुजुर्गों को हो सकता है कुछ दे दे परंतु वह वास्तविक रूप में प्रशंसनीय नहीं। बहुत कम ऐसे उदारचित होते हैं जो अपने आप से, अपने बच्चों और अपनी पत्नी से पहले अपने बुजुर्गों को प्रमुखता दे सकते हों।

बुजुर्ग होने में दोहरी मार सहन् करनी पड़ती है। एक तो बुजुर्ग की अपनी शारीरिक शक्ति कम हो जाती है जो पहली मार है तथा दूसरा बुजुर्ग को अपनों से ही बेरुखी भरा व्यवहार सहन् करना पड़ता है, जबकि शारीरिक शक्ति कम होने की स्थिति में बुजुर्ग पहले से अधिक ध्यान दिये जाने के अधिकारी बन जाते हैं। इस स्थिति में आवश्यकता है कि आज से ही बुजुर्ग अवस्था के समय को ध्यान में रखकर प्लान करने की, इसलिए कि यदि यह हमारे जीवन का सर्वाधिक सुखदायी समय नहीं

बन सकता तो कम से कम इसको सबसे अधिक दुखदायी समय भी न बनने दिया जाए।

कनाडा में भी बुजुर्गों के प्रति उनके बच्चों की तरफ से बेरुखी भरा व्यवहार देखने को मिलता है। मेरा बड़ा बेटा यहां बुजुर्गों के एक केंद्र में वलंटियर जॉब (काम) पर जाया करता था, वह बताता है कि बुजुर्ग तरसते हैं कि कोई बच्चा उनके साथ कुछ समय बातें करे। वह बताता है कि जब वह आने लगता है तो बहुत बुजुर्ग उसका हाथ पकड़े रखते हैं तथा पूछते रहते हैं कि "अब किस दिन आयेगा।" यहां बच्चे केवल वर्ष के बाद उन केंद्रों पर जाकर बुजुर्गों को "**HAPPY BIRTHDAY**" कह कर समझते हैं कि हमने बहुत बड़ा काम कर लिया। कितनी शर्मनाक स्थिति है! इन बुजुर्ग-संभाल केंद्रों में लोगों को कई बार **Volunteer Job** करनी पड़ती है जो कि अच्छी नौकरियां लेने के लिए आवश्यक शर्त होती है।

हां, जो मुख्य अंतर मैं कैनेडियन और भारतीय बुजुर्गों में देखता हूं वह यह है कि यहां कोई भी बुजुर्ग वित्तीय रूप से विवश नहीं होता। ६५ वर्ष की आयु में इतनी वित्तीय बुढ़ापा पैंशन लग जाती है कि वे अपनी इच्छा से सारा महीना खा-पी सकते हैं, शेष शारीरिक संभाल, दवाई आदि की जिम्मेवार सरकार खुद है। बुजुर्ग सारा दिन माल्हों में घूमते-फिरते एवं हंसते-खेलते हैं। कनाडा में आम ही यह बात प्रचलित है कि कनाडा में या तो बच्चे और या फिर बूढ़े मजे करते हैं, शेष सभी को तो काम करना पड़ता है, क्योंकि वृद्ध-जीवन के लिए वहां सरकार की स्कीमें, सरकारी प्लानिंग का हिस्सा हैं। इसके विपरीत मेरे सामने ऐसी भारतीय तस्वीरें दिमाग में आती हैं जो कि मुझे दिमागी तौर पर बेचैन कर देती हैं। कहीं ७३ वर्षीय बुजुर्ग रिक्शा चला रहा है या अपने वृद्ध शरीर की संभाल या इसको चलता रखने के लिए आवश्यक धन मांगता फिरता है।

यहां कनाडा में बहुत बुजुर्ग-घर हैं जहां बुजुर्ग पैसे देकर घर की भांति रह सकते हैं, परंतु भारत में बुजुर्गों की सुविधाओं के लिए बहुत कम काम किया गया है। मैं उनकी प्रशंसा करता हूं जिन्होंने बुजुर्गों और नि:सहाय लोगों के लिए कुछ केंद्र खोले/चलाये हुए हैं, परंतु ये काफी नहीं हैं।

हम चाहे दादा, दादी, माता, पिता या कोई भी अन्य हैसीयत वाले बुजुर्ग हैं तो हमको इसीलिए अपनी ग़लती महसूस करनी पड़ेगी और सरकार को मैं सबसे बड़ा दोषी समझता हूं जो कि अपने देश के बुजुर्गों की संभाल के लिए आवश्यक योजनायें बनाने में या फिर उन्हें लागू करने में सफल नहीं हो सकी। सभी धर्म बुजुर्गों के आदर-सम्मान का समर्थन करते हैं, परंतु किसी को बलपूर्वक अपने अनुसार चलने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

यदि हम बुजुर्गों की स्थिति सुधारना चाहते हैं तो हमें युवा वर्ग को वैधानिक/कानूनी तौर पर बुजुर्गों के प्रति संजीदगी भरपूर व्यवहार के लिए बाध्य करने की आवश्यकता पड़ेगी। इसके अतिरिक्त भारत सरकार को बुजुर्गों की संभाल अपनी जिम्मेदारी समझ कर करनी अथवा निभानी चाहिए।

सरकारों की अन्य समाज भलाई की स्कीमें बेशक कुछ सार्थक हैं परंतु बुजुर्गों के कष्ट कम करने के लिए काफी नहीं हैं।

सरकार को यह भी समझना पड़ेगा कि बुजुर्गों की आवश्यकतायें युवाओं से कम नहीं बल्कि वृद्ध अवस्था में तो ये अधिक हो जाती हैं। अकेलेपन के कारण बुजुर्गों को मनोरंजन के साधनों की अधिक आवश्यकता होती है। शारीरिक आवश्यकताओं में पौष्टिक खुराक और विटामिनों के अतिरिक्त दवाइयों की अधिक आवश्यकता बुजुर्गों को ही होती है। बुजुर्गों के पास काफी धन होना चाहिए, जिससे उनको अपने आप में किसी पर निर्भर होने की भावना का एहसास न हो। यह सब कुछ यकीनी बनाने के लिए सरकार का उद्देश्य सामाजिक जिम्मेदारी होना चाहिए न कि वोटें प्राप्त करना।

सरकारी प्रयत्नों का हिस्सा नि:सहाय बुजुर्गों के लिए संभाल केंद्र बनाना होना चाहिए। हरेक सरकारी या प्राईवेट अदारों में कर्मचारियों के वेतन में से आवश्यक हिस्सा, कर्मचारियों के माता-पिता के सांझे बैंक खाते में सीधा जमा होना चाहिए। उस हिस्से को माता-पिता चाहें तो अपनी स्वेच्छा से उपयोग में लायें या फिर बच्चों को लौटा दें, परंतु इसका पूर्ण संचालन सीधे माता-पिता के हाथ में हो।

इसके अतिरिक्त सरकारी कर्मचारियों की तरह हरेक के वेतन में से एक आवश्यक भाग उसकी अपनी बुजुर्ग अवस्था के समय के लिए खाते में आवश्यक रूप से जमा होना चाहिए। मैं तो कहूंगा कि ऐसा करना व्यापारी वर्ग के लिए भी आवश्यक हो। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों की भर्ती के समय इन बुजुर्ग-घरों में निश्चित समय की आवश्यक नि:शुल्क सेवा एक कंडीशन होनी चाहिए। हरेक सरकारी और प्राईवेट मुलाजिमों की वार्षिक गुप्त रिपोर्टों में उनकी तरफ से, उनके बुजर्गों के प्रति किये जाते व्यवहार की सीधी रिपोर्ट उनके माता-पिता की तरफ से गुप्त ढंग से दाखिल होनी चाहिए, जिसके खराब होने की स्थिति में मुलाजिम के वेतन की कटौती के साथ-साथ उसके विरुद्ध और भी कारवाई आरंभ होनी चाहिए, परंतु उसके माता-पिता के खाते में जाने वाले हिस्से में कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए।

सरकारी तौर पर अलग रहते बुजुर्गों के साथ महीने में कुछ/कम से कम समय (दिन, घंटे या कुछ रातें) उसके हरेक बच्चे को अपने परिवार के साथ व्यतीत करने के लिए हरेक को बाध्य किया जाए, इसलिए कि बुजुर्गों को अकेलेपन के दुखदायक तथा असहनीय एहसास से भी जहां तक संभव हो, बचाया जा सके।

हमें व्यक्तिगत रूप में भी अपनी बुजुर्ग अवस्था को सुखी बनाने के लिए अपने आप को बदलना पड़ेगा। शायद कुछ सज्जनों तथा बुजुर्गों को मेरी यह बात ग़लत प्रतीत हो और मुझे इस बारे में कुछ प्रतिक्रिया भी सहनी पड़े परंतु मैं यह अवश्य लिखूंगा अथवा मैं विवश होकर यह कहना चाहता हूं कि हमको अपने बच्चों से थोड़ा-बहुत सबक 'मतलबी' होने का अवश्य सीखना चाहिए। जितनी पूंजी हम अपनी युवा आयु और अधेड़ आयु में अपने बच्चों पर निवेश करते हैं उसमें थोड़ी-सी कमी करके हमें अपनी बुजुर्ग अवस्था के लिए संभालना चाहिए। जितने सुख हम अपने बच्चों पर से कुर्बान करने के लिए तैयार रहते हैं हमको उसमें भी कुछ कमी करनी चाहिए ताकि हम वृद्ध अवस्था में पैसे-पैसे को तरसते न रहें। यह सब हम गुप्त ढंग से भी करें तो इसमें कोई बुरी बात न होगी। सीधे

शब्दों में हमें अपने बच्चों से अधिक आशावादी होने की बजाय अपनी वृद्ध अवस्था के समय के लिए स्वयं ठोस प्लानिंग करनी चाहिए। बच्चों के साथ मोह को कुछ कम करके थोड़ा मोह अपने आप के साथ भी तो करें।

हरेक व्यापारिक अदारे के लिए, बुजुर्गों की संभाल के लिए कुछ टैक्स देना आवश्यक हो, जिसकी अदायगी न होने की स्थिति में अदारे को जुर्माना लगे और जो टैक्स देने से इंकार करे उस अदारे को बंद तक करने के अधिकार सरकार के पास हों। इसके अतिरिक्त जो बुजुर्ग सेवा-संभाल केंद्र संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे हैं उनको भरपूर सहयोग दिया जाए और उनकी वार्षिक जांच-परख की जाए कि क्या वे सचमुच ही अच्छी तरह काम कर रहे हैं।

धार्मिक संस्थाओं को भी बुजुर्गों और विशेषत: असहाय बुजुर्गों की सेवा-संभाल के लिए आगे आना चाहिए और इसको अपने धर्म प्रचार का हिस्सा बनाना चाहिए।

बुजुर्गों के प्रति सेवा को प्रफुल्लित करने के लिए हमें अपनी शैक्षणिक प्रणाली में सुधार करना चाहिए, इसलिए कि बच्चों में सामाजिक जिम्मेवारी की भावना प्रफुल्लित की जा सके। हमारी सामाजिक, आर्थिक तथा तकनीकी प्रगति के दावे उतनी देर तक खोखले और अर्थहीन प्रतीत होते रहेंगे, जितनी देर तक हमारी सड़कों पर हमारे बुजुर्ग रुलते दिखाई देंगे। धार्मिक होना तभी अर्थपूर्ण होगा यदि हम अपने बुजुर्गों का आदर-सम्मान तथा उनकी सेवा करना अपना वास्तविक धर्म समझेंगे।

सरकारी सिस्टम को बुजुर्गों के लिए एक सरवन पुत्र की भांति काम करते होना चाहिए। निर्धारित आयु पर पहुंचने पर हरेक महीने, भरपूर बुढ़ापा पेंशन सीधी बुजुर्गों के खाते में स्वत: कम्प्यूटराईज़ड सिस्टम से जमा हो और निर्विघ्न होती रहे। इसके लिए किसी बुजुर्ग को कहीं जाने की, किसी राजनैतिक लीडर या प्रतिनिधि की सिफारिश या किसी सरकारी मुलाजिम के पास व्यक्तिगत रूप में उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए।

परंतु ऐसा सब कुछ लागू करने के लिए आवश्यकता है भारत को कनाडा की भांति सिस्टम बनाने की, जिसमें मुलाजिमों की सीधी पहुंच लोगों तक न हो इसीलए कि घूसवाद अथवा रिश्वतखोरी को जड़ से समाप्त किया जा सके। यहां की भांति आवश्यकता है कि सरकारी मुलाजिम काम करते हों, परंतु सरकारी कार्यालयों तक लोगों की पहुंच न हो बल्कि हरेक होने वाले काम के लिए समय निश्चित किया जाए। यदि उस निश्चित समय में मुलाजिम अपनी जिम्मेवारी पूरी नहीं करता तो उसको आगामी दिन को काम पर न बुलाया जाए और वह कठोर दंड का भागी हो।

कनाडा में हरेक काम मात्र फोन करने से हो जाता है, आपको किसी कार्यालय में जाकर कागज भरने की आवश्यकता नहीं पड़ती और न ही आपको किसी मुलाजिम का नाम बताया जाता है कि यह मुलाजिम आपका केस कर रहा है। पेंशन की आयु पहुंचने से कुछ मास पूर्व सारी आवश्यक कागजी कारवाई पूरी करके आपकी पेंशन रहती आयु तक, समय पर देने की जिम्मेवारी सरकार भली-भांति, वास्तविक एवं सरवन पुत्र की भांति निभाती रहती है।

(शेष पृष्ठ १५५ पर)

मेरा घर, मेरा परिवार

-स. जगजीत सिंघ*

पात्र-परिचय

दलेर कौर	-	मुख्य पात्र, विधवा (दादी)
रवेल सिंघ	-	दलेर कौर का पुत्र
मनजीत कौर	-	रवेल सिंघ की पत्नी
किरन-नूर	-	रवेल सिंघ की बेटियां
दूधिया	-	- -
लक्खा	-	पड़ोसी लड़का
जगीर कौर	-	पड़ोसन
सुक्खा	-	जगीर कौर का पोता
राजपाल सिंघ	-	रवेल सिंघ का दोस्त
पौंटी	-	राजपाल सिंघ का बेटा
डाक्टर	-	- -

(सुबह का समय है। दलेर कौर गुरुद्वारे से घर पर आती है।)

दलेर कौर- अरी बहू? कित्थे हैं? ला, गिलास पानी दा पिला।

मनजीत कौर- *(बाथरूम से)* मैं नहा रही हूं मां जी। *(किरन से)* किरन बेटा! मां जी को पानी दे।

किरन- *(पानी लाती है)* लो दादी जी पानी!

नूर- दादी जी! हमें प्रसाद दो न!

दलेर कौर- आज मैं प्रसाद नहीं लाई।

किरन- क्या बात दादी जी, आज गुरुद्वारे में प्रसाद नहीं मिला?

दलेर कौर- चुप! मिला था। मैं खा गई प्रसाद। खावां ना? तुहाडी मां मैनूं घर आई नूं पानी नहीं देंदी। अब तुसीं मेरे प्रसाद खाने पे रोक लगा दो।

किरन- हम तो ऐसे ही पूछ रही थीं दादी जी, आप तो नाराज हो गईं।

दलेर कौर- हां-हां, पूछ रही थीं ऐसे ही। जाओ दफा हो। तुमने खा-खा के कौन-सा मारका मारना है। दो-दो कुड़ियां पैदा करके मां ने घर भर ता। ऊपर से नाम रख ते नूर . . . किरन। पता नहीं पोतरे दा मुंह मैं कब वेखांगी?

मनजीत कौर- *(बाथरूम से बाहर आती हुई, तौलिए से बाल पोंछती हुई)* मां जी, मैंने कितनी बार आपसे कहा है कि आप बच्चों के सामने ऐसी बातें मत कहा करो। बच्चियों के मन पर उलटा असर होता है।

दलेर कौर- मेरे पे असर नहीं हुंदा। लगदा, साडे घर दी तां अंश एथे ही खत्म होजू। तुझे न सही, मैनूं तां बड़ा फिक्र हुंदा ए।

(रवेल सिंघ आता है।)

रवेल सिंघ- मां! जो बात हमारे वश में नहीं उसकी चिंता करनी बेवकूफी है।

(दलेर कौर समझ जाती है कि रवेल सिंघ उसे इस विषय पर ज्यादा बोलने नहीं देगा इसलिए वह अपनी बात बदल लेती है।)

दलेर कौर- बहू! तैनूं पता नहीं आज शनिवार ए। तूने आज फिर सिर नहा लिया। कितनी बार मना कीता तैनूं।

*परूफ रीडर, गुरमति ज्ञान।

मनजीत कौर– दिन-वार सब एक जैसे हैं मां जी, आप क्यों वहम करती हो?

दलेर कौर– मैनूं वहम नहीं, मैनूं चिंता अपने पुत्त दी ए। औरत शनिवार सिर नहाए आदमी पे भारी हुंदा ए।

रवेल सिंघ– मेरे पे कोई भारी नहीं होता मां! ये अंधविश्वास आज-कल कोई नहीं मानता। *(नूर और किरन से)* जाओ बेटा, तुम खेलो जा के। *(नूर और किरन एक तरफ होकर खड़ी हो जाती हैं।) (दलेर कौर से)* मां तुमने आज फिर सवेरे-सवेरे कथा शुरू कर दी।

दलेर कौर– तैनूं तां फिक्र नहीं अपने घर दा, मैनूं तां है।

रवेल सिंघ– मैं काहे का फिक्र करूं? लड़कियों में भला क्या कमी है?

दलेर कौर– ओ भोलिआ, घर लड़कों से ही चलते हैं। मैनूं तां जद तक पोता नहीं मिलदा मैं चुप नहीं बैठांगी। बाकी मेरी तेरे नाल कोई बात नहीं, मैं तां अपनी बहू नूं कहिंदी आं।

मनजीत कौर– मैं कौन-सा . . .।

रवेल सिंघ– *(मनजीत कौर को चुप रहने का इशारा करते हुए)* देख मां इन बच्चियों को, कैसे डरी हुई हैं। ये बेचारी सोच रही हैं कि दादी हमें अच्छा क्यों नहीं समझती। देख मां, कैसे देख रही हैं बेचारी डरी हुई। बाकी तुम अभी गुरु-घर से आई हो, कम से कम दो-चार घंटे तक तो कोई अच्छी बात किया करो। पता चले कि तुम पर गुरु-घर जाने का कुछ असर हुआ है। मैं तुम से फिर कहे देता हूं कि मैं तुम्हारा पुत्र हूं, तुम्हारा वंश चल गया, बस। आगे मेरे लड़कियां हों या लड़के, यह चिंता मेरी है। तुम बेवजह इतना दूर तक मत सोचा करो।

दलेर कौर– तैनूं पता नहीं की हो गया, तूं अब मेरी कोई गल्ल नहीं सुनदा।

(मनजीत कौर नूर और किरन को बांहों में लिए अंदर चली जाती है। वह दोनों को तैयार करके स्कूल भेज देती है। बाहर दूधिया दूध लेने आता है।)

दूधिया– लाओ पाजी, लगाओ भैंसिया, डालो दूध।

रवेल सिंघ– मनजीत बाल्टी ला। भैंसों का दूध निकालूं।

(दूधिया साइकिल की टेक लिए खड़ा है। रवेल सिंघ बाल्टी लिए भैंसों का दूध निकालने चला जाता है। दलेर कौर दूधिये के पास जाती है।)

दलेर कौर– *(अकेले में दूधिया से)* कोई हिसाब-किताब कीता ई इनके साथ कि ऐवें रोज दुध लै के चला जांदा एं?

दूधिया– नाहीं माता जी, कैसी बात करत हो? हम तो हर हफ्ता हिसाब कर देत हैं। पूछो पाजी से। अभै कल तो दिए रहे पिछले सारे पैसा।

दलेर कौर– एक हफ्ते दे पैसे कितने बन जांदे ने?

दूधिया– नौ सो अस्सी रुपया बनत हैं पूरे हफ्ता के। अगर कोई नागा हुई जाए तो उत्ते कम हुई जात हैं।

दलेर कौर– कल नूं तूं एक हजार रुपये ला के दे दीं। बहू के मायके में किसे दी शादी ए। इन्होंने उत्थे जाणा ए।

दूधिया– अच्छी बात माता जी। मैं पूरी कोसिस करूंगा।

(दूधिया दूध लेकर चला जाता है। रवेल सिंघ ट्रेक्टर लेकर अपने खेतों में चला जाता है)
(दोपहर का समय है। एक पड़ोस का लड़का 'लक्खा' घर में प्रवेश करता है।)
लक्खा- चाची! चाची!
दलेर कौर- की चाहीदा तैनूं? चाची तेरी कम्म करदी पई ए।
लक्खा- *(झिझकता हुआ)* मां जी . . . साइकिल . . . साइकिल चहिए थी जरा।
दलेर कौर- तैनूं दोपहर में वी चैन नहीं आंदा। न आप बैठदा एं न हमें बैठने देंदा एं। क्या करनी है सैकल तूने?
लक्खा- दादा जी को डॉक्टर के पास ले जाने है सुई लगवाने।
दलेर कौर- तुम्हारा सैकल कित्थे है?
लक्खा- बापू शहर ले के गए हैं।
दलेर कौर- बापू तेरे ने शहर तो नहीं रहना? आ ही जाएगा, फिर ले जीं अपने दादे नूं।
लक्खा- दादा जी को डाक्टर रोज दोपहर में ही सुई लगात हैं।
दलेर कौर- हमारा सैकल नहीं है घर में। तेरा चाचा लै के गया है खेत में।
लक्खा- *(थोड़ा चुप करके, डरता हुआ)* पर मां जी . . . हमने देखो थो कि चाचा तो ट्रेक्टर ले के गए हैं।
दलेर कौर- तू बड़ा ध्यान रखदा एं, साडे घर दा . . . हैं! मैं कह दित्त ना, सैकल नहीं हैगा घर।
(लक्खा दलेर कौर को मन ही मन बुरा-भला कहता हुआ चला जाता है। इतने में अंदर से मनजीत कौर आती है।)
मनजीत कौर- लक्खा क्या कहता था मां जी?
दलेर कौर- कहना की था, सैकल मंगन आया था। आदत नहीं न जाती मंगने की।
मनजीत कौर- फिर लेकर क्यों नहीं गया?
दलेर कौर- मैं मना कर दित्ता। पैसे लगदे ने चीजां ते। लोकां लई नहीं खरीदीयां।
मनजीत कौर- मां जी! ओस-पड़ोस में एक-दूजे की जरूरत पड़ी ही रहती है। आपने क्यों मना किया बेचारे को?
दलेर कौर- जब तेरी बारी आएगी तां तूं चाहे सारा घर लुटा देवीं। मेरे से नहीं चीजां तुड़वाई जांदीआं। मेरे पुत्त दा घर ए। उसके बाप ने मर के बनाया ए ये सारा कुझ। *(थोड़ा रुककर, धीमे स्वर में)* चीजां बनांदा ही मर गया। सुख लैण नूं होर आ गे।
मनजीत कौर- *(दुखी मन से)* अच्छा मां जी, जैसा आप ठीक समझो, करो। मेरे से नहीं लड़ा जाता आप से। मैं चली हूं नूर और किरन को स्कूल से लेने।
(मनजीत कौर चली जाती है। दलेर कौर घर के अंदर जाती है।)
दलेर कौर- *(बड़बड़ाती है)* मन साड़ दित्ता मेरा इस ने। पहले मेरा मुंडा मेरी कोई गल्ल सुनदा था अब वो भी घरवाली दी बोली बोलने लगा ए। कलेजा मचदा ए मेरा, जब मेरे नाल जुबान लड़ांदी ए। चल दलेर कौरे घुट्ट चा-छा बना के पी। ए लोक तां मैनूं कह देंदे ने कि डॉक्टर ने तैनूं दुध-चा पीने से मना कीता ए। आप मलाइयां ला-ला के पींदी ए, ते मेरी चा वी बंद कर दित्ती भैड़ी ने। *(फ्रिज खोलती हुई)* चल अज्ज तूं वी ठंडे दुध दे चटकारे लै दलेर कौरे। लोटा भर के पींदी हां। हाय नीं!

केले वी रखे ने बहू ने छुपा के। खुद खा-खा के मोटी हुंदी जांदी ए ते मैनूं कहती ए, मां जी, परहेज किया करो। परहेज करे मेरी बला। दलेर कौरे, पहिलां मांगने तो वी नहीं मिलदा था, अब मौका मिलिआ ए, खाली न जान दे। *(दलेर कौर दूध पी लेती है। बाहर को आती हुई।)* चल अब सो जा दलेर कौरे, सिर भां-भां करी जादां ऐ। बहू वी दित्ती रब्ब ने, सारा दिन सिर खांदी रहिंदी ए। *(सो जाती है।)*

(दोपहर-बाद का समय है। मनजीत कौर नूर और किरन को होमवर्क करा रही है। दलेर कौर उठती है।)

दलेर कौर- बहू कहां है?

मनजीत कौर- बाहर बैठी हूं मां जी। आ जाओ बाहर।

दलेर कौर- हाय! . . . हाय! . . . घुटने जवाब देंदे जा रहे ने। *(बैठ जाती है।)*

नूर- मम्मी! आज आप ने हमें न केला दिया न दूध। मुझे ला के दो न मम्मी।

मनजीत कौर- *(दलेर कौर की तरफ देखते हुए, बेटी से कहती है)* केले बेटा खत्म हो गए हैं। दूध आज थोड़ा दिया था भैंस ने। शाम को पी लेना।

(दलेर कौर मनजीत कौर की तरफ टेढ़ा-सा देखकर सिर झुका लेती है।)

मनजीत कौर- मां जी आप बैठे-बैठे हमसे बातें भी करो और मैं आपको सब्जी लाकर देती हूं, उसे काट दो।

दलेर कौर- ला दे-दे, घर में रहना ए तां तेरा हुक्म तां मंनना ही पड़ेगा।

मनजीत कौर- आप मां जी कभी खुश भी हो लिया करो।

दलेर कौर- हुक्म चलाएंगी तां खुश कित्थों होवांगी?

मनजीत कौर- इसमें हुक्म वाली क्या बात है? काम करने से ही खुशी मिलती है और फिर यह कौन-सा भारी काम है?

दलेर कौर- भारी वी दे दे। वो भी कर देवांगी। सब करदी रही हां। दस-दस आदमियां को अकेली पका के खिलांदी रही आं। अपनी सास को कभी जवाब नहीं सी दित्ता।

मनजीत कौर- मां जी! मैं बच्चों को पढ़ा रही हूं इसलिए आपसे थोड़ा-सा सहयोग मांग लिया। मत करो, ठीक है। मैं खुद कर लूंगी।

दलेर कौर- कर लै। मेरे पे एहसान थोड़ा करेंगी?

मनजीत कौर- मां जी, बस करो प्लीज़। मैंने तो इसलिए कहा था कि शाम को खाना जरा लेट हो जाए तो आप आफत ला देती हैं। अगर आप सब्जी काट देतीं तो मेरा थोड़ा टाइम बच जाता।

दलेर कौर- *(उठ कर जाती हुई, अपने आप में)* बड़ी आई चालाक। कहती, मेरे नाल बैठ के गल्लां कर, साथ में सब्जी काट। लोगो! मेरी बहू दो-मुंही है। मैं चल्ली हां सुक्खे दी दादी दे पास। आप बच्चे पढ़ाने दे बहाने मंजा मल्ल के बैठ जांदी ए। साडे वी बच्चे पढ़े ने। हमने तो कदे नहीं एदां कीता। आपे पढ़ गे।

(दलेर कौर जगीर कौर के घर जाती है।)

दलेर कौर- घर पे ही है सुक्खे दी दादी?

जगीर कौर- आ जा बहन दलेर कौरे!

दलेर कौर– ये क्या! तू तां हर वक्त कम्म विच फसी रहती है। छोड़ सियापा ये! कित्ते बूढ़े वक्त ही आराम कर के देख लै। किते तां सुख दी सांस लै लिया कर।

जगीर कौर– जितनी देर हाथ-पैर काम देते हैं इनको किसी न किसी काम में लगाए रखना चाहिए। बुड्डा आदमी जम के बैठ गया तो समझो शरीर झकड़ गया।

दलेर कौर– आपां दा शरीर तां नहीं साथ देंदा और न ही जी करदा ए अब कम्म करने को। घुटने सीधे नहीं होते, कम्म की करना? तेरी तां दो-दो बहुएं हैं फिर भी कम्म दी जहमत में फसी है।

जगीर कौर– जहमत काहे की बहन! बड़ी बहू अपनी बहन के पास गई है। छोटी तो बेचारी सारा दिन लड़की को ही संभालती है। अभी उसे सुलाकर कपड़े प्रेस कर रही है।

दलेर कौर– उसे भी बेचारी को वाहिगुरु मुंडा दे देंदा तां चिंता मुक जानी थी। अब की पता कुड़ियां ही चली आएं।

जगीर कौर– बहन! यह तो सब रब्ब की लीला है। कुड़ियां बेचारी कौन-सा रात को उठ-उठ कर खाती हैं? मन समझाने की बात है। इनको प्यार करो तो ये भी खूब सारा मोह देती हैं।

दलेर कौर– मेरी तां अपनी बहू नाल कुड़ियां पिच्छे लड़ाई हो जांदी ए। मेरा तां कालजा फटदा ए जदों मै घर विच्च दो-दो इकट्ठियां देखदी हां। अब तो मेरा मुंडा वी मेरे नाल लड़ पैंदा ए।

जगीर कौर– न लड़ा कर बेचारी बहू से। उसका इसमें क्या दोष है? अगर वे लोग चिंता नहीं करते तो हम चिंता क्यों करें? लड़ाई तो घर की खुशियों की दुश्मन है। फिर हम भी तो औरतें हैं। कम से कम हमें तो लड़कियों का पक्ष लेना चाहिए।

दलेर कौर– एक तू ही थी जिसदे कोल मैं अपना दुख-सुख कर लैंदी सी। अब तूं मैनूं ही गलत कहने लगी है। मेरे से नहीं किसी दे नीचे दब कर वक्त काटा जाता।

जगीर कौर– यह दबना नहीं है बहन! बच्चों की खुशी में हम बुजुर्गों को भी खुश रहना चाहिए। तभी तो आज-कल बच्चों की बुजुर्गों के साथ बनती नहीं। बुजुर्ग अपनी जिद में आकर घर छोड़ कर चले जाते हैं या फिर बच्चे उन्हें अकेला छोड़कर अपने अलग घर में रहने लगते हैं।

दलेर कौर– मैं तां नहीं घर छोड़ने वाली। जिसे रहना मेरे नाल रहे नहीं तां अपना जित्थे मर्जी जाए। तू तां ज्यादा ही दब गई एं बहुओं के नीचे। आज-कल की बहुएं तो अपने खसमां नूं वी माता-पिता दे खिलाफ कर देंदी हैं।

जगीर कौर– मैं तो बस इतना जानती हूं कि मेरा तो छोटा-मोटा काम करने से चलना-फिरना भी हो जाता है और घर में मान-सम्मान भी बना रहता है। इस उम्र में खाली बैठे रहने से तो रोटी भी हजम नहीं होती।

दलेर कौर– हजम की होणा ए? आपां खाती क्या हैं? मेरी बहू तां मैनूं सूखी रोटी

देंदी ए। कहती ए तेरा ब्लड वध जाएगा। दूध मेरा बंद ए। जे देंदी ए तां पानी पा के। कहती है कि पतला दूध जल्दी हजम हुंदा ऐ। आज मैं पूरे दो महीने बाद मनमर्जी नाल दूध पीता ए। मेरा परहेज करा-करा के मैनूं इस तरां कर दित्ता जैसे मेरा घर पे कोई हक ही नहीं। *(जोर से खांसती है।)*

(बाहर से लक्खा आता है। वह दलेर कौर को बैठी देख कर दरवाजे पर ही रुक जाता है।)

लक्खा- सुक्खे! ओ सुक्खे! बात सुन!

सुक्खा- क्या है यार?

लक्खा- अपना साइकिल देना थोड़ी देर के लिए। दादा जी को सुई लगवाने जाना है।

(सुक्खा लक्खे को साइकिल दे देता है।)

दलेर कौर- *(सब देख रही होती है)* तो ये इधर भी आ गया सैकल मंगन! साडे घर वी गया सी, मैं तां मना कर दित्ता। तुम भी बहाना लगा देंदे कि सैकल दे कुत्ते खराब हैं। मेरे तों बड़ा डरदा ए। मैनूं देख के अग्गे नहीं आया भैड़ा।

जगीर कौर- कोई बात नहीं बहन। ओस-पड़ोस से बनाकर रखनी चाहिए, क्या पता कब कोई जरूरत पड़ जाए!

दलेर कौर- भाई साहब कहीं गए हैं? दिखाई नहीं देते।

जगीर कौर- वे खेत में गए हैं।

दलेर कौर- खेत में उन्होंने कौन-सा हल चलाना है इस उम्र विच्च।

जगीर कौर- घर में सारा दिन लेटे-लेटे बच्चों पर खीझते रहते थे, कोई न कोई नोकाटोकी करते ही रहते थे। फिर उनकी शूगर भी बढ़ जाती थी। डॉक्टर ने कहा कि रोज सैर किया करो। बड़े लड़के ने समझाया तो पैदल चल कर खेत चले जाते हैं। सैर भी हो जाती है और वहां पर सब्जी की क्यारियों में इधर-उधर हाथ भी मारते रहते हैं। अब उनका मूढ़ और बीमारी ठीक रहती है।

दलेर कौर- *(उठकर चलती हुई)* अब तो मैनूं अपने वरगा कोई और घर ढूंढना पड़ेगा। तुम लोग तो अब काम-धंधे वाले बन गे। अच्छा जगीर कौरे! चलती हूं। जा के देखूं, मेरी बहू की करदी ए। रोटी-पानी करदी ए कि या चारपाई बिछाए लेटी ए।

(दलेर कौर घर पर आती है। घर में रवेल सिंघ का दोस्त राजपाल सिंघ बच्चों समेत आया है। दोनों परिवार बैठे चाय पी रहे हैं।)

दलेर कौर- कहां गए सारे जने?

रवेल सिंघ- इधर आ जाओ मां बैठक में।

दलेर कौर- मैं की करना ए बैठक में। बैठक तां तुम लोगां ने मेहमानों के लिए रखी ए। मेरा बैठक विच्च बैठना तां तुम्हें चंगा नहीं लगदा।

रवेल सिंघ- हां-हां मां, बैठक में मेहमान ही आए हैं। राजपाल सिंघ आया है अपनी बीवी-बच्चों के साथ।

दलेर कौर- *(बैठक की ओर जाती हुई)* कौन राजपाल, वो जो पिछले महीने आया था . . . तेरा दोस्त . . . आज बच्चे भी लै के आया ए?

राजपाल सिंघ- सति श्री अकाल मां जी।

राजपाल की पत्नी- सति श्री अकाल मां जी।

दलेर कौर- वाह जी वाह . . . बड़ी सेवा हुंदी पई ए मेहमानां दी . . . पकोड़े-शकोड़े . . . किन्ना कुछ बनाया ए मेरी बहू ने। और सुना पुत्त, सब ठीक ए! तेरे कोल तां टैम हुंदा ए . . . मेरे मुंडे कोल तां कम्म ही बहुत ए . . . अकेला ए ना . . . अकेले नूं २५ किल्ले जमीन सांभनी पैंदी ए . . . अज्ज कल दे मुंडियां नूं किल्ला-दो किल्ले तों ज्यादा जमीन हिस्से नहीं आउंदी . . . ए तां इसदे बापू ने दिन-रात एक करके २५ किल्ले पूरी कीती ए . . . जदों मैं सोचदी हां तां दुख आउंदा ए देख के।

राजपाल सिंघ- काहे का दुख मां जी?

दलेर कौर- यही कि बाद में तां जवाइयां ने ही सांभनी ए।

राजपाल सिंघ- *(झट से)* लो मां जी पकौड़े खाओ।

दलेर कौर- ला पुत्त. . . वैसे तो इन्होंने मेरे ते पाबंदी बड़ी लगाई ए . . . तली-भुनी चीज कोई नहीं खान देंदे मैनूं। आज तां मेरा गला खुष्क हुआ पड़ा ए . . . ला दो-चार खा ही लवां . . . थोड़ी गले विच्च तरी आ जे। पता नहीं की हो गया ए। आज तां मैं ज्यादा गल्लां वी नहीं कीतीआं, सुक्खे दी दादी दे कोल वी घड़ी एक ही बैठी थी। फिर वी सिर भारा-भारा लगदा ए। होर सुना, बच्चे कित्थे ने? *(धीमे स्वर में)* मुंडे हैं कि . . .?

राजपाल सिंघ- एक लड़का है तीन साल का मां जी। वो अंदर खेल रहा है आपकी पोतियों के साथ।

दलेर कौर- शुक्र ए रब्ब दा, . . . किस्मत वाले हो। साडे घर तां दो-दो कुड़ियां फिरदीयां ने। किस्मत तों बिना दुध ते पुत्त नहीं मिलदे।

रवेल सिंघ- *(बात बदलता हुआ)* मां की सेहत ठीक नहीं रहती। डॉक्टर कहते हैं कि इस उम्र में परहेज ही सबसे बड़ी दवा है। इनको सांस की तथा हाई बी. पी. की प्रोब्लम है।

दलेर कौर- *(पकौड़ा मुंह में डालती हुई)* डॉक्टरां दा की ए पुत्त! वो कहते ही रहते हैं . . . परहेज करो।. आदमी की भूखा मर जाए? दुनिया ते कौन-सा रोज-रोज आना ए . . .। मैं तां आपने टैम विच्च रज्ज के खादा ए। ओदों मुझे कुछ नहीं हुआ हुण की होवेगा? मुंडा मेरा तां ऐसे ही डर जांदा ए। थोड़ी-बहुत खांसी-खूंसी, रेशा-वेशा वी कोई बीमारी ए?

रवेल सिंघ- राजपाल यार, तू सुना अपने माता-पिता की, कैसे रहते हैं वे आजकल?

राजपाल सिंघ- दोस्त! वे तो अपना बुढ़ापा पूरी शान से काट रहे हैं। वे अपने आप को पूरी तरह फिट रखते हैं।

मनजीत कौर- ऐसा क्या मंत्र है उनके पास भाई साहब?

राजपाल सिंघ- भाभी जी! मेरे माता-पिता जी पहले ही कहा करते थे कि हमने अपना बुढ़ापा पूरी शान से बिताना है। उन्होंने अपना लाइफ-स्टाइल ही ऐसा बना लिया कि वे अपना पूरा ख्याल रखते हैं। मैं उनको कई बार 'जवान बुड्ढे' कहकर भी बुलाता हूं।

सुबह दोनों गुरुद्वारे जाकर भजन-बंदगी, पाठ-पूजा करते हैं। फिर पिता जी पौंटी को स्कूल छोड़ कर आते हैं, वो भी साइकिल पर। दिन में मेरे पास दुकान पे आ जाते हैं। वहां उनका बाहर के लोगों से मिलना-जुलना होकर उन्हें दुनियादारी का, अच्छे-बुरे का पता चलता रहता है। दोपहर को पौंटी को स्कूल से लेकर आते हैं। फिर वे कुछ देर आराम करके शाम को सेवा-सोसायटियों के साथ समाज सेवा के कार्यों में लग जाते हैं। हां, रात को सोने से पहले जब तक वे पौंटी के साथ आधा घंटा मस्ती न कर लें, सोते नहीं। वे कहते हैं कि अब मेरा असली दोस्त पौंटी है।

दलेर कौर- मुंडे-कुड़ी में बड़ा फर्क हुंदा ए पुत्त। वे तां किस्मत वाले हैं, उनको पोता मिला है खेलाने को। जी तां मेरा वी बड़ा करदा ए पर . . .।

राजपाल सिंघ- *(हंसते हुए)* उनके पास तो मां जी एक पोता है आपके पास तो दो-दो पोतियां हैं। आपको तो ज्यादा खुश रहना चाहिए।

दलेर कौर- सियाने कहते हैं कि लड़कियां दे नाल जो मोह करदे ने, एह उनके घर वल्ल ही रुख कर लैंदीआं ने। मैं तां डरदी हां पुत्त, किते . . .। बस रब्ब मैनूं वी पोता दे के खुशी दे देवे।

मनजीत कौर- *(माहौल को बदलती हुई)* अपनी सास के बारे में तो आपने बताया ही नहीं दीदी।

राजपाल की पत्नी- मेरी सासू मां तो मेरे को सारा दिन अपने पुराने दिनों का तजुर्बा बताती हुई यही कहती रहती हैं, बेटा हमने अपना वक्त तो बिता लिया अब टाइम तुम्हारा है। सारी जिम्मेदारियां तुम्हारी हैं। कहां जाना है, किससे मिलना है, कैसे घर चलाना है, सब काम उन्होंने हम पर डाल दिए हैं। मेरी सासू मां तो हर वक्त वाहिगुरु-वाहिगुरु कहती रहती हैं। वे तो मुझे दिन में खाली समय रोज एक-दो साखियां भी सुना देती हैं। वे जब मेरे साथ छोटे-मोटे कामों में हाथ बंटाती हैं तो मुझे बड़ी हिम्मत मिलती है।

राजपाल सिंघ- हम दोनों सुबह योगा यानी शारीरिक कसरत करते हैं। हमने कह-कहलवाकर मां और पिता जी को भी साथ में लगा लिया है। एक घंटे तक वे भी हल्की-फुल्की कसरत करते हैं।

दलेर कौर- कहीं तुम लोग ये सब मैनूं तां नहीं सुना रहे?

राजपाल सिंघ- नहीं मां जी, ऐसी बात नहीं है। इंसान को वैसे भी अपने बारे में दूसरों को बताते रहना चाहिए और दूसरे की सुनते रहना चाहिए। ऐसे ही विचारों का आदान-प्रदान होता है और जीवन की कई बातें सीखने को मिलती हैं। एक दिन गुरुद्वारा साहिब कथा में भाई साहिब गुरबाणी का उपदेश सुना रहे थे--*"जब तक दुनीआ रहीए नानक किछु कहीए किछु सुणीऐ ॥"*

दलेर कौर- बहुत सीख लिया पुत्त। बाकी मेरा बेटा-बहूं मैनूं सिखांदे ही रहते

हैं। तेरी तां मां तेरे बापू दे नाल दुख-सुख सांझा कर लैंदी होवेगी, *(आंखें पोंछती हुई)* मैं किसके साथ करूं? रवेल दे बापू नूं गए दस साल हो गे।

राजपाल सिंघ- मां जी! आप अपने को अकेला मत समझा करो। आपका तो बेटा आज्ञाकारी है, सुशील बहू है, प्यारी-प्यारी पोतियां हैं। कितना बड़ा परिवार है आपका! फिर कभी-कभी आप हमारे घर भी आ जाया करो। मेरी माता जी से मिलकर आप बड़ी खुश होंगी।

दलेर कौर- ना पुत्त ना! इतनी महंगाई विच्च घर तों बाहर पैर नहीं निकाला जाता। अब देखो! तुम लोग आए हो। पहले तुमने किराया-भाड़ा खर्चा, फिर आगे इहनां ने कितना खर्चा कीता। कुछ हत्थ आया? नहीं, कुछ वी ना। गल्लां-बातां करके मन हल्का जरूर हो गया ए, बस। *(बच्चों को खेलते देखकर)* न बच्चो, हल्ला न करो, मेरा तां सिर पहले ही भारा होइआ ए। इस घर में तां इन दोनों दा शोर ही बड़ा सी, अब तीसरा तुम्हारा मुंडा नाल मिल गया।

(राजपाल का लड़का पौंटी, नूर तथा किरन के साथ खिलौने लेकर खेल रहे हैं। तीनों बहुत खुश हैं। इतने में पौंटी के हाथ से एक खिलौना टूट जाता है।)

दलेर कौर- *(तीनों को देखकर)* तुम लोग तोड़ डालो महंगे भाव के खिलौने। पुत्त राजपाल! तुम्हारा लड़का बड़ा शैतान ए। लगदा ए, इसके दादा-दादी दे लाड़-प्यार ने बिगाड़ दित्ता ए इसे। देख, कुड़ियां बेचारियां दा किन्ना नुकसान कर दित्ता। ऐवें इनके बाप ने पैसे खर्च-खर्च के घर भर रखिआ ए खिलौनियां दे नाल।

राजपाल सिंघ- पौंटी, इधर आ। तूने अपनी दीदियों का खिलौना तोड़ दिया। चल सौरी बोल दादी मां से।

पौंटी- सौरी, दादी मां!

रवेल सिंघ- मां, तू जा अपने कमरे में। बहुत बर्दाश्त कर लिया मैंने। किसी आये-गये का कोई लिहाज नहीं तुम्हें।

दलेर कौर- (राजपाल से) देख लिया पुत्त। ये कैसा विहार करदे ने मेरे नाल? जरा-सा बच्चों को झिड़क दिया, की बुरा कीता? गलत नूं गलत ही कह दित्ता मैंने, और की कर दित्ता? मैं इनके घर-दा इतना सोचदी हां पर ये मैनूं . . . मैं इनसे दुखी होकर चली जावांगी किते। *(रोने लगती है।)*

राजपाल सिंघ- नहीं मां जी, यह आपका घर है। इनको आपकी सदा जरूरत है। बुजुर्ग तो घर की शान होते हैं। घर का ताला हैं बुजुर्ग। *(दलेर कौर उठकर चली जाती है।)*

राजपाल सिंघ- रवेल भाई! मैं मां जी का स्वभाव समझ गया हूं, पर किया क्या जाए? यह समस्या तुम्हारे अकेले की नहीं कई घरों की है। अब तुम दोनों ही समझदारी से बीच का रास्ता निकाल लिया करो। ठीक है, हम लोग चलते हैं। *(राजपाल सिंघ अपने परिवार को लेकर चला जाता है)*

(रात का समय है। दलेर कौर कमरे में लेटी है तथा जोर-जोर से खांस रही है और ऊंघ रही है।)

रवेल सिंघ- मनजीत! मां बहुत परेशान करने लगी है। देखा, आज कितना फालतू बोला इसने राजपाल के सामने। क्या सोचते होंगे वे लोग? यह सबको कहती है कि मेरे पे पाबंदी लगा रखी है, अब देख कैसे खांस रही है। देखना अब इसकी सांस भी फूलने लगेगी।

मनजीत कौर- हम तो एडजस्ट कर रहे हैं जितना भी हो सके। फिर भी जैसी है हमारी अपनी है। अब तो बर्दाश्त करने में ही समझदारी है।

रवेल सिंघ- लोगों का मुंह नहीं बंद होगा, नहीं तो दिल तो चाहता है कि मां को किसी वृद्ध-आश्रम में छोड़ आऊं।

मनजीत कौर- ऐसी बात दोबारा मत कहना जी! अब चाहे सारे गांव वालों, रिश्तेदारों को मां जी की आदतों का पता है, मगर बाद में लोग हमें ही दोषी मानेंगे कि लो बाप था नहीं, मां को भी घर से धक्का दे दिया।

रवेल सिंघ- पता नहीं यह कब बदलेगी अपने आप को? दमे की मरीज है फिर भी पकौड़े देख के ऐसी टूट पड़ी थी जैसे कभी कुछ देखा ही नहीं होता।

मनजीत कौर- मैंने तो आपको बताया ही नहीं कि आप मां जी को डांटेंगे। आज दिन में मां जी ने फ्रिज में से ठंडा दूध निकाल कर पिया था और साथ में दो केले भी खाए थे। मैंने तो डरती ने पूछा तक नहीं। लक्खा साइकिल मांगने आया था। मां जी उसे भी मना कर दिया। अब आप कुछ मत कहना मां जी से।

(दलेर कौर जौर-जोर से खांस रही है)

रवेल सिंघ- देखना, एक दिन हमें गांव में कोई घर जरा-सी चीज तक नहीं दिया करेगा। अब मैं कोई दवा नहीं ला के दूंगा इसे। जो जी में आए खाये-पीये। जितना मर्जी बोले! मनजीत! मां को चाहे इस बात का एहसास भले न हो मगर मैं तेरे जैसी पत्नी पाकर धन्य हूं।

मनजीत कौर- मैं थोड़ा पानी गर्म करके पिलाती हूं मां जी को। शायद उन्हें कुछ राहत मिले।

(मनजीत कौर दलेर कौर को पानी पिलाकर रसोई में आ जाती है। बाहर से पिंकी नाम की एक लड़की आती है।)

पिंकी- आंटी! कहां हो?

मनजीत कौर- आ जा पिंकी, रसोई में हूं।

(पिंकी और मनजीत कौर बातें करती हैं। दोनों के बातें करने का एहसास दलेर कौर को हो जाता है।)

दलेर कौर- (खांसते हुए) कौन आया है बहू?

मनजीत कौर- पिंकी है मां जी।

दलेर कौर- अच्छा! . . . हां, इसकी मां परसों शकर का गिलास पूरा भर के लै गई थी . . . लाई है?

मनजीत कौर- वो तो इसकी मम्मी कल ही दे गई थी मां जी।

दलेर कौर- अच्छी बात . . .। हां, सुन बहू, मैं रोटी नहीं खानी, मेरा नहीं दिल करदा। *(अपने आप में)* शकर दे भाव नूं आग लगी पई ए। गिलास विच्च तां डेढ़ पाव आ ही जांदी होवेगी।

(पिंकी और मनजीत कौर दोनों मुस्कराती हुई

बातें करने लगती हैं।)

(अगला दिन।)

(दलेर कौर काफी बीमार है। उधर नूर को भी बुखार है।)

रवेल सिंघ– मनजीत! पहले नूर की दवा ले आते हैं फिर लगता है मां को भी अस्पताल ले जाना पड़ेगा।

मनजीत कौर– मां जी ने तो रात से कुछ भी नहीं खाया-पीया। दूधिया आता होगा, आप उसको दूध देकर पहले नूर को लेकर चले जाना, फिर मां जी को अस्पताल ले चलेंगे।

रवेल सिंघ– मां ने कल ही इतना खा लिया आज क्या खाएगी?

(दूधिया आता है।)

दूधिया– लाओ पाजी दूध डालो . . . ये पैसा भी ले लो . . . बड़ा मुश्किल से सात सौ रुपया को जुगाड़ बनो है।

रवेल सिंघ– अभी तो परसों तुझसे पैसे लिए हैं। आज इतनी जल्दी फिर?

दूधिया– कल माता जी ने कही थी कि आप लोगों को किसी शादी में जाना है, हजार रुपया की जरूरत है।

(रवेल सिंघ चुप कर जाता है। दूधिया चला जाता है। रवेल सिंघ दलेर कौर के पास आता है।)

रवेल सिंघ– मां! कैसी है तबियत तुम्हारी?

दलेर कौर– बहुत बुरा हाल ए। सांस गल विच्च आ के रुक जांदी ए।

रवेल सिंघ– कल तुमने दूधिया को पैसे देने के लिए क्यों कहा था?

दलेर कौर– *(खांसते हुए)* तैनूं नहीं तां मैनूं ते फिक्र ए घर दा। अज्जकल किसे दा की भरोसा? दस दिन दुध लै के जे न आया तां कहां ढूंढता फिरेगा? मैनूं तां मरदी नूं वी सारे पासे ध्यान रखना पैंदा ए।

रवेल सिंघ– मां! सारे घर की छोड़, तू अपना ही ध्यान रख लिया कर हमारे लिए इतना ही काफी है। दुनिया में रहना है तो विश्वास तो करना ही पड़ेगा। *(परेशान होकर)* वो पता नहीं कैसे जुगाड़ करके लाया होगा बेचारा। *(मनजीत कौर से)* चल मनजीत, नूर को तैयार कर।

दलेर कौर– मैनूं किसे डॉक्टर दे कोल ले चल पुत्त . . . मैं मर चल्ली ऊ . . . हाय! चौबी घंटे मेरे नाल ही लड़दे रहिंदे जे। तुम्हारी लड़ाई ही मैनूं बीमार कर देंदी ए।

रवेल सिंघ– *(मन ही मन में)* 'उल्टा चोर कोतवाल को डांटे।' *(दलेर कौर से)* नूर भी बीमार है। मैं पहले उसकी दवा ले आऊं। तुम्हें बाद में ले के जाएंगे।

दलेर कौर– मैनूं पहले ले जा . . . कुड़ियां नूं कुछ नहीं हुंदा . . . ए नहीं मरदीआं माड़े-मोटे बुखार नाल . . . हाय!

रवेल सिंघ– शुभ-शुभ बोल मां। अच्छी बात करनी नहीं आती तो मुंह बंद ही रखा कर।

दलेर कौर– न बुला मैनूं, मैथों नहीं बोला जाता . . . हाय! जे मैं इतनी बुरी हो गई हां तां गल घुट्ट दे मेरा . . . सियापा खत्म होवे . . . हाय!

मनजीत कौर– *(रवेल सिंघ से)* क्यों सवेरे-सवेरे लड़ाई करते हो? पहले ही बड़ी परेशानियां हैं। आप मां जी को अस्पताल ले जाओ, मैं नूर को ले जाती हूं।

(रवेल सिंघ दलेर कौर को लेकर अस्पताल जाता है। नूर को लेकर मनजीत कौर दवाई लेने चली जाती है।)

(अस्पताल का दृश्य है। डॉक्टर दलेर कौर को दाखिल कर लेता है। दलेर कौर अस्पताल में लेटी है।)

(दो दिन बाद)

दलेर कौर– पुत्त! कब देगा डॉक्टर छुट्टी? जा पूछ जा के डाक्टर नूं। मैनूं तां भूखे मार दित्ता ए। बिमारां वाला खाना खा-खा के मैनूं उलटी आउंदी ए।

रवेल सिंघ– डाक्टर कहता है कि जब तक तुम बिलकुल ठीक नहीं होती छुट्टी नहीं मिलेगी। मैं तो तुम्हें कहा करता था कि बिलकुल छोड़ने से संभल कर खाना अच्छा है।

दलेर कौर– डाक्टर ने तां कहना ही हुंदा ए। उसदे तां पैसे बणदे ने। मेरा नहीं चित्त लगदा एथे। एक दिन चार पकौड़े की खा ले, सियापा ही पै गिआ।

रवेल सिंघ– बात एक दिन के पकौड़ों की नहीं, न ही ठंडे दूध और ठंडे केलों की है। तुम्हें तो रोज सोच-समझ कर खाना चाहिए। डाक्टर कहता है कि मां जी घर जाकर परहेज नहीं करेंगी। इसे इधर ही छोड़ जाओ महीना-दो महीने।

दलेर कौर– मेरे क्या दो-दो पेट हैं? बहुता डाक्टर के पीछे नहीं लगा करते। जे तूं मैनूं नहीं संभालना तां छड्ड जा मैनूं एथे। मैं फालतू हो गई हूं न। *(सिसकती हुई)* रवेल दे बापू! तूं तां चला गया ते मैनूं छोड़ गया इकल्ली नूं। अब मैं इकल्ली . . . ।

रवेल सिंघ– *(दलेर कौर के पास बैठ कर)* मां! तुम तो ऐसे रोने लग गई जैसे बच्चे रोते हैं। बूढ़े वाकई बच्चों की तरह होते हैं। अब डाक्टर ने रुकने को कहा है तो चलो दो-चार दिन और देख लेते हैं।

दलेर कौर– तूं वी लगदा डाक्टर नाल रल गिआ एं। चलो, दो-चार दिन और काट लवांगी औखे-सौखे।

(चार दिन बाद)

(मनजीत कौर खाना लेकर आई है। रवेल सिंघ भी दलेर कौर के पास बैठा है।)

दलेर कौर– बहू! कल को रोटी न लाईं। मैं कल नूं घर आ जाना ए।

मनजीत कौर– मां जी! आपके बिना घर भी सूना-सूना लगता है। वाहिगुरु आपको जल्दी तंदरुस्त करे और आप अपने परिवार में जल्दी लौटें।

रवेल सिंघ– नहीं मनजीत, डाक्टर साहिब कह रहे हैं कि मां घर पे जाकर फिर बीमार हो जाएंगी। इनको थोड़े दिन और रखना है।

दलेर कौर– तू कह नहीं सकदा डाक्टर नूं कि मैं ठीक हूं? वो तो ऐवें बिल बनाए जा रहा ए लम्बा-चौड़ा। मेरे पुत्त दी खून-पसीने दी कमाई ए। कहता, छुट्टी नहीं देनी, मेरा की अचार डालना ए डाक्टर ने?

रवेल सिंघ– यही तो प्रोब्लम है कि बुजुर्ग अपना इलाज करवाने से भी कन्नी कतराते हैं। ठीक है मां, मैं डाक्टर से बात करता हूं।

मनजीत कौर– आप डॉक्टर से कहना कि

हम बीच-बार में आकर मां जी को दिखा जाया करेंगे।

दलेर कौर- हां बहू, तू ही समझा इसे।

(रवेल सिंघ डाक्टर से मिलने जाता है। वह डाक्टर से कहता है कि आप मां जी को जरा सख्ती से कहिए। एक तो इनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया है और दूसरा ये खाने में परहेज नहीं करती। रवेल सिंघ वापिस आता है।)

रवेल सिंघ- डाक्टर साहब कहते हैं कि मां के कुछ टेस्ट करने हैं। रिपोर्टस आने पर छुट्टी के बारे में सोचेंगे।

दलेर कौर- मैं नहीं कराने टैस्ट। बोतल खून तां मेरा इन्होंने टैस्ट करते निकाल लिया। मेरा तां सारा शरीर छेद दित्ता ए सुइयां लगा-लगा के। घड़ी-घड़ी बाद गोली धर देंदे ने मेरे हाथ पे। मेरे तां गले में जा के गोली भी फूल जांदी ए।

रवेल सिंघ- *(मुस्कराता हुआ)* मैं केले लाता हूं फ्रिज में से निकाल के, केले में दबा के खा लिया कर।

मनजीत कौर- *(रवेल सिंघ से)* बस भी करो अब। एक तो वो बीमार हैं दूसरा आप . . . । *(दलेर कौर से)* मां जी! डाक्टर की बात मानना हम सब के लिए फायदेमंद है। आप रुक जाइए एक-दो दिन और। अच्छा मैं चलती हूं। घर पर बच्चियां अकेली हैं।

दलेर कौर- हां बहू, तू जा। एक काम करीं। कल को नूर को साथ ले के आईं। मेरा उसनूं मिलन नूं बड़ा जी करदा ए। रब्ब ने मैनूं कित्थे सुनसान विच्च कैद कर के रखिआ ए।

रवेल सिंघ- घर पे तुम्हें बच्चों का शोर अच्छा नहीं लगता और यहां सुनसान में रहना भी तुम्हारे लिए कठिन है। मां तुम भी पता नहीं क्या चाहती हो?

मनजीत कौर- (मुस्कराती हुई) ठीक है मां जी। ले के आऊंगी।

(पांचवां दिन)

(दलेर कौर अस्पताल में बैठी है। रवेल सिंघ भी पास में बैठा अखबार पढ़ रहा है।)

दलेर कौर- तूं की आह सवेर दी मुंह नूं ला के बैठा एं खबार? जा, जा के डाक्टर नूं पुच्छ, कदों भेजदा ए सानूं घर।

रवेल सिंघ- थोड़ी देर और इंतजार करो मां, वो अपने आप आ जाएगा देखने।

(मनजीत कौर नूर को साथ लेकर प्रवेश करती है।)

मनजीत कौर- सति श्री अकाल मां जी।

नूर- सति श्री अकाल दादी जी।

दलेर कौर- सति श्री अकाल। आ मेरी बच्ची, आ मेरे गले लग जा। *(चूमती हुई)* तैनूं याद नहीं आई अपनी दादी दी?

नूर- बहुत आई थी दादी जी! पर . . . आप तो मुझे और दीदी को अच्छा नहीं समझती।

दलेर कौर- *(गले से लगाते हुए)* नहीं पुत्त, मैं तां बड़ा प्यार करदी हां तुहानूं।

नूर- नहीं आप झूठ बोलती हो। आपको तो लड़के अच्छे लगते हैं। अगर आप हमसे प्यार करोगी तो हम भी आपको बहुत सारा प्यार करेंगे, आपके साथ खेला करेंगे। हम भगवान से प्रेयर करेंगे कि हमारी दादी को कभी

बीमार न करना।

दलेर कौर– हाय मेरी बच्ची! तूं मेरे लई रब नूं कहेंगी! तूं तां बड़ी सियानी हो गई एं। *(कस कर गले से लगा लेती है।)*

रवेल सिंघ– देखा मां, बच्चों के मन में कितना प्यार है तेरे लिए और तुम हो कि . . .। उन बच्चों से पूछो जिन्होंने दादी की गोदी का आनंद नहीं लिया होता, जिन्होंने दादा के कंधों पर बैठकर किलकारियां नहीं मारी होतीं।

मनजीत कौर– *(बात बदलती हुई)* मां जी भी बहुत प्यार करते हैं हम सबसे।

(तभी डाक्टर प्रवेश करता है)

डाक्टर– कैसी हो माता जी?

दलेर कौर– ठीक हूं, मैनूं की होइआ ए? डाक्टर साहब! अज्ज मैनूं छुट्टी दे दो। मैं अपने घर जाना ए।

डाक्टर– हां, रिपोर्टस आपकी नार्मल हैं, पर . . .।

दलेर कौर– पर की?

डाक्टर– मुझे पता चला है माता जी कि आप घर पर चिड़चिड़ी-सी बनी रहती हैं। आप परहेज नहीं करतीं, छोटी-छोटी बातों पर लड़ाई करती हो, अपनी पोतियों को अच्छा नहीं जानती, बहू से झगड़ती रहती हो। क्या यह ठीक है?

दलेर कौर– जो तुसीं कहते हो सब ठीक ए। पर मैं अब अपने घर जावांगी। मैं आप नूं किसे शिकायत दा मौका नहीं देवांगी।

डाक्टर– मैंने तो सोचा था कि आपको छः महीने के लिए स्कूल में दाखिल करवा दिया जाए।

मनजीत कौर– कौन-सा स्कूल डाक्टर साहब?

डाक्टर– जो बुजुर्ग आपकी सास की तरह हो जाते हैं उनके स्वभाव को बदलने के लिए हमने एक स्कूल खोला है जहां पर बुजुर्गों को अपने बच्चों के साथ रहने, नई पीढ़ी के साथ रहते हुए खुद को कैसे बदलना है, बूढ़े होने पर खान-पान में क्या परिवर्तन करना है, बोलचाल तथा अपने अहं को कैसे ढालना है, शरीर को निरोग कैसे रखना है आदि कई ऐसी बातें हैं जो हमारी एक मास्टरों की टीम बुजुर्गों को बताती है। हां . . . एक बात और खास है, वो यह है कि वहां पर सब बुजुर्गों को मिलकर सारा काम साफ-सफाई से लेकर खाना बनाने तक, खुद ही करना पड़ता है। जो बुजुर्ग घर में पानी का गिलास तक खुद भर कर नहीं पीते यहां आकर वे सारा काम करते हैं।

रवेल सिंघ– डाक्टर साहब! लगता है आप मां का सारा इलाज करके ही भेजेंगे। चलो, जैसी आपकी इच्छा।

दलेर कौर– तू चुप कर। मेरी इच्छा की ए, पहले ये तां पुच्छ लै। मैं नहीं रहना इत्थे अकेली। मैं क्यों बेगानों में रहूं। मेरा अपना घर है। मैं अपने घर जावांगी। मैं खुद कर लवांगी अपना इलाज। डाक्टर साहब जो बातें तुसीं मैनूं बतांदे हो ये तो मेरे बेटा-बहू मैनूं कई बार कह चुके हैं, मैं ही नहीं मंनदी सी। आज से मैं इनकी सारी गल्लें मानूंगी। जे किसे दे कहने ते

मैं अपना ख्याल रखना ए, तां मैनूं आप की होइआ ए? बंदा खुद नूं विगाड़ सकदा ए तां की खुद नूं सुधार नहीं सकदा। मैं बदल लवांगी अपना स्वभाव। डाक्टर साहब! आप मेरे पुत्त नूं वी कहो न कि यह मेरे नाल निक्की-निक्की गल्ल तों लड़ा न करे। मैं अपने घर के बिना किते नहीं रहना। मेरा घर है, मेरा परिवार है। मैं क्यों अड़ियल-सी बन के बाहर धक्के खावां?

डाक्टर- माता जी! अगर आपने घर में अपना मान-सम्मान करवाना है तो आपको अपने आप को बदलना होगा।

दलेर कौर- डाक्टर साहब! मैं हां पुराने विचारां वाली औरत। दरअसल मेरी सास ने मेरे नाल ते मेरी जठानी नाल बड़ा जुल्म कीता सी। मेरे घर पहले कुड़ी हुई। जदों तक मेरे मुंडा *(रवेल सिंघ की तरफ इशारा करती हुई)* नहीं होइआ मेरी सास ने मेरा जीना मुहाल कर दित्ता सी। मेरे दमाग विच वही बात बैठ गई कि अंश-वंश चलाने दे लई मुंडा जरूरी होना चाहिए। मैं तभी से सोचती थी कि मेरे घर वाहिगुरु एक नहीं दो-दो पोतरे देवे, पर होइआ इसके उल्ट। दूसरा, जब से रवेल दा बापू चढ़ाई कर गया मैं खुद नूं इकल्ली समझने लग गई ते डर गई कि जे मैं अपनी बहू नूं दबा के न रखा तां यह मेरा जीना औखा कर देवेगी। पर मैं यह भुल्ल गई कि नवीं पीढ़ी पुरानीयां गल्लां नूं चंगा नहीं समझदी। वाकई, सारी पुरानी गल्लें सारे पुराने विचार चंगे नहीं सी हुंदे। बच्चों दी खुशी विच्च बुजुर्गों को भी खुश रहना चाहिए।

डाक्टर- आपको तो फिर यह सोचना कि आप ने जिस हाल में अपनी सास का सामना किया, दुख सहे, कम से कम आप तो वैसी सास न बनें। *(रवेल सिंघ से)* क्यों सरदार रवेल सिंघ! माता जी की बात मान ली जाए?

रवेल सिंघ- हां . . . मेरे ख्याल से . . .।

मनजीत कौर- डाक्टर साहब! आप मां जी को डिस्चार्ज कर दे दीजिए। मां जी अपने घर रहकर जितना खुश रहेंगी उतना बाहर नहीं।

डाक्टर- माता जी! देखा, आपकी बहू तो आपके पक्ष में ही बात करती है। लगता, सास-बहू की खूब बनती है।

दलेर कौर- न वी बनदी होवेगी तो हम बना लेंगे। मेरी बेटी जैसी है मेरी बहू।

डाक्टर- अच्छा भाई, आप लोग आपस में खुश हैं तो चलो हम माता जी का दाखिला स्कूल में नहीं करेंगे। जाओ माता जी आप अपने परिवार में सुख-शांति से बुढ़ापा व्यतीत करो। हां, सरदार रवेल सिंघ आप माता जी की फाइल रिसेप्शन से ले लेना। ओके! मैं चलता हूं।

नूर- *(डाक्टर से)* अंकल! आप दादी जी का एडमीशन अपने स्कूल में मत कीजिए। पापा दादी जी का एडमीशन हमारे स्कूल में करवा देंगे। दादी जी हमारे साथ स्कूल जाया करेंगी।

(सभी हंसने लगते हैं।)



बुजुर्ग खुद रोल माडल बनें!

*-बीबी हरप्रीत कौर**

बुजुर्ग एक घने वृक्ष की छाया की तरह होते हैं जिनके साये तले बच्चे सदा सुख लेते हैं। कोई भी दुख, परेशानी या तकलीफ हो, बुजुर्ग अपने बच्चों का हमेशा सहारा बनते हैं। इनका प्यार शुद्ध तथा नि:स्वार्थ होता है।

बुजुर्ग बच्चों की जिंदगी में एक मजबूत नींव का काम करते हैं, जिस पर चलकर बच्चे आदर्श जीवन जीते हैं और विकास की राह पर चल कर अपने जीवन को सार्थक बनाते हैं। अगर बच्चों की नींव मजबूत होगी तो ही बच्चा आदर्श जीवन जी सकता है अर्थात् बुजुर्ग काफी सीमा तक बच्चों की जिंदगी पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। उनके विचार, आदतें, व्यवहार तथा अनुभव बच्चों की जिंदगी को प्रभावित करते हैं। बच्चे ज्यादा वही सीखते हैं जो अपने बुजुर्गों को घर में करते देखते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि बच्चे बाहरी वातावरण से भी बहुत कुछ सीखते हैं लेकिन अपने घर के वातावरण का असर बच्चों पर कुछ ज्यादा होता है।

सिक्ख धर्म दुनिया का एक महान धर्म है। इस धर्म की महत्ता यह है कि इसमें ऊंच-नीच, जात-पात, वहम-भ्रम के लिए कोई स्थान नहीं है। सिक्ख धर्म इस तरह का धर्म है जिसमें इंसान को बिना किसी अन्य भय के केवल प्रभु के भय में ही जीना सिखाया जाता है। हमारे बुजुर्गों ने अपनी जानें कुर्बान करके इस धर्म की नींव रखी थी। उन्होंने वो सब कुछ प्रत्यक्ष करके दिखाया जिसकी शिक्षा हमारे गुरु साहिबान ने हमें दी। उन्होंने ऊंच-नीच, जात-पात, वहम-भ्रम को खत्म करके 'नाम जपो, किरत करो और वंड छको' के सिद्धांत पर चलकर एक आदर्श जीवन व्यतीत किया।

क्या आज बुजुर्ग इस मार्ग पर चलते हैं? क्या वे अपनी आने वाली पीढ़ी को इस पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं? क्या वे वहम-भ्रम, ऊंच-नीच तथा जात-पात एवं शगुन-अपशगुन जैसे ख्यालों को त्याग चुके हैं? आज शायद सिक्ख धर्म में इस तरह के बुजुर्ग कम ही हैं जो अपनी आने वाली पीढ़ी या बच्चों को इन कर्मकांडों तथा अंधविश्वासों से सुचेत करते हैं।

ये वहम-भ्रम बुजुर्गों से बच्चों में, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में, दूसरी से तीसरी पीढ़ी में चले आ रहे हैं। इन वहमों-भ्रमों में गले में ताबीज डालना, पत्थरों के नगों को अंगूठियों में जड़कर उंगलियों में पहनना, बृहस्पतिवार या शनिवार सिर नहीं धोना, शनिवार के दिन लोहे की कोई चीज न खरीदना, छींक आने पर घर से बाहर न जाना, बिल्ली द्वारा रास्ता काटना, व्रत रखना, कब्रों आदि पर दीये जगाना इत्यादि प्रमुख हैं जो आज के ज्यादातर बुजुर्ग-जन जाने-अनजाने में अपनी औलाद, पोते-पोतियों आदि को दे रहे हैं।

**C/o स. अमरीक सिंघ, सूरता सिंघ रोड, सामने खालसा कालेज पब्लिक स्कूल, जी. टी. रोड, श्री अमृतसर।*

मेरी ननद की एक छोटी बेटी है, जिसकी आयु १० वर्ष की है। उसका ज्यादातर समय अपनी दादी के साथ ही बीतता है। मार्केट जाना हो, रिश्तेदारी में जाना हो या गांव में किसी के घर जाना हो तो अधिकांशत: दोनों दादी-पोती इकट्ठी ही जाती हैं। दादी को इधर-उधर की बातें करने तथा सुझाव देने का बहुत शौक है। एक दिन पड़ोस में बच्चा बीमार हो गया। उसका बुखार नहीं उतर रहा था। दादी को पता चला तो वह अपनी पोती समेत उसके घर पहुंच गई और बच्चे की मां को डॉक्टर के पास जाने की सलाह देने की जगह उसे किसी सियाने या ज्योतिष के पास जाने की सलाह देने लगी कि "इस पर कोई साया है, किसी की बुरी नज़र लग गई है, दवाई से ठीक नहीं होगा, अन्य कोई उपाय करवाना पड़ेगा। इसके गले में कोई ताबीज डलवा लो तो बच्चा ठीक हो जाएगा।"

मेरी ननद की बेटी यह सब कुछ देख-सुन रही थी। उसके बाल मन में ये सब बातें घर कर गईं। कुछ दिनों बाद उसके दादा जी बीमार पड़ गए। मुझे यह सुनकर बहुत हैरानी हुई कि जब उसने ये सारी बातें उसी तरह कह दीं जैसे उसकी दादी ने बच्चे के बीमार होने पर कही थीं। दादी की कही हुई बातें उसके मन में ज्यों की त्यों हैं। उसने अपनी दादी से यह भी सीख लिया कि घर से बाहर जाते समय यदि कोई छींक दे तो उस समय बाहर जाने से नुकसान हो सकता है। इस तरह के कई अन्य वहम-भ्रम हैं जो बच्चे अपने बुजुर्गों से करना सीख जाते हैं।

मैं खुद को आधुनिक युग का एक हिस्सा मानती हूं और सिक्ख होने के नाते सिक्ख धर्म पर चलने की पूरी कोशिश करती हूं। मगर मेरे साथ भी कुछ ऐसा ही घटित हो जाता रहा है। मेरे पति बताया करते हैं कि बचपन में जब मैं कभी बीमार हो जाता तो मेरी दादी-मां ने लाल मिर्चें मेरे सिर पर से वार कर आग में फेंक देनी और कहना कि "इसे नज़र लग गई है। नज़र उतर गई तो अपने आप ठीक हो जाएगा।" बात भले ही छोटी है मगर इसका असर आज भी मेरे ससुर जी पर देखने को मिलता है। ऐसे लगता है कि मेरे पति की दादी-मां की वहमों-भ्रमों की गठरी मेरे ससुर जी के पास सुरक्षित पड़ी है। कई बार मेरे ससुर जी हमें शनिवार सिर नहीं धोने देते और कभी शनिवार वाले दिन काले रंग के कपड़े पहनने से रोकते हैं। जब मेरे पति को नौकरी नहीं मिल रही थी, शायद ही शहर का कोई 'सियाना' हो जिसके पास मेरे ससुर जी न गए हों। मेरी सासू-मां जी परमात्मा में आस्था रखती हैं। वो मजबूरीवश इन वहमों-भ्रमों का भय दिल में बैठाए सब कुछ न चाहते हुए भी देखती रहती हैं। मेरे पति तथा सासू-मां जी में बहस छिड़ जाती है कि जब परमात्मा ही सब कुछ है तो इन वहमों-भ्रमों से डरने की क्या आवश्यकता है?

एक बार मेरे पति अपने दोस्त के घर पर गये। उनकी दादी जी के साथ बातें करने से उन्हें पता चला कि वे अपने पूर्वजों का अनुकरण करके मूर्ति-पूजा, गुरु साहिबान तथा परलोकवासी बुजुर्गों की तस्वीरों के आगे दीये जगाना सिक्ख धर्म का ही हिस्सा मानती हैं। उनके एतराज करने पर उन्होंने बताया कि यह सब हमारे बुजुर्गों के समय से चला आ रहा है। उन्होंने अनुमान लगा लिया कि यह

सब शायद आगे भी यूं ही चलता रहे।

बुजुर्ग हमारे आदर्श हैं। उनके पास जीवन भर का अनुभव है। बुजुर्गों का फर्ज है कि वे अपने बच्चों को सही दिशा दिखाएं, सत्य के मार्ग पर चलने की शिक्षा दें, वहमों-भ्रमों को खुद त्याग कर बच्चों को भी ऐसे कर्मकांडों से दूर रखें। बुजुर्गों को चाहिए कि वे बच्चों को सिक्खी के बारे में बताएं। सिक्खी क्या है, सिक्खी के सिद्धांत क्या हैं, यह सब बताएं तथा गुरु साहिबान की जीवनी के बारे में भी बताएं जिन्होंने उम्र भर कठिन संघर्ष करते हुए हमें अनंत प्रकार के अंधविश्वासों एवं वहमों-भ्रमों में से निकालकर परमात्मा की स्तुति करना सिखाया।

यह सब तभी हो सकता है यदि इनके बारे में बुजुर्गों को भी ज्ञान हो। बुजुर्गों को चाहिए कि पहले वे खुद इस काबिल बनें और तभी अपने बच्चों का मार्गदर्शन करें। आज ज्यादातर माता-पिता नौकरीपेशा हैं। अगर उन्होंने अब तक खुद आदर्श जीवन-जाच को नहीं अपनाया तो वे अभी से वक्त निकालकर ऐसा करना शुरू कर दें, नहीं तो रिटायरमेंट के बाद तो काफी वक्त मिल जाता है। बुजुर्गों को चाहिए कि वे जहां बच्चों को अच्छी शिक्षाएं दें इससे पूर्व वे खुद को एक आदर्श (रोल माडल) बनाकर बच्चों के सामने पेश करें तब ही बच्चों पर सकारात्मक तथा पूर्णत: प्रभाव पड़ेगा और बच्चे बुजुर्गों की अहमीयत को समझ पाएंगे।

बुजुर्गों की संभाल : जिम्मेवारी किसकी ? *(पृष्ठ १३७ का शेष)*

भारत में ऐसा सब कुछ करने के लिए लोगों को वर्तमान रिश्वतखोर सिस्टम को जड़ से उखाड़ने के लिए एकजुट होना पड़ेगा इसलिए कि सरकारी और प्राईवेट कार्यालयों के काम करने के ढंग में अंतर को समाप्त किया जा सके, सरकारी और प्राईवेट वेतनों को लगभग समान किया जाए, दोनों प्रकार की नौकरियां एक ही कानून के अंतर्गत सुरक्षित और एक जैसे पारदर्शी हालात वाली हों, राजनैतिक ओहदे केवल नीतियां बनाने तक सीमित हों और लोगों के कामकाज में इनका हस्तक्षेप और सिफारिशबाजी समाप्त की जाए और सरकारी अफसरशाही की मनमानियां समाप्त करके, इनको लोगों के अगुआ अफसरशाही समाप्त करके इनको लघु स्तर के मुलाजिमों की भांति काम करने के लिए विवश किया जाए। यह सब कुछ तभी होगा यदि हम ईमानदारी लाने के लिए, ईमानदारी से सबको ईमानदारी के साथ काम करने के लिए बाध्य करने वाला पारदर्शी सिस्टम बनाने के लिए लंगर लंगोट कसें।

आओ! बुजुर्गों के सुख एवं मान-मर्यादा को अपना सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक और धार्मिक उद्देश्य, जीवन-युक्ति तथा आचरणिक जिम्मेवारी का एक हिस्सा बनाएं इसलिए कि हमारे बुजुर्गों का जीवन आनंदमयी, सुखदायक और चिंतामुक्त बन सके, क्योंकि यह हमारा सबका अपना भविष्य है। यह सब कुछ करने के लिए सरकारी, प्राईवेट कंपनियों और व्यक्तिगत संस्थाओं को चिरकालीन योजना (**Long Term Planning**)करके विभिन्न स्कीमें लानी चाहिए।



कुछ बुजुर्गों का हाल-ए-बयां

*-स. जसवंत सिंघ**

वृद्ध आश्रम का नाम सुनकर रौंगटे खड़े हो जाते हैं। हरेक को यूं महसूस होता है कि एक दिन मुझ पर भी ऐसा आ सकता है कि मुझे घर छोड़कर वृद्ध आश्रम जाना पड़े क्योंकि बूढ़े तो हरेक व्यक्ति ने अंत में होना ही होता है। कितनी आशाएं रख कर माता-पिता अपनी औलाद को पालते हैं, उसको पढ़ाते-लिखाते हैं! पढ़ाने-लिखाने के बाद कितनी आशाओं के साथ माता-पिता पुत्र के विवाह लिए प्रोग्राम बनाते हैं! जब पुत्र का विवाह हो जाता है तो वह अपनी पत्नी सहित शहर में बस जाता है। दोनों पति-पत्नी शहर में सर्विस करने लगते हैं। वे अपने बच्चों की पालना में और पढ़ाई आदि में व्यस्त हो जाते हैं। उधर उनके माता-पिता गांव में रह जाते हैं और वे रोटी से भी आतुर हो जाते हैं। कभी-कभी यदि कहीं माता-पिता शहर में उनके पास आते हैं तो उनको कोई दिल से अपने पास रखना नहीं चाहता। कई प्रकार की अनचाही बातें होने लगती हैं। पूछा जाता है कि इन्होंने गांव कब जाना है? यहां क्या कर रहे हैं? ऐसी बातें आज घर-घर हो रही हैं।

युवा लोगों को और यहां तक कि मध्य आयु वर्ग में भी बहुत-से लोग ऐसे हैं जिनको इस बात का न तो ज्ञान है, न ही अनुभव कि एक दिन उन्होंने भी बुजुर्ग होना है। उनके बच्चे उनका अपने माता-पिता के प्रति दृष्टिकोण तथा व्यवहार सहज स्वाभाविक ही देख रहे हैं। वे नहीं महसूस करते कि एक दिन उन पर भी बुजुर्ग अवस्था आयेगी और उनके बच्चे उनको घर से निकाल कर वृद्ध आश्रम का रास्ता दिखाने की प्लानिंग बना रहे होंगे।

वास्तव में मनुष्य बहुत अज्ञानी और बेखबर है। बच्चों को क्या पता कि जवानी क्या है! जवान को क्या पता कि बुढ़ापा क्या होता है! मर कर ही पता चलता है कि मृत्यु क्या होती है।

हम सभी को जहां अपनी रोजी-रोटी की चिंता रहती है वहां हमें अपने माता-पिता की सेवा भी अवश्य करनी चाहिए। माता-पिता की सेवा में स्वत: ही सभी धार्मिक तीर्थों की यात्रा हो जाती है। यदि हम माता-पिता की सेवा में ढीले ही रहे तो कहीं ऐसा न हो कि यह कहना पड़े कि "यहां मत फेंकना, यहां तो मैंने अपने बाप को फेंका था!"

किसी ने अपने पिता को दूर बिठाकर उसको घंटी पकड़ा दी कि जब भी तुझे रोटी या चाय की जरूरत पड़े तूने घंटी बजा देना। फिर वह अपने लड़के को कहने लगा कि जा बापू की घंटी पकड़ कर उठा कर ले आ। फिर कैसे रोटी या चाय मांगेगा? लड़का कहने लगा कि "उसको रोटी तो शायद मैं पहुंचा ही दूं चूंकि वे मेरे दादा जी हैं, परंतु यह घंटी मैं संभालकर रखूंगा, यह आपके काम आएगी।" कहीं ऐसा न हो कि माता-पिता की

**२६०, नवीं आबादी, न्यू शहीद ऊधम सिंघ नगर, श्री अमृतसर।*

सेवा से विहीन होकर हमको भी घंटियां बजा कर अथवा किसी के अधीन होकर रोटी मांगनी पड़े। इतना कहने से पीछे नहीं रहूंगा कि अपने माता-पिता को किसी धार्मिक स्थान पर बैठ कर मांगने को भी मजबूर मत कीजिए।

हम सभी को मृत्यु और परमात्मा को सदैव याद रखना चाहिए। जीवन एक यात्रा है और इस यात्रा के दौरान परमात्मा को सदैव याद रखना चाहिए। गुरबाणी का फरमान है:

सभना साहुरै वंञणा सभि मुकलावणहार ॥

(पन्ना ५०)

जब लड़के अपनी-अपनी नौकरियों पर लग जाते हैं या अपने-अपने कारोबार अलग-अलग करके संभाल लेते हैं या चार-पांच भाई आपस में जमीन बांट लेते हैं तो फिर बांटने को रह जाते हैं बापू और मां। वे बुजुर्गों को रखने एवं संभालने के लिए महीना-महीना या एक-एक सप्ताह की बांट डाल लेते हैं। इस प्रसंग में एक आंखों देखी घटना सांझी करने की अनुमति चाहता हूं।

हमारे गांव ईसेवाल (जिला संगरूर, पंजाब) के एक बुजुर्ग के चार पुत्र थे। एक लड़का पहले विवाह का था। उसका इसकी संपत्ति से कोई संबंध नहीं था। उसकी संपत्ति के साझेदार तीन लड़के थे जिन्होंने मकान आदि तीन भागों में बांट लिया तथा बुजुर्ग को सप्ताह-सप्ताह संभालने की जिम्मेदारी ले ली। हम (मेरा छोटा भाई और मैं) अपनी माता का हाथ बंटाने के लिए मूंगफलियां बीनने जाते और वह बुजुर्ग भी घर के गुजारे के लिए हाथ बंटाने के वास्ते हमारे साथ कड़कती ठंड में ठरू-ठरू करते कांपते हाथों के साथ मूंगफली बीनने जाता। फिर वह अपनी मूंगफली बेचता। मूंगफली का मूल्य गीली पांच पैसे सेर (किलोग्राम से कुछ कम, पूर्व प्रचलित बट्टा), सूखी दो आने सेर होता था। अंत में यह किरत करते-करते उसके नैण-प्राण काम करना छोड़ गए। रोटी की बांट उसी प्रकार चलती रही, लेकिन उस बुजुर्ग को मकान में रहना नसीब नहीं हुआ। उसको बाहर प्लाट के एक कोने में सलवाड़ (घास) की एक झोंपड़ी डाल दी जहां एक-एक सप्ताह तीनों पुत्र अथवा उनके परिवार रोटी खिलाते रहे। परंतु उसको नहलाने का किसी ने प्रयास न किया। दुख इस बात का और अधिक हुआ कि वह बुजुर्ग अमृतधारी था और अमृतधारी होने के बावजूद उसके केश काट दिये गए दूसरे शब्दों में उसका प्रिय धर्म उससे छीन लिया गया। इससे भी अधिक दुख तब महसूस हुआ जब उस बुजुर्ग के मरणोपरांत छ: महीने में कड़ाह और मंडे तैयार हुए और भाईचारे तथा रिश्तेदारों को बहुत बढ़िया रोटी दी गई।

इसी प्रकार मेरे अमृतसर रहने के समय मुझे कई सेवामुक्त बुजुर्गों ने मिलना। एक बुजुर्ग स. तेजा सिंघ था। मैंने उससे पूछना, "क्यों भाई तेजा सिंघ, क्या हाल-चाल है?" उसने कहना, "भाई जसंवत सिंघ! बहुत बुरी हालत हुई पड़ी है। मेरे पास ४०० गज का प्लाट था, भाई मंझ के कुएं के पास। मैंने घरवाली को बहुत समझाया कि अपना हिस्सा रख कर शेष इनको दे दें परंतु मेरी घरवाली न मानी। उसकी इच्छानुसार चारों लड़कों के नाम १००-१०० गज जगह लगा दी। अब कोई नहीं संभालता। बस, रोटी से भी आतुर हैं। रोटी खाने के लिए कभी बाबा अटल साहिब गुरुद्वारे, कभी बाबा दीप सिंघ गुरुद्वारे

और कभी गुरु रामदास लंगर में। अभी तो नैण-प्राण चलते हैं तो आकर छक जाते हैं लेकिन जब चारपाई पर पड़ गए फिर तो परमात्मा ही रक्षक होगा!"

एक अन्य बुजुर्ग भाई बचन सिंघ सेवामुक्त होने के एक वर्ष बाद आ गया। कहने लगा, "सत्य श्री अकाल, भाई जी।" मैंने कहा, "बैठ जा, बचन सिंघ! क्या हाल-चाल है? परशादा- पानी का कैसे चलता है?" कहने लगा, "हाल तो भाई जी बहुत बुरा है। तीन-चार कीले (एकड़) जमीन तो है परंतु लड़कों के हाथ में है। वे अपनी-अपनी कमाते एवं खाते हैं। हम बूढ़ों को कौन पूछता है?" अब वह बुढ़ापे में कार-सेवा वालों के पास सेवा करता और वहां से लंगर-पानी छकता है।

एक बुजुर्ग मुझे शमशानघाट के नजदीक मिला, बहुत ही बुरी हालत में। मैं एक ग्रंथी सिंघ से बात कर रहा था। मुझे नहीं पता था कि उस बुजुर्ग की पांच-छः दुकानें गुरु बाजार में थीं जो उसके पुत्रों ने आपस में बांट ली थीं। मैंने ग्रंथी सिंघ से पूछा तो मुझको उसके बारे में वास्तविकता का पता चला। मैंने कहा, "भाई साहिब, यह बहुत गरीब लगता है।" कहने लगे, "गरीब तो नहीं था यह, मगर हालात ने ग़रीब कर दिया है बेचारे को। इसकी तो छः दुकानें थीं। वे लड़कों ने संभाल लीं, मगर इसको संभालने के लिए कोई भी तैयार नहीं है।"

इसी तरह छः-सात साल पूर्व की बात है। स. अरूड़ सिंघ जिला अमृतसर के रहने वाले परिश्रमी इंसान थे, जिनके दोनों हाथ मेहनत-मजदूरी करते हुए, गेहूं की गहाई करते हुए कट गए। वे शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष से हर महीने २५ रुपये सहायता-राशि लेने आया करते थे। एक दिन मैंने उसकी पृष्ठभूमि जाननी चाही तो उसने बताया कि उसके लड़के हैं जो अपनी मेहनत-मजदूरी करते हैं, परंतु मुझे नहीं रखते। चलो कोई बात नहीं। मेरा प्रभु तो है न! अब अरूड़ सिंघ भिखारी बन चुका है। उसके दोनों कटे बाजू देखकर आते-जाते यात्री खुद उसकी जेब में पैसे डाल देते हैं। बाजू कटे होने के कारण वह स्वयं अपने हाथों से तो रोटी खा नहीं सकता। मैंने कई बार सेवा-भाव वाले प्रेमी-जनों को उसे रोटी खिलाते हुए देखा है। चलो यह भी परमात्मा की कृपादृष्टि ही समझो कि अभी ऐसे परोपकारी भी इस दुनिया में मौजूद हैं। फिर भी शौच आदि के लिए उसको जो मुश्किल का सामना करना पड़ता है वह शब्दों में बयान करना नामुमकिन है।

मात्र दूसरों की ही बात न करूं। कुछ अपने परिवार की भी आप से बात करने की अनुमति चाहता हूं। मेरे अपने दोनों मामों ने मकान बांटते समय अपनी माता यानी मेरी नानी-मां के रैण-बसेरे के बारे में कुछ न सोचा। उससे पूछा तक भी न। आयुभर मेरी नानी मां की अथाह कमाई रही है। उसने जैसे परिवार की पालना की वह अपने आप में एक लंबी कहानी है। जब पुत्र ऐसी मां की भी अवहेलना करते हैं तो गहरा दुख महसूस होता है।

बुजुर्ग अब वृद्ध-आश्रमों में काफी संख्या में जाने लगे हैं। इसके पीछे कई कारण हैं। कई बहुत धनवान लोग स्वयं विदेशों में जा बसे हैं लेकिन वे अपने बुजुर्गों को अपने साथ ले जाने का प्रयत्न नहीं कर सके। कई अपने यहां रह गए बुजुर्गों की सेवा के लिए नौकर

रख देते हैं। नौकरों के होते हुए भी यहां रह रहे बुजुर्गों की असुरक्षा की समस्या बनी हुई है। नौकर कई प्रकार की वारदातें करके भाग जाते हैं, उनको लूट कर या जान से खत्म करके फरार हो जाते हैं।

कई बुजुर्ग अपने स्वभाव के कारण भी वृद्ध-आश्रमों में रह रहे हैं क्योंकि उनका अपने पुत्रों के स्वभाव के साथ स्वभाव नहीं मिलता। ज्यादातर वे पेंशन प्राप्त करने वाले बुजुर्ग हैं और अपनी पेंशन में से कुछ धन पेड वृद्ध-आश्रमों में देकर जीवन की चाल चलाये जा रहे हैं। मैं ऐसे बुजुर्गों को कहना चाहूंगा कि वे अपना स्वभाव थोड़ा परिवर्तित करके अपने घरों में अपना स्थान बनाने का प्रयास करें। घर घर ही है। यदि आपके बच्चे आपकी थोड़ी-बहुत पूछताछ करते हैं तो आप अपनी इच्छा से अपनी पेंशन का ख्याल करते हुए वृद्ध-आश्रमों को रुख न करें। फिर भी मुख्य बात औलाद पर ही आती है। यदि औलाद नेक हो तो वह कभी अपने जीते-जी बुजुर्गों को वृद्ध-आश्रमों की ओर रुख करने की नौबत नहीं आने देती। यदि बुजुर्ग ऐसा सोचने लगे तो नेक औलाद का माथा ठनक जाता है और वो अपना व्यवहार पहले से अधिक अच्छा कर लेती है।

यह भी आवश्यक नहीं कि औलाद जरूरी रूप में पुत्र ही हो तभी सुख मिल सकता है। हमारे गांव की माता बसंत कौर का कोई लड़का न था, तीन लड़कियां ही थीं। दो लड़कियां विवाहित हैं और अपने-अपने घर हैं। एक छोटी लड़की पढ़-लिखकर जे. बी. टी. का कोर्स करके अध्यापिका लग गई। शादी होने के बाद सर्विस के रुझानों के बावजूद भी उसने अपनी माता को कभी पुत्र की कमी महसूस नहीं होने दी। जितनी देर माता बसंत कौर जीवित रही वह अपनी माता की सेवा में सदैव तत्पर रही। साथ-साथ सर्विस करती रही और माता का भी पूरा-पूरा ख्याल रखती रही। उसके पति को भी शाबाश देनी बनती है कि उसने अपनी सास-मां की सेवा में कोई बाधा नहीं खड़ी की।

हमारे गांव की बीबी अमर कौर की कोई औलाद नहीं थी। उसने अपनी भतीजी गोद ली थी। वे दोनों पति-पत्नी माता जी की सेवा में सदैव तत्पर रहते हैं।

मैं समझता हूं कि सुख औलाद होने के साथ ही नहीं, अपने पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। कई बुजुर्ग अपना हुक्म जो सही भी नहीं होता, अपनी औलाद पर थोपने की कोशिश करते हैं।

अंत में इतना कहूंगा कि समय मुताबिक श्री गुरु नानक देव जी के मिशन को अपनाना चाहिए। संसार के साथ मिल कर चलें और यदि संसार को साथ लेकर चलें तो मेरा मत है कि कभी परिवार में दरार नहीं पड़ती। बुजुर्गों को बुढ़ापे के लिए कुछ धन अवश्य ही बचा कर रखने का प्रयत्न करना चाहिए। कहते हैं कि "पैसा गंठ और बाणी कंठ।" बूढ़े तो हम सभी ने ही होना है। सभी बुजुर्गों का हमें जितना हो सके ध्यान रखना चाहिए परंतु माता-पिता की सेवा में तो सदैव उपस्थित रहना ही योग्य है। यह नहीं सोचना चाहिए कि हमने तो सदैव जवान ही रहना है। सब कुछ जमाने के साथ है। "जो पड़ोसी के हुआ सो अपने भी जान।"



बुजुर्ग-धन

*-श्री दर्शन लाल**

कृषि-धन, आभूषण-धन, पशु-धन के अलावा हमारे पास एक बहुमूल्य धन भी है जिसे गर्व से हम "बुजुर्ग-धन" का नाम दे सकते हैं। परमात्मा ने यह धन बिना कुछ खर्च किए हमें प्रदान किया है, परन्तु अपने कर्त्तव्य से विमुख हो हम इस धन से वंचित होते जा रहे हैं और इनके अनुभवों का लाभ भी नहीं प्राप्त कर रहे।

एक छोटी-सी व बिलकुल सच घटना यहां लिखना चाहूंगा। मेरे ताया जी का एक बड़ा लड़का कुछ मंद बुद्धि वाला अथवा शारीरिक तौर पर ठीक नहीं था। इसके बावजूद वह बड़ा अकड़ कर चलता था। मेरे ताया जी वृद्ध अवस्था में थे। उनको उसे ठीक करने की युक्ति सूझी। उन्होंने तरबूज के आधे छिलके व कुछ मिट्टी की कटोरियां, जिस रास्ते वह लड़का जाता था, थोड़ी-थोड़ी दूरी पर रख दीं तथा छिलके व मिट्टी की कटोरियों के नीचे कुछ पैसे रख दिये। लड़के के साथ वाले उसे उनको ठोकर मारने को कहते। लड़के ने सिर नीचे कर ठोकर मारी तो उनके नीचे से पैसे पाकर बहुत खुश हुआ। यही क्रम कई दिन चलता रहा। अब उसको नीचे देख कर चलने की आदत पड़ गई।

यह सच्ची कहानी यद्यपि छोटी है पर इससे यह शिक्षा मिलती है कि अकड़ कर चलना अभिमान की निशानी है! इतनी छोटी-सी परंतु बहुत महत्वपूर्ण बात से लड़के का जीवन ही बदल गया। ताया जी का सपना पूरा हुआ। ताया जी अक्सर कहा करते थे कि "मन नीवां ते मत उच्ची" से ही जीवन में सुख प्राप्त होता है।

सुना है कि उन्नीसवीं सदी से पहले संयुक्त परिवार होते थे तथा परिवार में बुजुर्ग की बहुत इज्जत थी। परिवार के सबसे बड़े का कहना कोई नहीं टालता था।

बड़े बुजुर्ग सिर्फ प्यार व आदर-मान के भूखे होते हैं। आज के युग में यह सब कुछ खत्म हो रहा है। आम धारणा यह भी है कि जिन बुजुर्गों के पास पैसा होता है उनकी ही परिवार में इज्जत होती है। मैं यह मानने को बिलकुल तैयार नहीं। मेरे संपर्क में कई ऐसे परिवार आये हैं जिन बुजुर्गों ने अपने पास काफी धन रखा हुआ था ताकि उनके बच्चे उनके साथ बुढ़ापे में ठीक बर्ताव करें। छः दशक पहले की बात है। हमारे दूर के रिश्तेदार चांदनी चौंक दिल्ली में एक मशहूर ज्वैलर थे। उनके दो लड़के थे। लड़के बड़े हुये तो उनको भी इसी काम में लगा लिया। सोने के काम के साथ डायमंड्ज़ का भी काम करना शुरू कर दिया। समय के साथ-साथ लड़कों ने अलग दुकानें बना लीं और खूब धन कमाया परंतु अपने बुजुर्ग-धन से बेमुख हो गये। उनको रहने के लिए एक लड़के ने कोठी के नीचे का कमरा दे दिया। बुजुर्ग की

**कमरा नं. १७, मिलवर्तन सीनियर सिटीजन होम, मून एवेन्यू, मजीठा रोड, श्री अमृतसर।*

बीवी अपने पति का व अपना खाना स्वयं बनाती थी। बुजुर्ग बीमार रहने लगे और उनकी देखभाल को कोई न आता। बुजुर्ग के पास जितना पैसा था उन्होंने वह अपनी बहिन के नाम लगवा दिया। कुछ समय बीतने पर उनकी मृत्यु हो गई। अब उनकी बीवी अकेले नीचे वाले कमरे में रहती है। अपनी दो रोटियां कभी बनाती है और कभी नहीं। न ही उसके लड़के उसे पूछते हैं और न ही उनकी पत्नियां। पैसा तो था, पर केवल पैसे से ही गुजारा नहीं होता। अंततः वह भी दुनिया को दुखी हालात में छोड़ गई। लड़कों ने दाह-संस्कार तो कर दिया परन्तु अन्य क्रिया-कर्म करने से साफ इंकार कर दिया। यह बात उसके रिश्तेदारों तक पहुंची। उसके भाई के बच्चों ने विधिपूर्वक सब क्रिया-कर्म किया।

चल रहे काल में अधिकांश बुजुर्गों की समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। उन्हें अपने परिवार में मान-इज्जत नहीं मिल रहा तथा छोटी-मोटी आवश्यकता के लिये वे उन पर निर्भर हैं। रोटी के अलावा शरीर को ठीक-ठाक रखने के लिये दवाइयां, कपड़े आदि की आवश्यकता होती है जिसके लिये उनको अपनों के सामने हाथ फैलाना पड़ता है। यही कारण है कि देश-विदेश में वृद्ध-आश्रम बनाने का विचार आया होगा। आजकल लगभग सारे जिलों में ऐसे आश्रम बन गये हैं। कुछ तो बिलकुल निःशुल्क हैं, जहां भोजन आदि के अलावा वस्त्र, बिस्तर, पलंग व रोज काम में आने वाली वस्तुएं मुफ्त मिलती हैं, चिकित्सा-सुविधा भी उपलब्ध की जाती है। कुछ आश्रम आधा खर्च लेते हैं और कुछ तो पूरा खर्च लेते हैं तथा उनका व्यापार भी यही है!

गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की समस्या कम है। आखिरी वक्त में वे अपने गांव चले जाते हैं जहां उनका किसी न किसी तरह गुजारा हो जाता है। बुजुर्गों की समस्या मध्यम वर्ग में बहुत गंभीर है, पर यह उच्च श्रेणी के लोगों में भी है। आर्थिक तंगी केवल मुख्य कारण नहीं जो कि मध्यम वर्ग के लोगों में है अपितु मध्यम वंश के बुजुर्गों में भी है जो अपने आप नई पीढ़ी के विचारों व रहन-सहन से संतुष्ट नहीं होते और जिससे उनका मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है, उनका घर में रहना मुश्किल हो जाता है। वे ऐसी जगह ढूंढते हैं जहां यह सब कुछ न हो। वे सिर्फ वृद्ध-आश्रम अथवा Senior Citizen Home ही हैं।

कई लोग बुजुर्गों व युवाओं एवं बच्चों के आपस में आचार-विचार व व्यवहार के न मिलने को पीढ़ी-अंतराल की संज्ञा दी जाती है, जिसको मैं कदापि नहीं मानता। यदि दोनों या तीनों के आचार-विचार व व्यवहार में संतुलनता लाई जा सके तो गृहस्थ जीवन सुखी हो सकता है। केवल समायोजन की आवश्यकता है तथा एक-दूसरे की जरूरतों पर ध्यान देने से सब ठीक हो सकता है। अपनी ही बात पर डटे रहने से जीवन कष्टदायक ही रहेगा।

युवा वर्ग ने भी बुजुर्ग अवस्था में प्रवेश करना है। बच्चों ने भी युवा व बुजुर्ग अवस्था में आना है। इस पर सबको ध्यान देना आवश्यक है।



मां-बाप के उपकार

-ज्ञानी हरबंस सिंघ*

आज हर एक शहर या कसबे में अपनी ही जड़ों से दूर होने के इश्तिहार लगे मिल रहे हैं अर्थात् नगर-नगर में वृद्ध-आश्रम खुल रहे हैं। जगह-जगह बोर्ड और होर्डिंग्स लगे मिलते हैं कि अमुक जगह वृद्ध-आश्रम का उद्घाटन हो रहा है। कोई-न-कोई वी. आई पी. (मंत्री जी) अपने 'कर-कमलों' से वृद्ध-आश्रम का शुभारंभ करने और कोई वृद्ध-आश्रम के मुखी होने के लिए आते हैं कि वे बहुत ही बड़े समाज सेवक हैं। यह देख-सुन कर हैरानी होती है कि हमारे बुजुर्गों के लिए, जिन्होंने हमें जन्म देकर हमारा पालन-पोषण किया, पढ़ा-लिखा कर, शादी-ब्याह रचाकर हमें गृहस्थी बनाया, क्या अब हमारे पास उनके लिए कोई जगह नहीं है? क्या हम उनको रोटी-कपड़ा देने के भी काबिल नहीं? क्या हम उनका इतना बोझ भी नहीं उठा सकते कि जिंदगी के बाकी दिन वे सुख के साथ बिता सकें? क्या उनका हमारे ऊपर कोई हक नहीं? क्या वे उस घर के कोई हिस्सेदार नहीं जिस घर के लिए उन्होंने कभी अपना दिन-रात एक कर दिया था?

सज्जनो! मां-बाप का कर्ज तो हम कभी नहीं उतार सकते। हमारे माता-पिता ने जो शिक्षा हमें दी है हमें उसे कभी नहीं भूलना चाहिए।

आज की पीढ़ी अपने बुजुर्गों को अपनी राह की रुकावट समझती है, वह उनकी किसी बात को सुनने के लिए तैयार नहीं। हम लोग पश्चिमी प्रभाव के कारण यह कहकर छुटकारा पाने का प्रयत्न करते हैं कि "तुम्हें क्या पता है? आप तो ऐसे ही अंधेरे में तीर मार रहे हो। अगर वे कोई सलाह-मशविरा देने की कोशिश करते हैं तो हम यह कह कर टाल देते हैं कि आपका समय निकल गया है।"

दुखी होकर बुजुर्ग ईश्वर के आगे प्रार्थना करता है, "हे प्रभु! आप ही कृपा करें। जिस तरह आप ने समुद्र में पत्थरों को तैराया उसी तरह आप इस दुनिया से मुझे भी पार उतार दो। मैं बहुत दुखी हूं।" प्रसिद्ध सिक्ख विद्वान पंडित गुलाब सिंघ अपना विचार इस तरह प्रकट करते हैं :

जब जोबन था जन प्रीति भरे,
अब जाठर माहि भए सभ खारे।
नहिं है अधिकार कछू तुम्हरो,
कर लै लकुटी बहु मोहि दुवारे।
इम भाखत हैं करुनानिधि राम,
परों तु कहें यहि पाद पसारे।
अब और न ओट निहारत हों,
सरणागति हों जल भुधर तारे ॥५३॥

पंडित गुलाब सिंघ अपनी पुस्तक "भांवर साम्रित" में लिखते हैं :

"जब मैं जवान था और अच्छी कमाई करता था, उस समय परिवार के सभी लोग हम से बहुत प्रेम करते थे। आज बुढ़ापा आने

*L-६, ९८६, गली नं. ३/२, न्यू शहीद ऊधम सिंघ नगर, श्री अमृतसर।

पर सभी लोग हम से नफरत करते हैं! अगर परिवार के किसी भी सदस्य को किसी काम के बारे में मैं अपने विचार बताने की कोशिश करता हूं तो लोग कहते हैं, पिता जी! आपकी बीत चुकी है, अब हमारी बारी है। अब हमें अच्छा-बुरा समझने का ज्ञान है। आप ऐसा करें, दरवाजे पर लाठी लेकर बैठ जाएं और ध्यान रखें कि कोई कुत्ता-बिल्ली अंदर न आ जाए।"

क्योंकि उस समय भी ऐसी बात जरूर होती होगी। आजकल तो ऐसी बात उस समय से कहीं ज्यादा है। पंडित जी लिखते हैं :

"बुढ़ापे में सारा शरीर कमजोर हो गया और मुंह के सभी दांत टूट गये। मेरे परिवार के लोग (मेरे पुत्र और पुत्रियां) मुझे वही खाने को देते हैं जो रोटी आग में जल जाती है। अगर मैं उस रोटी की शक्ल देख कर उनको समझाने की कोशिश करता हूं कि क्या यह रोटी मेरे खाने के लायक है तो आगे से वे कहते हैं कि हमने तुम्हारे लिए पूड़ी-हलवा तो बना कर रखा नहीं है। खानी है तो खाओ, नहीं खानी तो न सही।

अब जारठ मै तन खीन भए,
अब दूर भये मुख दांत हमारे।
जन मोह के भोजन सोई धरे,
घर भीतरि जो कछु पावक जारे।
मुख ते कछु भाखत हो जब ही,
तु कहे नहि ते हित पूप सवारे। . . ५४॥

अगर विद्वान कवि की बात सच्च है तो हमको अपने अंदर एक बार जरूर झांक कर देखना चाहिए कि ऐसा क्यों होता है। इससे बड़ी और क्या अकृतघ्नता हो सकती है? हमारे गुरु, पीर, पैगंबर और हर धर्मी पुरख ने हमें अपने बुजुर्गों का सत्कार करने के लिए उपदेश दिया है। मां-बाप का सत्कार करना हर एक प्राणी का फर्ज है।

ऐ नौजवानो! आज हम अपने मां-बाप को वृद्ध-आश्रम में जाने की प्रेरणा देते हैं, उनको वहां जाने के लिए मजबूर करते हैं, यह भी मत भूलो कि आने वाला समय हमारे लिए भी तैयार है। फिर हमको भी वहां जाने की तैयारी अभी से शुरू कर देनी चाहिए।

इससे बड़ा और कोई पाप नहीं, इससे बड़ी और कोई अकृतघ्नता नहीं है। भाई गुरदास जी कहते हैं कि आसमान को छूते हुए पहाड़ धरती को भारी नहीं। अनेक किले और धरती के ऊपर बने घर-बार भी धरती पर बोझ नहीं। अनेक बहती हुई नदियां, नाले और सागर भी धरती पर भारी नहीं। अनेक प्रकार के फलों और फूलों से लदे हुए वृक्ष भी पृथ्वी पर भारी नहीं। धरती पर बसने वाले, बेसिर-पैर, जीव, जंतु भी धरती पर भारी नहीं, लेकिन धरती को अकृतघ्न भारी लगते हैं।

भाई साहिब की नज़र में अकृतघ्न व्यक्ति इतना नीच होता है कि आप कहते हैं कि एक औरत खेतों में काम कर रहे अपने पति की रोटी लेकर जा रही थी। रास्ते में उसको एक पथिक ने पूछा :

पथिक : बहन! आप कहां जा रही हैं?

औरत : मैं अपने पति की रोटी लेकर जा रही हूं।

पथिक : बहन! रोटी के साथ दाल या सब्जी क्या है?

औरत : सब्जी मांस की है, क्योंकि मेरा पति मांस के साथ रोटी खाकर बहुत खुश होता है।

पथिक : मांस किसका है? हिरन, बकरे या मुर्गे का?

औरत : भाई साहिब! मांस कुत्ते का है।

पथिक : बहन! यह कपड़ा बहुत मैला है और किसका है?
औरत : भाई साहिब! हम गरीबों के पास सुंदर कपड़ा और अच्छे बर्तन कहां हैं?
पथिक : इसे ढकने का क्या फायदा?
औरत : मैंने इसे इसलिए छुपाया है कि इस पर किसी अकृतघ्न आदमी की नज़र न पड़े।
पथिक : क्या अकृतघ्न आदमी कुत्ते के मांस और शराब से भी बुरा है?
औरत : हां! वह इन सबसे बुरा है।

जैसे :

मद विचि रिधा पाइ कै कुते दा मासु।
धरिआ माणस खोपरी तिसु मंदी वासु।
रतू भरिआ कपड़ा करि कजणु तासु।
ढकि लै चली चूहड़ी करि भोग बिलासु।
आखि सुणाए पुछिआ लाहे विसवासु।
नदरी पवै अकिरतघणु मतु होइ विणासु॥

(वार ३५:९)

भाई गुरदास जी एक जगह और कहते हैं कि एक मां बड़ी आशा और उम्मीद के साथ गर्भ धारण करती है। फिर मां बहुत ही संयम रखती हुई चलती है। खट्टा-मीठा भी नहीं खाती है कि बच्चे को नुकसान न हो। नौ-दस महीने तकलीफ सहने के बाद बच्चे को जन्म देती है। फिर यहीं पर बात खत्म नहीं होती है। बच्चे को पैदा करने के उपरांत भी बहुत कष्ट सहती है। कई तरह का परहेज करती है, खाने-पीने का संकोच करती है कि इस चीज के साथ मेरे बच्चे को तकलीफ होगी, क्योंकि बच्चे ने मां का दूध जो पीना होता है। वह जन्म-घुट्टी देती है। समय-समय पर गर्म या ठंडे कपड़े भी लेकर देती है। अच्छे से अच्छा खाना खाने को देती है। स्कूल, कॉलेज भेज कर विद्वान अध्यापकों से शिक्षा दिलवाती है। मां-बाप ज्यादा से ज्यादा पैसा खर्च करके होनहार बनाने की कोशिश करते हैं। पढ़ाने-लिखाने के बाद शादी के लिए सौ-सौ मन्नतें मांगते हैं कि घर में सुंदर बहू आयेगी, हमारी सेवा करेगी, लेकिन उनकी आशाओं पर उस समय पानी फिर जाता है जब बहू आते ही लड़के को लेकर अलग रहने लगती है। भाई साहिब फरमाते हैं कि :

मात पिता मिलि निंमिआ आसावंती उदरु मझारे।
रस कस खाइ निलज होइ छुह छुह धरणि धरै पग धारे।
पेट विचि दस माह रखि पीड़ा खाइ जणै पुतु पिआरे।
जण कै पालै कसट करि खान पान विचि संजम सारे।
गुढ़ती देइ पिआलि दुधु घुटी वटी देइ निहारे।
छादनु भोजनु पोखिआ भदणि मंगणि पढ़नि चितारे।
पांधे पासि पढ़ाइआ खटि लुटाइ होइ सुचिआरे।
उरिणत होइ भारु उतारे॥ *(वार ३७:१०)*

भाई साहिब भाई कान्ह सिंघ नाभा लिखते हैं : "संतान का धर्म है कि माता-पिता को देवता-स्वरूप जानकर उनकी सेवा करे और उनकी आज्ञा का पालन करे, अच्छे आचार, सहनशीलता द्वारा उनको खुश रखे।"

(गुरमति मारतंड, पन्ना ७६३)

हमें बुजुर्गों की सेवा के लिए हर समय तत्पर रहना चाहिए। संतान के द्वारा कोई ऐसा नीच काम न हो जाए जिससे मां-बाप के मन को दुख पहुंचे। जो लोग मां-बाप से झगड़ा कर, दुख देकर, कलेश पाकर अलग हो जाते हैं वे पापी कुपुत्र होते हैं।

(शेष पृष्ठ १६६ पर)

तीसरी अवस्था में *अंतरि सुरति गिआनु* की प्रासंगिकता

-स. गुरबचन सिंघ चांद*

परमात्मा के हुक्म में संसार के भीतर जो कुछ भी पैदा हुआ है उसके जीवन के अंत के बारे में प्रभु आप ही जानता है। जंगलों तथा पर्वतों में पैदा होने वाले पौधों, वृक्षों, बेलों तथा सभी जीव-जंतुओं आदि को प्रभु आप ही पैदा करता, पालता व उनकी संभाल करता है।

मानवी संसार के भीतर जब जीव आते हैं तो उनकी तीन अवस्थाएं मानी गई हैं :

बाल जुआनी अरु बिरधि फुनि तीनि अवसथा जानि ॥ (पन्ना १४२८)

साधारणत: बाल अवस्था माता-पिता और अन्य बड़ों के सहारे बीत जाने का सिलसिला अपनी गति से चलता जा रहा है। यौवन आ जाने पर हरेक जीव और विशेषत: मनुष्य अपनी क्षमता, जोर, बल को लगाता हुआ ताना-बाना बुनने में ही व्यस्त हो जाता है। इस यौवन के समय के भीतर यह ख्याल तक भी शायद किसी को ही आता हो कि तीसरी अवस्था को भी आना है जिसको कि वृद्ध अवस्था अथवा बुढ़ापा कहते हैं। गुरबाणी में अंकित पावन पंक्तियां इसकी साक्षी दे रही हैं:

बारह बरस बालपन बीते बीस बरस कछु तपु न कीओ ॥
तीस बरस कछु देव न पूजा फिरि पछुताना बिरधि भइओ ॥ (पन्ना ४७९)

मनुष्य की इन अवस्थाओं में बाणी के अंदर अन्य भी कई जगह विस्तार सहित दृष्टिगोचर किया गया है:

पहिलै पिआरि लगा थण दुधि ॥
दूजै माइ बाप की सुधि ॥
तीजै भया भाभी बेब ॥
चउथै पिआरि उपंनी खेड ॥
पंजवै खाण पीअण की धातु ॥
छिवै कामु न पुछै जाति ॥
सतवै संजि कीआ घर वासु ॥
अठवै क्रोधु होआ तन नासु ॥
नावै धउले उभे साह ॥
दसवै दधा होआ सुआह ॥ (पन्ना १३७)

बचपन और बुढ़ापे से यौवन की चाल कुछ अलग-सी होती है। मानवी संसार के अंदर यह वो अवस्था है जब साधारणत: मनुष्य कभी स्थितियों में अपने आप को माता-पिता से अधिक बुद्धिमान समझने/मानने लग जाता है और अपनी ओर से बड़ों के प्रति लापरवाही करनी आरंभ कर देता है।

कुछ ऐसे विचार रखने वालों की मनोदशा को मुख्य रखते हुए चौथे पातशाह सतिगुरु रामदास जी बाणी के अंदर एक स्थान पर उपदेश बख्शिश करते हैं :

काहे पूत झगरत हउ संगि बाप ॥
जिन के जणे बडीरे तुम हउ तिन सिउ झगरत पाप ॥ (पन्ना १२००)

गुरमति ज्ञान के प्रकाश में बाणी के अंदर संपूर्ण मनुष्य बनने के लिए उपदेश है:

फरीदा काली जिनी न राविआ धउली रावै कोइ ॥
करि सांई सिउ पिरहड़ी रंगु नवेला होइ ॥

*२५५, अजीत नगर, श्री अमृतसर।

महला ३ ॥
फरीदा काली धउली साहिबु सदा है जे को चिति करे ॥
आपणा लाइआ पिरमु न लगई जे लोचै सभु कोइ ॥
एहु पिरमु पिआला खसम का जै भावै तै देइ ॥
(पन्ना १३७८)

आम सांसारिक विचारधारा के अनुसार तो बच्चे और बूढ़े की मति अथवा बुद्धि को लगभग एक समान माना जाता है परंतु गुरमति ज्ञान के प्रकाश में तो तीसरे पातशाह श्री गुरु अमरदास जी का फरमान है :

गुरमुखि बुढे कदे नाही जिन्हा अंतरि सुरति गिआनु ॥ (पन्ना १४१२)

जब प्रभु की मेहर का सदका नाम-सिमरन के आधार पर जीवन व्यतीत करने से निर्मल किरत करते हुए बांट छकने का विचार मन में प्रस्फुटित होने लग पड़ता है तो जीवन सफल हो जाता है :

घालि खाइ किछु हथहु देइ ॥
नानक राहु पछाणहि सेइ ॥ (पन्ना १२४५)

हम जहां स्वयं सुचेत रह कर अपने जीवन की तीसरी अवस्था--वृद्ध अवस्था को सफल कर सकते हैं वहां अपने बच्चों की सही प्रकार से अगुआई करते हुए आज के अत्यधिक जनरेशन गैप के मसले को भी विकराल रूप धारण करने से बचा सकते हैं।

मां-बाप के उपकार

(पृष्ठ १६४ का शेष)

(गुरमति मारतंड, पन्ना ७६४)

प्राचीन इतिहास को अगर हम देखें तो पता चलता है कि सरवण नाम का एक युवक था जिसने माता-पिता की सेवा करके एक मिसाल कायम की है। उसके मां-बाप आंखों से अंधे थे। वो सारी जिंदगी उनको कांवर में बैठाकर इधर-उधर ले जाता था। इसीलिए भाई गुरदास जी ने लिखा है कि "ऐसा सरवण कुमार कोई विरला ही होगा।"

कहने का भाव तो यह है कि जिस व्यक्ति के मन में मां-बाप के उपकार का अहसास नहीं है, जिसके मन में मां-बाप का निर्मल प्यार आकर्षण नहीं रखता, वो अपने द्वारा जो भी अच्छे से अच्छा काम करने की कोशिश करता है तो भी उसके ऐसा करने का कोई फायदा नहीं है। उसके सभी काम बेकार हैं जब तक उसके मां-बाप उसकी सेवा से संतुष्ट नहीं हो जाते।

गुरबाणी में मां-बाप को भगवान के रूप में दर्शाया गया है। इस तरह मां-बाप का कर्ज उतारा नहीं जा सकता है। लेकिन आज के युग के मद्देनजर यह भी कहना पड़ेगा कि मां-बाप भी अपनी संतान के लिए अच्छे मां-बाप वाला बर्ताव करें, अपनी औलाद से किसी भी तरह का भेदभाव न रखें, प्रत्येक संतान को बराबर समझें क्योंकि मां-बाप द्वारा सारी औलाद को बराबर न समझने का एक नया पक्ष देखने को मिल रहा है जो कि आज के पदार्थवादी और मायामुखी युग के प्रभाव के कारण है। जहां मां-बाप की सेवा करना बच्चों का प्रथम और परम धर्म है वहीं मां-बाप भी अपनी इस जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकते।



बुजुर्ग और इनकी संभाल

*-मेजर भगवंत सिंघ**

आज से पहले परिवार इकट्ठे रहते थे। घर में जितने भी बच्चे होते थे उनमें मेल-मिलाप तथा परस्पर सहयोग होता था और बड़ों के प्रति सत्कार होता था। पौत्र-पोतियां अपने घर में रहकर बड़ों का सम्मान-सत्कार करते थे और बुजुर्ग दादे-दादियां बच्चों को उनके सोने के समय अच्छी-अच्छी साखियां, गुरु साहिबान की गाथाएं सुनातीं। बहू-बेटियां घर में मिलजुल कर काम करती थीं। अच्छी सासें अपनी बहुओं के साथ अच्छा व्यवहार करती थीं। जो सासें प्यार-सत्कार के साथ रहतीं और बच्चों को पूरा प्यार देती थीं उनके घर तो स्वर्ग बन जाते थे। बुजुर्ग दादे अपने पौत्रों-पोतियों को शाम के समय बाहर खिलाने के लिए या सैर के लिए ले जाते। इस तरह उन बच्चों का बुजुर्गों के साथ अच्छा प्यार बन जाता।

वास्तव में उस समय बुजुर्ग बच्चों को उनके हरेक काम में सही दिशा दे सकते थे। परंतु आज की युवा पीढ़ी के स्वभाव में इतना बदलाव आ गया है, उस पर न जाने टी.वी. देखने का प्रभाव है या कोई और जमाने की ही हवा है कि वे आज अपने आप को अधिक बुद्धिमान समझते हैं और बड़ों से परामर्श लेने से संकोच करते हैं जो कि बिलकुल गलत बात है। आज अधिकांश घरों में जहां उनके माता-पिता के पास बुजुर्गों की देखभाल के लिए समय नहीं है वहां नयी पीढ़ी के पास तो बुजुर्गों के लिए समय होने का प्रश्न ही नहीं है। वास्तव में आज के नये दौर में हम ऐसे उलझ गए हैं कि हम अपने बच्चों को सही ढंग से प्यार नहीं दे पाते। इस प्रकार अधिक मुश्किल वाली स्थिति बनती है।

जो माताएं अपनी ही सजावट आदि में लगी रहती हैं वे अपने बच्चों की सही देखभाल नहीं कर सकतीं और यही कारण है कि उनके बच्चे नालायक हो जाते हैं। यदि उनके घर बुजुर्ग हों तो माता-पिता और बच्चों के बीच जो अंतराल होता है उसे बुजुर्ग दूर कर देते हैं।

आजकल बच्चों में एक अन्य रंग आ रहा है जो बहुत बुरा है, वो है आजकल बच्चों का, अपने माता-पिता का सहारा न बनना। माता-पिता ने बच्चों को कितने प्यार से पाला होता है! स्वाभाविक रूप से उनकी यह इच्छा होती है कि बच्चे बुजुर्गी में उनका सहारा बनें। परंतु घटित इसके उलट ही हो रहा है। जब बच्चा युवक बन कर नौकरी करने लगता है तब माता-पिता जल्दी से जल्दी उसका विवाह कितनी खुशियों के साथ रचाते हैं! परंतु आजकल के युवक विवाह के जल्द पश्चात अलग होने या रहने की बात करते हैं। यदि उनको अच्छे घर की अथवा धैर्यपूर्ण स्वभाव व शीतल प्रकृति वाली बहू मिल गई तो समझो घर स्वर्ग बन गया, नहीं तो बहुत मुश्किल परिस्थितियां बनती हैं।

**७/२, रानी का बाग, नजदीक स्टेट बैंक आफ इंडिया, श्री अमृतसर।*

केवल अच्छे घर की बहू की भी बात नहीं। वास्तव में बाहर से घर में आई बच्ची अपने पति की ओर देखकर ही घर के बुजुर्गों के प्रति अपना व्यवहार तथा दृष्टिकोण बनाती है। यदि उसको इस बात का ज्ञान/अनुभव हो जाता है कि मेरा पति अपने माता-पिता की सेवा-संभाल और उनका सम्मान करता है, उनकी आज्ञा में चलता है तो बहू बनकर आई बच्ची भी उनकी सेवा करेगी और आज्ञा में चलेगी। बड़ों की आज्ञा में चलने वालों पर परमात्मा बहुत खुश होते हैं। माता-पिता की आशीष सबसे अच्छी होती है। बुजुर्गों की सेवा में लगे हुओं की सभी इच्छाएं व मुरादें पूरी होती हैं।

यदि आप ने अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दी है कि बेटा, अमृत वेला को उठना है, स्नान करके प्रभु का सिमरन करना है, फिर घर का कामकाज और पढ़ाई करनी है तो आपके बच्चे धीरे-धीरे यह सब करने लगते हैं।

आज दहेज की बात बिलकुल नहीं सोचनी चाहिए, केवल पढ़ी-लिखी बालिका हो जो आपकी बहू बने। परिवार की भी पृष्ठभूमि देखें कि क्या परिवार वाहिगुरु को मानने वाला है। बालिका की आदतों का भी पता कर लें। यदि आपकी बहू अमृत वेला को उठती है तो समझो आप ने कमाया ही कमाया है, क्योंकि यदि बहू आकर बड़ों का सम्मान करेगी तो आगे बच्चे भी अच्छे संस्कारों वाले होंगे, क्योंकि बच्चे तो बड़ों को देखकर उन्हीं का अनुकरण ही करते हैं।

बुजुर्ग घर का वास्तविक आभूषण हैं। कोशिश करो कि उनसे परामर्श लेकर हर काम करो, क्योंकि उन्होंने जीवन को अच्छी प्रकार से व्यतीत किया है। कभी उनसे बात न छुपाएं बल्कि उनको खुल कर अपनी समस्या बताएं। ऐसे में वे अपने तजुर्बे से समस्या का अच्छे से अच्छा समाधान बतायेंगे।

बुजुर्गों को धन की कोई लालसा नहीं हो सकती। वे तो बस बच्चों से मिलजुल कर रहना चाहते हैं। यदि उनको ऐसा करने का माहौल मिले तो वे अन्य कुछ नहीं चाहते। ऐसे में वे अलग कमरा भी नहीं चाहते। वे मिलजुल कर बैठने में ही खुशी महसूस करते हैं और निरोग भी रहते हैं। आज की यह समस्या है कि आज के युवक जिनका अपने बुजुर्गों के प्रति इतना प्यार नहीं होता वे इकट्ठे बैठने से कतराते हैं। कई बार तो स्थिति यहां तक पहुंच जाती है कि इनके लिए पैसे दे दो और इन्हें वृद्ध-आश्रम में छोड़ देते हैं। ऐसा करने से बुजुर्गों का हृदय पीड़ित महसूस करता है। वे मन ही मन खीझते रहते हैं। असल खुशी तो उनको बच्चों के साथ रहने में ही मिलती है और अपने बच्चों के प्रति उनके हृदय से आशीषें निकलती हैं। आओ, प्रण करें कि जिन माता-पिता ने हमारा पालन-पोषण किया, हमें पढ़ाया-लिखाया उनकी बुजुर्गी में, हम सही अर्थों में उनको हृदय की सच्ची व निर्मल भावना के साथ अपने पास रखें, उनकी सेवा करें और उनकी आशीषें लें।



बुजुर्गों की अहमियत

*-बीबी संतोष कौर**

बुजुर्ग तजुर्बे से भरी हुई गागर का नाम है और इस गागर में लंबी आयु के दुखों, सुखों, खुशियों, गमों, सफलताओं, विफलताओं, प्राप्तियों और संघर्ष का सागर होता है। बुजुर्गों से हम भूत काल में से अपने वर्तमान को सुशील और कामयाब बनाने के लिए अति आवश्यक सामग्री प्राप्त कर सकते हैं।

एक समय था जब प्रात: काल तड़के बुजुर्ग अपनों हाथों से लगाये परिवार के पौधे को लगे फलों भाव अपने पौत्रों-पोतियों को गोदी में बिठा कर उनकों कथाएं, वीर-गाथाएं, गुरबाणी और भक्तों की कहानियां सुनाकर बचपन से ही उनको एक दिशा देकर अच्छी सलीके वाली जिंदगी की नींव रख देते थे। बच्चे परिवार में से अपने माता-पिता को, अपने बड़ों का सत्कार करते देख स्वत: ही बिना किसी के कहने से इस रास्ते पर चल पड़ते थे। बुजुर्ग इन गुणों के साथ अपनी जवान होती बढ़ती-फूलती फसल को देखकर बागो-बाग होते, मन ही मन वाहिगुरु का शुक्राना करते और उनकी स्तुति अपने ओस-पड़ोस और दोस्तों/सखियों में करते फूले न समाते।

उस समय माता-पिता को बच्चों को पास बिठा कर नैतिक शिक्षा का कोई विशेष रूप से पाठ पढ़ाने की कभी भी जरूरत नहीं पड़ती थी। बच्चे दादी-मां की कहानियां सुनकर जवान होते थे और ये कहानियां उनकी जिंदगी के लिए एक उत्साह और प्रेरणा होती थीं। निम्नलिखित एक कहावत (लोक-कथा) यह सिद्ध कर देती है कि बुजुर्गों का हमारे साथ होना कितना आवश्यक है!

कहते हैं कि एक विवाह में लड़की वालों की तरफ से शर्त रखी गई कि बारात में कोई बुजुर्ग नहीं आयेगा, परंतु घरवाले बुजुर्ग को पेटी में बंद करके ले गए इसलिए कि मुश्किल आने पर उससे सहायता ले सकें और उन्होंने मुश्किल भरी स्थिति बनने पर बुजुर्ग से अगुआई ली और मुश्किल में से सहज स्वभाव बाहर भी निकल सके। यह सभी कुछ यह दर्शाता है कि बुजुर्गों का अस्तित्व हरेक परिवार में कितना आवश्यक है।

उम्र भर परिश्रम करने के पश्चात यही आयु होती है जब समय के साथ शरीर की शक्ति और हर अंग की शक्ति क्षीण होने लगती है और इस आयु में हमें दूसरों के सहारे की आवश्यकता महसूस होने लग पड़ती है। यदि हम मानवी आयु की एक दरिया के जन्म होने से तुलना कर लें तो यह भी जिंदगी के सत्य को स्थापित कर देगा। दरिया का जन्म पर्वतों की बर्फ घुल-घुल कर एक बारीक-सी पानी की नाली या धारा के रूप में होता है। धीरे-धीरे रास्ते में से, इधर-उधर से पानी मिल कर नाले का रूप धारण कर लेता है। फिर नदी और फिर दरिया। यह दरिया जवानी की मस्ती में पर्वतों में से हर तरफ शोर मचाता हुआ, छलांगें लगाता हुआ भागा आता है जिसको कोई रोक

**७/२, रानी का बाग, नजदीक स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, श्री अमृतसर। मो: ९८१५६-४६३१७*

नहीं सकता। फिर यह मैदानों में आकर मध्यम गति में हो जाता है। पर्वतों से लायी सामग्री धीरे-धीरे रास्ते में बिखेरना आरंभ कर देता है और फिर धीरे-धीरे समुद्र में मिलने से पहले यह सारी सामग्री छोड़ता जाता है, क्योंकि अब इसमें उसको आगे ले जाने की हिम्मत नहीं होती। यही हाल बुजुर्गी का है। इस आयु में बुजुर्ग जिंदगी में एकत्र की गई धन-दौलत, अन्य बहुमूल्य वस्तुएं धीरे-धीरे बांटनी शुरू करते हैं।

आज बहुत दुख के साथ कहना पड़ता है कि नैतिक शिक्षा के अभाव ने बुजुर्गों का सम्मान भी काफी सीमा तक कम कर दिया है। आज के समाज में संयुक्त परिवारों की जगह एकल परिवार अस्तित्व में आ गए हैं, जिसका परिणाम यह हुआ है कि बुजुर्गों के बंटवारे हो जाते हैं और समय तय कर लिया जाता है कि बुजुर्ग माता-पिता अपने विभिन्न पुत्रों के पास बांट कर निश्चित समय के लिए रहेंगे, क्योंकि एक ही पुत्र उनका बोझ बर्दाश्त नहीं कर सकता।

दूसरी बात, आज के युग में बुजुर्गों को अकेलेपन का दैंत्य घूरने लगता है। आज बेटियों-बेटों, पौत्रों-पोतियों के पास समय नहीं कि बुजुर्गों की बात सुन सकें। कई बार आर्थिक तंगदस्ती के शिकार, अच्छे-भले अमीर घरों के बुजुर्ग सार्वजनिक स्थानों पर मांगते भी देखे-सुने जाते हैं। हमारे घरों में बुजुर्गों के लिए न स्थान है न हमारे पास समय है इसलिए आम रिवाज ही बनता जा रहा है कि इनको वृद्ध-आश्रमों में भेज दिया जाए।

मैंने अंग्रेजी की एक कहानी पढ़ी थी जिसका नाम है 'बलैंकट' भाव कि 'कंबल'। यह कहानी एक विदेशी लेखक की है। उस समाज में जो रिवाज पड़ गया था उसके मुताबिक लेखक ने लिखा कि एक व्यक्ति ने पत्नी की मृत्यु के बाद अपना विवाह कराना है। उसकी प्रेमिका, ब्याही जाने वाली औरत ने शर्त रखी कि वह उस बुजुर्ग के 'ओल्ड एज़ होम' में चले जाने के बाद ही उस घर में आयेगी। वह आदमी बुजुर्ग को भेजने के वक्त उपहार के तौर पर देने के लिए बढ़िया कंबल लाता है। बुजुर्ग की उस घर में अंतिम रात थी। वह अपने कमरे में अपने पौत्र के साथ साज पर संगीत सुन रहा था क्योंकि पौत्र का अपने दादा जी के साथ बहुत प्यार था। वे दोनों इस रहते वक्त को एक पल भी व्यर्थ नहीं गंवाना चाहते थे। इतने में उसका पिता अपनी होने वाली पत्नी के साथ आया और उसने अपने पुत्र को कंबल लाकर दिखाने को कहा। पुत्र जब काफी देर बाद कंबल लेकर आया तो वह उसका आधा हिस्सा लाया। पिता के पूछने पर उसने कहा कि जब मैंने आपको 'ओल्ड एज़ होम' भेजना है तब आपको देने के लिए वह (दूसरा हिस्सा) मैंने रख लिया है।

मैं कहती हूं कि हमारी नयी पीढ़ी भी ऐसी होनी चाहिए। परंतु पश्चिमी देशों के प्रभाव ने हमारे बुजुर्गों को भी अकेले तथा बेसहारा कर दिया है। आज की जरूरत है कि बुजुर्गों के साथ समय बिताया जाए इसलिए कि सारी उम्र की की हुई मेहनत उनको यह सोचने के लिए विवश न करे कि उन्होंने सारी उम्र दौलत एकत्र करके, मेहनत करके, दुख झेल कर कोई भूल की है। हमें चाहिए कि बुजुर्गों के पास विशेष रूप से समय निकाल कर उनका हाल-चाल, उनकी जरूरतों के बारे में, कभी-कभी खाने के बारे में उनकी पसंद पूछें, उनसे बीते समय की कोई बात सुनें, उनको हंसाने या कम से कम खुश तथा संतुष्ट रखने का प्रयत्न करें, छोटे-

छोटे बच्चों को कभी-कभी उनके पास बिठायें, उनको यह महसूस करायें कि हमको उनकी बहुत जरूरत है, उनके बिना हमारा गुजारा मुश्किल है। इन बुजुर्गों का साया बड़े वृक्ष के पत्तों की तरह होता है जो बहुत घने हो गए होते हैं और तपती गर्मी में हमें ठंडक पहुंचाते हैं।

प्रात: उठकर बुजुर्गों को फतह बुलाओ। फिर आपको अपने बच्चों को कहने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी कि बच्चो, अपने दादा-दादी जी के चरण स्पर्श करो। वे स्वत: ही इस रास्ते पर चल पड़ेंगे।

आज हमारी एक अवहेलना समाज को खोखला करती जा रही है। आज बच्चे नशों के आदी हो रहे हैं, आतंकवादी गतिविधियों की तरफ धकेले जा रहे हैं, स्मगलर बन रहे हैं। यह सब बुजुर्गों को नजर-अंदाज करने के कारण ही घटित हो रहा है। अत: अभी भी संभल जाओ और अपनी भूल को सुधारते हुए बुजुर्गों का सम्मान-सत्कार करो। यह बीज आपके लिए मीठे मेवे तैयार करेगा!



कविता

मैं मां हूं!

मैं मां हूं।
नि:स्वार्थ है मेरा प्यार।
परन्तु मैं अकेली हूं आधुनिकता के इस युग में,
रोती, बिलखती, भटकती हूं
असहाय आंसू मन में भर-भर कर।
मैं मां हूं।
जान से ज्यादा चाहती हूं अपनी औलाद को,
वार देती हूं अपनी सारी खुशियां उस पर,
पालती हूं उसे, न जाने कितने कष्ट सह-सह कर!
मैं मां हूं।
अपनी अंगुली पकड़ाकर चलना सिखाती हूं,
समझ जाती हूं नहीं कुछ बोलने पर भी,
बोलना सिखाती हूं उसे, खुद चुप रह-रह कर।
मैं मां हूं।
नहा-धुला कर तैयार करती,
बाल संवारती हूं, विद्यालय भेजने के लिए,
खाना खिलाती हूं उसे, भूखी रह-रह कर।
मैं मां हूं।
अभिलाषा, बस एक ही करती हूं,
औलाद मेरी बड़ी होकर,
भर देगी झोली में खुशियां,
दुनिया की चुन-चुन कर।
मैं मां हूं।
कितनी दुआएं, कितनी आशीषें हैं,
अपने बच्चों के लिए,
कष्ट उन्हें नहीं होने देती,
हृदय में अपने पीड़ा भर-भर के।
मैं मां हूं।
परन्तु वही औलाद,
जिसे चलना सिखाया था, बोलना सिखाया था,
कहती है मुझे 'तुम कुछ समझती नहीं,'
चुप करवा देती है खुद बोल-बोल कर।
मैं मां हूं।
क्या है मेरा अस्तित्व,
क्या मैं वही हूं जिसने पाला था,
दुलारा था अपनी औलाद को,
मांगी थी मन्नतें जिसके लिए
भटक कर दर-दर पर?
मैं मां हूं।
असहाय हूं, अकेली हूं,
मैं मां हूं।



-श्री मंगत राय जिंदल, शोध छात्र (हिन्दी), हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।

बेहद जिंदादिल इंसान मेरे नाना जी

*-स. प्रीतइंदर सिंघ**

गुरु-नगरी श्री अमृतसर के रहने वाले मेरे नाना स. पूरन सिंघ बहुत ही जिंदादिल इंसान हैं। वे उद्यम, परिश्रम, साहस, हौंसले तथा धैर्य की एक उजागर उदाहरण हैं। बुजुर्ग आयु में उनके दिल में जवानों-सी उमंग तथा तरंग है। वे ८५ वर्ष की आयु में आज भी खुल कर हंसते और हम सभी को हंसाते हैं। यह शेयर उन पर पूरी तरह अनुकूल बैठता है कि:

जिंदगी जिंदादिली का नाम है,
मुर्दा दिल क्या खाक जीया करते हैं?

मेरे नाना जी एक धनवान परिवार में जन्मे, पले और बड़े हुए, परंतु पारिवारिक हालात में उन पर गरीबी आ गई तो उन्होंने अपने जीवन में संघर्ष को बढ़ा दिया। ईमानदारी के साथ वे दशकों से एक आदर्श जीवन जीते आ रहे हैं। उनकी बेटियां लम्बे समय से अपने-अपने घर जा चुकी हैं। कई दशकों से मेरे नाना-नानी अकेले रह रहे हैं परंतु वे तन्हा नहीं हैं। ओस-पड़ोस तथा रिश्तेदारों के साथ उनका बहुत मेल-मिलाप है और वे एक भरपूर सामाजिक तथा संतुष्ट जीवन जी रहे हैं।

मेरे नाना जी आज भी साईकिल पर अपना कारोबार कर रहे हैं। वे इस निचले स्तर के समझे जाते काम को आज भी इतनी रुचि लेकर करते हैं और इसमें परमात्मा उनको बहुत बरकत डाल रहा है। इसी कारण वे पूर्ण आत्म-सम्मान का जीवन जी रहे हैं और सदा अपना सिर उठा कर रहते हैं। वे गरीब होकर भी बहुत दौलतमंद हैं। यह बात अलग है कि उन्होंने उम्र के तकाजे के अनुसार थोड़ा परिवर्तन अपने काम करने के ढंग-तरीके में किया है। वे सप्ताह में ५ दिन काम पर जाते हैं और दो दिन भरपूर आराम कर लेते हैं। शुभचिंतकों के कहने पर वे पहले जितनी दरियां-खेस नहीं ले जाते परंतु इतने कम भी नहीं। वे कहते हैं कि बिकना तो सौदा है न! कुछ ले जाऊंगा तो उसमें से ग्राहक पसंद भी करेंगे। वे अधिक सौदेबाजी में नहीं पड़ते। उनके ग्राहक उनसे संतुष्ट हैं क्योंकि वे एक सीमा में ही मुनाफा कमाते हैं और ग्राहकों को चीज भी अच्छी क्वालिटी की देते हैं। यह सब मुझे इसलिए अच्छी तरह मालूम है क्योंकि वे हमको दिन का ब्यौरा अपने रौचिक अंदाज में बताते रहते हैं। उनके ग्राहक उनके साथ बातचीत करके भी खुश हो जाते हैं। वे बातों-बातों में उनको अच्छी सीख भी दे जाते हैं क्योंकि उनके पास व्यापक तजुर्बा है। वे अपना तजुर्बा सभी के साथ बांटने को हर दम तैयार रहते हैं।

हमारे भाईचारे में विवाह-शादियों के समागमों में वे बच्चों और जवानों के साथ खूब हंसी-मजाक करते हैं। सभी उनके इर्द-गिर्द एकत्र हो जाते हैं और उनकी रौचक बातों का रस-स्वाद लेते हैं।

मेरे नाना जी ने जीवन का आशावादी दृष्टिकोण अपनाया हुआ है। परिस्थितियां चाहे जितनी भी जटिल हों वे कभी आशा का दामन

(शेष पृष्ठ १७४ पर)

**५, हंसली कवाटर्ज, न्यू तहसीलपुरा, श्री अमृतसर। मो: ९९१४६-५६७९६*

बुजुर्गी के तत्व-सार हमारे पिता जी

-बीबी राजिंदर कौर*

जो लोग बुजुर्ग आयु को आन-शान के साथ स्वीकार करते हैं और युवाओं के प्रति उदार नजरिया रखते हैं उनके लिए बुजुर्ग आयु एक वरदान है। चूंकि युवा पीढ़ी नजरिये में विद्रोही होती है इसलिए इसके लिए जरूरत होती है बहुत से धैर्य एवं सहनशीलता की। वे अपने बड़ों के कहे अनुसार चलने से इंकार जो कर देते हैं तथा अपने आप निर्णय लेने की इच्छा करते हैं। इससे भी बढ़ कर बुजुर्ग-जन पहरावे में संयम तथा सादगी पसंद करते हैं और खाने-पीने तथा जीवन-यापन के ढंग में भी। दूसरी ओर युवा पुरुष तथा स्त्रियां पहरावे, खाने इत्यादि में जो आधुनिक और चलंत रिवाज अथवा फैशन में होता है उसको प्रमुखता देते हैं। यह सब बुजुर्गों और युवाओं के बीच नासमझी की तरफ ले जाता है। इस अंतराल को समझदारी, परस्पर दृष्टिकोण और तजुर्बे द्वारा कम किया जा सकता है। बुजुर्ग लोगों और युवा स्त्रियों व बच्चों के बीच एक मध्यमार्गी समझौता होना चाहिए।

पटियाला के रहने वाले मेरे पिता जी स. अवतार सिंघ को मैंने ८६ वर्ष की आयु में भी इन सब समस्याओं पर विजय पाते हुए देखा है। जो भी लोग उनके संपर्क में आते हैं उन सभी से वे सत्कार ले ही लेते हैं। नन्हें-मुन्हें बच्चे उनको इसलिए प्यार करते हैं क्योंकि वे उनसे खेलते हैं और उनको कहानियां सुनाते हैं। युवा वर्ग के लोग उनको इसलिए पसंद करते हैं क्योंकि उन्होंने खुद को उनके रसों-स्वादों तथा विचारों के अनुरूप ढाल लिया हुआ है। युवा उनकी संगत में बैठे हुए महसूस करते हैं कि वे उन्हीं में से ही हैं अथवा युवा ही हैं। वे एक बहुत जिंदादिल व्यक्ति हैं और जीवन के हरेक मसले पर ढेर सारी विचार-चर्चा कर सकते हैं।

उनका जीवन उनके बचपन से ही संघर्ष से भरा रहा है। अपने आठ भाई-बहनों में सबसे बड़े होने के नाते उनको अपने माता जी के साथ घर के काम में हाथ बंटाना पड़ता था।

उन्होंने अपना कैरियर अथवा जीवन-कारोबार मैट्रिक पास करने के बाद बर्तानवी राज्य के अधीन लाहौर में एक क्लर्क के रूप में शुरू किया। आजादी के बाद उन्होंने शिमला में नौकरी के दौरान ही बी. ए. कर ली। कदम-दर-कदम वे पदोन्नित करते चले गए और हरियाणा सरकार के वित्त विभाग में अंडर सेक्रेटरी के तौर पर सेवा-मुक्त हुए। अपने सेवा-काल में वे अपने काम के प्रति ईमानदार, परिश्रमी और सच्चे रहे। वे वित्त विभाग में काम करते वक्त अपने अमलों-व्यवहारों में इतने स्वच्छ थे कि उनके साथियों में से एक-दो उनके बारे में कहते थे कि 'वो एक सतयुगी बंदा है जो कलयुग में पैदा हो गया।'

सेवा-मुक्ति के बाद वे कभी भी खाली नहीं बैठे। सदैव कुछ न कुछ करते आ रहे हैं। वे प्रात: जल्दी उठ पड़ते हैं, अपनी चाय खुद बनाते हैं और चाय लेकर सैर को निकल

**मार्फत स. नवजीत सिंघ, ५५, छोटी बारांदरी, पार्ट-२, जालंधर।*

जाते हैं। वे सात बजे गुरुद्वारा साहिब जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। नौ बजे वे बहुत हल्का-सा नाश्ता लेते हैं। उनके दो मुख्य शौक हैं--बागबानी और टी. वी. पर क्रिकेट मैच देखना। वे टी. वी. पर आने वाले धारावाहिक भी देखना पसंद करते हैं। उन्होंने अपने घर में कई दुर्लभ पौधे उगाये हुए हैं।

चाहे वे किसी भी धर्म के पक्के प्रचारक नहीं हैं फिर भी अपने व्यवहारिक जीवन में वे एक धार्मिक व्यक्ति हैं। वे बहुत ही नम्र, शरीफ और मददगार किस्म के इंसान हैं। एक जरूरतमंद व्यक्ति की सहायता करने से वे कभी भी नहीं चूकते। उनके दिल में अपने धनवान रिश्तेदारों से अधिक अपने निर्धन रिश्तेदारों के प्रति सत्कार है और जो भी उनके घर आ जाए वे उनकी इज्जत-सम्मान में कभी कोई फर्क नहीं पड़ने देते। वे घायल हृदयों पर मरहम लगाने के लिए हरदम तैयार रहते हैं।

वे महान गुणों का मुजस्समा हैं जो कि उनका अपना जीवन सुखी बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं। वे दूसरों का दिल बहलाते हैं। उन्होंने कुछ अति रोचक कविताएं और गीत रचे हुए हैं और उनमें से हमारे भाईचारे के दायरे में "भिंडी तोरी दा विआह" बहुत विख्यात है। हमारे परिवार में कोई भी एकत्रता हो वे उसके केंद्र बने होते हैं। इस गीत के लिए फरमाइशों पर फरमाइशें चली आती हैं और वे तरन्नुम में इस गीत को इस प्रकार गाते हैं कि सभी हंस-हंस कर लोट-पोट हो जाते हैं।

चाहे आजकल वे शारीरिक रूप से इतने ताकतवर नहीं रहे परंतु वे मन की ऊंची अवस्थाओं में रहने वाले व्यक्ति आज भी हैं। वे जीवन के प्रति एक पॉजटिव नज़रिया रखते हैं और कभी भी उम्मीद को नहीं छोड़ते। वे हमारे घर के सबसे बड़े स्तंभ हैं जिन्होंने कि चार पीढ़ियों को एक छत के नीचे इकट्ठा कर रखा है। मैं सचमुच ही अपने पिता को पूजती हूं और आने वाले वर्षों में उनके दीर्घ जीवन और अच्छे स्वास्थ्य की कामना करती हूं।



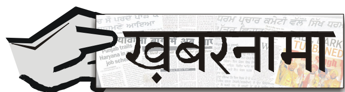
बेहद जिंदादिल इंसान मेरे नाना जी *(पृष्ठ १७२ का शेष)*

छोड़ते ही नहीं। उनकी हंसी तथा मुस्कराहटों में उनकी जटिल परिस्थितियां बदल जाती हैं तथा उनके पक्ष में हो जाती हैं।

इसी वर्ष उनकी बाजू पर गहरी चोट आ गई। बाजू फ्रेक्चर हो गई। वे उपचार से लगभग डेढ़ महीने में ठीक हो गए। परंतु लगभग दो महीने बाद फिर मेरी मौसी के घर जाते हुए गिर पड़े, चाहे गलती दूसरे व्यक्ति की ही थी। बाजू फिर वहां से टूट गई और उनको फिर पलस्तर करा कर लगभग तीन महीने घर पर रहना पड़ा। बिस्तर पर पड़कर भी वे उदास-निराश नहीं हुए। वे किसी के सहानुभूति के रूप में कहे शब्दों पर ऊंचे आशावादी अंदाज में कहते कि बस कुछ दिनों में चंगा-भला हो जाऊंगा और उनके इसी आशावादी नजरिये ने उन्हें जल्दी ठीक भी कर दिया। परिणामस्वरूप वे लगभग डेढ़ महीने से पुन: अपने कारोबार में हैं।

उनकी मिसाल मेरे लिए बहुत बड़ा प्रेरणास्रोत है क्योंकि मैंने अभी अपने कैरियर की शुरुआत ही की है और मुझे यकीन है कि ऐसे जिंदादिल अपने नाना जी के पदचिन्हों पर चलता हुआ मैं भी जीवन में सफलताओं को प्राप्त करता हुआ आगे ही आगे बढ़ता जाऊंगा और हमेशा आगे ही निगाह रखता हुआ कभी पीछे मुड़ कर नहीं देखूंगा।





मगहर में भक्त कबीर जी की याद में गुरुद्वारे का निर्माण-कार्य आरंभ

अमृतसर/मगहर : ५ अक्तूबर। भक्त कबीर जी ने हाथों से किरत करते हुए समाज में व्यर्थ के कर्म-कांडों का जोरदार खंडन किया है। उनके द्वारा रची बाणी मानवी जीवन पर पूरी तरह फिट बैठती है और मनुष्य को किरत करते हुए अकाल पुरख के साथ जुड़ने की प्रेरणा करती है। श्री गुरु अरजन देव जी ने भक्त कबीर जी द्वारा रचित बाणी को श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज करके उन्हें पूरा सम्मान बख्शा। उत्तर प्रदेश के जिला गोरखपुर का कसबा मगहर वो पावन स्थान है जहां पर भक्त कबीर जी ने तत्कालीन गलत परंपराओं को तोड़ते हुए यहां आकर अपने शरीर का त्याग किया। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी भक्त कबीर जी की याद को समर्पित मगहर में भक्त कबीर जी के नाम पर एक गुरुद्वारा साहिब की इमारत का शिलान्यास कर खुशी महसूस कर रही है। इन विचारों का प्रकटावा धर्म प्रचार कमेटी के सदस्य स. भरपूर सिंघ खालसा ने गुरुद्वारा साहिब की इमारत के निर्माण-कार्य का शुभारंभ करने से पूर्व एकत्र हुई संगत को सम्बोधित होते हुए किया। उन्होंने कहा कि गुरुद्वारा साहिब की इमारत की कार-सेवा बाबा अमरीक सिंघ कार-सेवा वालों को सौंपी गई है।

गुरुद्वारा साहिब की इमारत की कार-सेवा की आरंभता, अरदास के बाद पांच प्यारों के रूप में पहुंचे श्री हरिमंदर साहिब के ग्रंथी सिंघ साहिब ज्ञानी मल्ल सिंघ, धर्म प्रचार कमेटी के सदस्य स. भरपूर सिंघ खालसा, श्री गुरु ग्रंथ साहिब खोज केंद्र के निदेशक स. वरियाम सिंघ, बाबा अमरीक सिंघ कार-सेवा वाले तथा गुरमति प्रकाश-गुरमति ज्ञान पत्रिकाओं के संपादक स. सिमरजीत सिंघ ने की। गोरखपुर निवासी बीबी राणा परमजीत कौर, बीबी डॉ. मिंटी सिंघ, गोरखपुर की महापौर श्रीमती अंजु चौधरी ने भी कार-सेवा के शुभारंभ अवसर पर भाग लिया। भक्त कबीर जी के नाम पर बन रहे गुरुद्वारा साहिब के लिए स्थानीय लोगों में इतना उत्साह था कि संगत गुरुद्वारा श्री गुरु सिंघ सभा, जटा शंकर, गोरखपुर से श्री गुरु ग्रंथ साहिब की छत्रछाया में नगर कीर्तन के रूप में मगहर पहुंची।

कार-सेवा के शुभारंभ अवसर पर श्री हरिमंदर साहिब अमृतसर के हजूरी रागी तथा सिक्ख मिशन, हापुड़ से पहुंचे रागी जत्थे ने गुरबाणी-कीर्तन द्वारा संगत को निहाल किया। इस समारोह में गोरखपुर के विधायक डॉ. राधा मोहन दास, सांसद श्री योगी आदित्य नाथ, भक्त कबीर जी मंदिर के अध्यक्ष श्री विचार दास ने भी हाजरी भरी। शिरोमणि गु: प्र: कमेटी के उप सचिव स. गुरचरन सिंघ घरिंडा ने दो-तीन दिन पहले ही अन्य कर्मचारियों सहित श्री अमृतसर से मगहर पहुंच कर सारे प्रबंधों की रूप-रेखा तैयार की।

शिरोमणि गु: प्र: कमेटी द्वारा नेत्रहीन महिला खिलाड़ी को सम्मानित किया गया।

अमृतसर : २६ सितंबर। अमेरिका में हाल ही में हुए नेत्रहीनों के खेलों में शानदार प्रदर्शन करके शॉटपुट में से सोने तथा १०० मीटर दौड़ में से कांसी का तगमा जीतने वाली सोनपरी बीबा हरमनप्रीत कौर को शिरोमणि गु: प्र: कमेटी के अध्यक्ष जत्थेदार अवतार सिंघ ने श्री दरबार साहिब की तस्वीर, सिरोपा तथा ५१ हजार रुपए की राशि देकर सम्मानित किया। इस अवसर पर जत्थेदार

अवतार सिंघ ने ऐलान किया कि पंजाब में नेत्रहीन महिला खिलाड़ियों को खेलों की तरफ और उत्साहित करने के लिए शिरोमणि कमेटी द्वारा विशेष यत्न किए जाएंगे ताकि बीबा हरमनप्रीत कौर जैसी महिला खिलाड़ी पंजाब का नाम सारी दुनिया में रोशन करे। उन्होंने बताया कि कुदरत के प्रकोप को वरदान समझते हुए बीबा हरमनप्रीत कौर ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर की खिलाड़ी बन कर लड़कियों को कोख में कत्ल करने वालों को यह रास्ता छोड़ने की सही दिशा दिखाई है। उन्होंने बताया कि २००५ में पाकिस्तान से दोस्ताना क्रिकेट मैच की श्रृंखला खेलने के लिए शिरोमणि कमेटी ने अपने खर्च पर पंजाब के नेत्रहीनों की क्रिकेट टीम को पाकिस्तान जाकर खेलने के लिए भेजकर खिलाड़ियों को प्रोत्साहित किया था।

राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर के खेलों में १२ वर्ष की छोटी आयु में १७ मेडल जीतने के बाद अमेरिका में से मेडल जीत कर श्री हरिमंदर साहिब पहुंची सोनपरी बीबा हरमनप्रीत कौर ने बताया कि भले ही पंजाब के मुख्यमंत्री स. प्रकाश सिंघ बादल ने उन्हें स्टेट अवार्ड देकर सम्मानित किया था मगर जो खुशी सिक्ख कौम की सिरमौर संस्था शिरोमणि गु: प्र: कमेटी से सम्मान प्राप्त कर मिली है वह बयान नहीं की जा सकती।

इस अवसर पर पंजाब में नेत्रहीनों के खेलों को प्रफुल्लित करने में अहम योगदान डालने वाले स. परमिंदर सिंघ फुल्लांवाल तथा नेत्रहीन अंतर्राष्ट्रीय खिलाड़ी विवेक मोंगा भी उपस्थित थे।

ट्राली सेवा से यात्रियों को भारी लाभ पहुंचेगा : जत्थेदार अवतार सिंघ

अमृतसर : १८ सितंबर। देश-विदेश से भारी मात्रा में श्री हरिमंदर साहिब के दर्शनों के लिए आने वाली सिक्ख संगत को बिस्तर, अटैची, बैग आदि सामान की ढुलाई में दिक्कत पेश आती थी। विशेषत: दोपहर के समय और जब छोटे-छोटे बच्चे भी साथ हों तो सामान उठाकर ले जाने और लेकर आने की मुश्किल और भी बढ़ जाती है। श्री गुरु अरजन देव जी निवास से लेकर माता गंगा जी निवास तथा श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब निवास तक सामान लेकर जाने और लाने के लिए अब विशेष प्रकार की ट्रालियों की नि:शुल्क सेवा प्रारंभ की गई है। माल रोड, सिविल लाईंस, लुधियाना की मशहूर फर्म 'नीली बार' ने ५० टूरिस्ट ट्रालियां इस नेक कार्य के लिए भेंट कर प्रशंसनीय कार्य किया है। ट्राली सेवा का शुभारंभ करते हुए जत्थेदार अवतार सिंघ ने कहा कि इस ट्राली सेवा से यात्रियों को सामान की ढुलाई में आसानी रहेगी। नीली बार फर्म के मालिक स. कंवलदीप सिंघ सपुत्र स. उत्तम सिंघ ने बताया कि सामान की ढुलाई के लिए उनकी तरफ से १२ वर्दीधारी सेवादार भी नियुक्त किए गए हैं और संगत की सुविधा या मांग को देखते हुए भविष्य में इन सेवादारों की गिनती और भी बढ़ाई जा सकती है। इस अवसर पर शिरोमणि कमेटी के सचिव स. दलमेघ सिंघ, स. जोगिंदर सिंघ, उपसचिव स. गुरचरण सिंघ घरिंडा, स. मनजीत सिंघ तथा श्री दरबार साहिब के मैनेजर स. बलबीर सिंघ आदि अधिकारीगण उपस्थित थे।



प्रिंटर व पब्लिशर स. दलमेघ सिंघ ने गोल्डन आफसेट प्रेस, गुरुद्वारा रामसर साहिब, अमृतसर से छपवा कर मालिक शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के लिए कार्यालय, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर से प्रकाशित किया। संपादक स. सिमरजीत सिंघ। प्रकाशित करने की तिथि : ०१-०११-२००९